भारतीय संविधान

CONSTITUTION OF INDIA





यू॰ एस॰ खत्री

भारतीय संविधान

(INDIAN CONSTITUTION)

लेखक

यू० एस० सत्री, एम० ए०

मूल्य : पांच रुपये (रु० 5.00) मात्र



प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ

प्रकाशक :
प्रकाशक केन्द्र
न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद
लखनऊ

संस्करण : 1973
मूल्य : पांच रुपये (5.00) मात्र

मुद्रक :
ईस्टर्न प्रेस
1-ए, 1, बाई का बाग
इलाहाबाद

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। पुस्तक में भारतीय संविधान को प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार लिखा गया है कि विद्यार्थी आसानी से विषय को समझ लें। पुस्तक का सृजन परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण को लेकर ही किया गया है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए स्थान-स्थान पर विभिन्न विद्वानों के मौलिक ग्रन्थों से उद्धरण भी दिए गये हैं। पुस्तक की भाषा सरल और सर्वग्राह्य है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यद्यपि पुस्तक प्रश्नोत्तर रूप में लिखी गई है, परन्तु यह विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक का काम भी देगी। भारतीय संविधान में दिए गए किसी भी महत्वपूर्ण विषय को यथासम्भव छोड़ा नहीं गया है।

पुस्तक में विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गए प्रश्नों का समावेश किया गया है। प्रश्नों के उत्तर लिखते समय इस प्रकार की सामग्री का चयन किया गया है जो शुद्ध रूप से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो।

पुस्तक के सृजन में जिन विद्वानों के ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है, लेखक उन सबका आभारी है। विश्वास है कि विद्यार्थी और अध्यापकवर्ग इस पुस्तक को अपनाएँगे। पुस्तक के सम्बन्ध में दिए गए सुझावों का स्वागत होगा।

प्रकाशक
प्रकाशन केन्द्र
अमीनाबाद
लखनऊ

भारतीय संविधान

(INDIAN CONSTITUTION)

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

अध्याय 1

भारतीय संविधान का विकास एवं महत्व

(Development and the Importance of the Indian Constitution)

1—भारतीय संविधान का विकास 1—14

2—भारतीय संविधान का महत्व 14—16

अध्याय 2

भारतीय संविधान की विशेषताएँ और उसका स्वरूप

(Characteristics and the Nature of the Indian Constitution)

1—भारतीय संविधान की विशेषताएँ 17—24

2—संविधान का सङ्घात्मक और एकात्मक रूप 25—31

अध्याय 3

नागरिकता, मूल अधिकार एवं राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

(Citizenship, Fundamental Rights and the Directive Principles of the State Policy)

1—भारतीय नागरिकता 32—36

2—मौलिक अधिकार 37—46

3—राज्य के नीति-निर्देशक-तत्व 47—56

अध्याय 4

भारत-संघ का राष्ट्रपति

(President of the Indian Union)

1—निर्वाचन, वेतन एवं कार्यकाल 57—62

2—राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य 62—71

3—राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति और उसका महत्व 71—77

4—भारत का उपराष्ट्रपति 77—79

विषय | पृष्ठ

अध्याय 5

केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद्

(Central Cabinet)

1—मंत्रिपरिषद् का सङ्गठन, कार्य और महत्व	80—87
2—मंत्रिपरिषद् का राष्ट्रपति एवं लोकसभा से सम्बन्ध	87—91
3—प्रधान-मंत्री	91—95

अध्याय 6

संघीय व्यवस्थापिका

(Federal Legislature)

1—संसद की संरचना एवं कार्य	96—105
2—लोकसभा और राज्यसभा की शक्तियों की तुलना	106—109
3—संसद की विधि-निर्माण एवं वित्त-सम्बन्धी प्रक्रिया	109—118
4—संसद की समिति-व्यवस्था	118—121
5—लोकसभा का अध्यक्ष	121—126

अध्याय 7

राज्य की कार्यपालिका

(The State Executive)

1—राज्यपाल	127—132
2—राज्य की मंत्रि-परिषद्	132—137

अध्याय 8

राज्य-विधानमण्डल

(The State Legislature)

1—विधान-मण्डल का सङ्गठन और कार्य	138—143
2—विधान सभा और विधान परिषद् की शक्तियों की तुलना	143—146
3—व्यवस्थापिका की क्रियाएँ और वित्तीय प्रक्रिया	146—148

विषय पृष्ठ

अध्याय 9

भारतीय न्यायपालिका

(Indian Judiciary)

1—भारतीय न्यायपालिका की विशेषताएँ 149—151
2—उच्चतम न्यायालय 151—159
3—राज्यों में उच्च न्यायालय 159—163
4—राज्यों की न्याय-व्यवस्था और हमारी न्याय-प्रणाली के दोष 163—166

अध्याय 10

केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों का शासन

(The Territories Administered by the Centre)

1—सङ्घीय क्षेत्रों की प्रशासन-व्यवस्था 167—169
2—दिल्ली का शासन-प्रबन्ध 169—173

अध्याय 11

केन्द्र और राज्यों का सम्बन्ध

(Relations Between the Centre and the States)

1—वैधानिक, प्रशासकीय और आर्थिक सम्बन्ध 174—181

अध्याय 12

सरकारी नौकरियाँ और लोक-सेवा-आयोग

(Government Services and the Public Service Commissions)

1—सरकारी नौकरियाँ 182—185
2—लोक-सेवा-आयोग 185—188

अध्याय 13

राजनीतिक दल और निर्वाचन

(Political Parties and the Elections)

1—भारतीय दलीय-पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ 189—191
2—विभिन्न राजनीतिक दल 192—197
3—निर्वाचन-पद्धति 198—202

विषय पृष्ठ

अध्याय 14

-स्थानीय स्वशा

(Local Self Government)

1—स्थानीय संस्थाओं से लाभ, उनका वर्गीकरण, कार्य, और सुधार 203—206
2—नगरनिगम एवं नगरपालिकाएँ 206—212
3—नगर क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियाँ और छावनी बोर्ड 212—213
4—जिला-परिषद् 213—216
5—ग्राम सभाएँ, ग्राम पंचायतें और न्याय पंचायतें 216—221

अध्याय 15

कुछ अन्य प्रमुख ि य

(Some Other Important Topics)

1—भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया 222—224
2—भारत का महान्यायवादी 224—225
3—भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक 225—226
4—भारत में राज्यों का पुनर्गठन 226—227
5—भारत में निर्वाचन-आयोग 227—228
6—भारतीय संविधान में आपात उपबंध 228—231

अध्याय 16

भारतीय संविधान की अन्य देशों के संविधानों से तुलना

(Comparison with other Constitutions of the World)

1—ब्रिटिश, अमेरिकन, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विटजरलैंड के संविधानों से तुलना। 232—241

अध्याय | 1

भारतीय संविधान का विकास एवं महत्व
(DEVELOPMENT AND THE IMPORTANCE OF THE INDIAN CONSTITUTION)

भारतीय संविधान का विकास

(The Development of the Indian Constitution)

प्रश्न—भारत के संवैधानिक विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

(Give a brief account of the Constitutional development of India)

आधुनिक भारतीय संविधान के विकास के विषय में आप क्या जानते हैं? बतलाइए कि भारतीय गणतंत्र के संविधान में कौन-कौन से संशोधन किये गए हैं?

(What do you know about the development of the Indian Constitution? What amendments have been made in the Constitution of Indian Republic?)

भूमिका (Introduction)

भारत का संवैधानिक विकास वास्तव में बंगाल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से प्रारम्भ होता है। बंगाल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने की थी। सन् 1600 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संगठन लन्दन में किया गया। इस कम्पनी का उद्देश्य भारत और अन्य पूर्वी देशों के व्यापार से लाभ उठाना था, परन्तु भारत की राजनीतिक दुर्दशा से लाभ उठाकर कम्पनी के कर्मचारियों ने राजकीय मामलों में हस्तक्षेप प्रारम्भ किया। सन् 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात भारत की एकता छिन्न भिन्न हो गई और इससे लाभ उठाकर कम्पनी ने अपनी शक्ति का विस्तार प्रारम्भ किया। सन् 1764 ई० के बक्सर युद्ध के पश्चात भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना हुई धीरे-धीरे अपनी कूटनीति

के फलस्वरूप अंग्रेज भारत में अपने राज्य का विस्तार करने लगे और सन् 1849 तक लगभग सम्पूर्ण भारत उनके आधिपत्य में आ गया।

संवैधानिक विकास के विभिन्न चरण (Different Phases of the Constitutional Development)

अंग्रेजों ने भारत में सन् 1947 ई० तक राज्य किया और उनके शासन काल में समय-समय पर भारतीय शासन-व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये गये। 15 अगस्त सन् 1947 ई० को भारत स्वतंत्र हुआ और तत्पश्चात भारतीय गणतंत्र के संविधान का निर्माण हुआ जो 26 जनवरी, सन 1950 ई० से लागू हुआ। सन् 1950 ई० के पश्चात भारत के संविधान में अनेक संशोधन किये। अध्ययन की सुविधा के लिये भारतीय संविधान के विकास को 6 चरणों में विभाजित किया जाता है :—

(1) प्रथम चरण (सन् 1773 ई०—1857 ई० तक)।
(2) द्वितीय चरण (सन् 1858 ई०—1909 ई० तक)।
(3) तृतीय चरण (सन् 1910 ई०—1939 ई० तक)।
(4) चतुर्थ चरण (सन् 1940 ई०—1947 ई० तक)।
(5) पंचम् चरण (सन् 1947 ई०—1950 ई० तक)।
(9) षष्ठम् चरण (सन् 1950 ई०से आज तक)।

प्रथम चरण (First Phase)

सन् 1773 ई० से सन् 1857 ई० तक के संवैधानिक विकास को प्रथम चरण के अन्तर्गत रखा गया है। इस चरण में निम्नलिखित अधिनियम पारित किये गये :—

(1) सन् 1773 ई० का रेग्यूलेटिंग एक्ट—भारत के विधान की आधारशिला सन् 1773 ई० का रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित करके रखी गई। इस एक्ट के द्वारा बंगाल के गवर्नर को ब्रिटिश भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया और उसकी सहायता के हेतु 4 सदस्यों की एक काउन्सिल बनाई गई। काउन्सिल के बहुमत सदस्यों की राय मानने के लिए गवर्नर जनरल बाध्य होता था। बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को भी गवर्नर जनरल के अधीन कर दिया गया। कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) की स्थापना की गई। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन छोटे न्यायाधीश रखे गए। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग एक्ट के द्वारा कम्पनी के शासन के अधीन जो भारतीय क्षेत्र थे उनके लिए एक अखिल भारतीय सरकार की स्थापना की गई।

(2) पिट का इण्डिया एक्ट—रेग्यूलेटिंग एक्ट को भारत के विधान की आधारशिला कहा जाता है, परन्तु इस एक्ट में अनेक दोष थे। इन दोषों को दूर करने

के हेतु सन् 1784 ई० में पिट का इण्डिया एक्ट पारित किया गया। इस एक्ट के अनुसार एक 6 सदस्यों के बोर्ड आफ कन्ट्रोल की नियुक्ति की गई जो कम्पनी के समस्त कार्यों की देखभाल करता था। कांउन्सिल के सदस्यों की संख्या घटाकर तीन कर दी गई और गवर्नर जनरल को निषेधाधिकार (Veto) का अधिकार दे दिया गया। गवर्नर जनरल से देशी नरेशों से सन्धि अथवा युद्ध करने का अधिकार छीन लिया गया और इस कार्य के हेतु पार्लियामेंट की स्वीकृति अनिवार्य कर दी गई। काउन्सिल और सुप्रीम कोर्ट के अधिकार स्पष्ट निश्चित कर दिये गये।

(3) सन् 1793 ई० और सन् 1813 ई० के चार्टर एक्ट—सन् 1793 ई० के आज्ञा पत्र (चार्टर एक्ट) के द्वारा गवर्नर जनरल और गवर्नरों के अधिकारों में कुछ परिवर्तन किया गया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में 20 वर्ष तक और व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया गया। सन् 1813 ई० के आज्ञा पत्र के द्वारा कम्पनी के राज्य की सत्ता ब्रिटेन के सम्राट के हाथों में आ गई। कोई भी अंग्रेज व्यापारी भारत से चीनी और चाय के व्यापार के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का व्यापार कर सकता था। इस एक्ट के द्वारा भारत में बड़े पादरी का पद स्थापित किया गया और भारत में शिक्षा की व्यवस्था के हेतु कम्पनी को धनराशि व्यय करने की आज्ञा दी गई।

(4) सन् 1833 ई० का चार्टर एक्ट—सन् 1833 ई० में एक नवीन आज्ञा पत्र पारित किया गया जिसके अनुसार अंग्रेजों को चीन से भी व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त हो गई। इस एक्ट के अनुसार कम्पनी का भारत की भूमि पर, ब्रिटेन के सम्राट और उसकी सन्तान का अधिकार घोषित किया गया। गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल को समस्त ब्रिटिश भारत के हेतु कानून बनाने का अधिकार दिया गया और बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों से यह अधिकार छीन लिया गया। गवर्नर जनरल की काउन्सिल में एक कानूनी सदस्य की भी बढ़ोत्तरी की गई। भारतीय कानूनों में संशोधन करने के लिए लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की गई।

सन् 1853 ई० का चार्टर एक्ट—इस चार्टर ऐक्ट के द्वारा कम्पनी का भारत में शासन करने का अधिकार 20 वर्ष के लिये और बढ़ा दिया गया। कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के 18 सदस्यों में से 6 सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार ब्रिटेन के सम्राट को दिया गया। एक व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई जिसमें गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के 4 सदस्य, प्रधान सेनापति, और 6 अन्य सदस्य हो सकते थे। इस एक्ट के द्वारा सिविल सर्विस की प्रतियोगिता के द्वार सभी के लिए खोल दिये गये।

द्वितीय चरण (Second Phase)

सन् 1858 से संवैधानिक विकास का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है। सन् 1909 ई० तक के संवैधानिक परिवर्तनों को इस चरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में सन् 1858 ई० से सन् 1909 ई० के मध्य हुए संवैधानिक विकास की चर्चा कर रहे हैं :—

(1) सन 1858 ई० का गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट—सन् 1857 ई० के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् ब्रिटेन की ससद को यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि भारत में इस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन अधिक दिनो तक नहीं चल सकता। फलस्वरूप, संसद ने सन 1858 ई० में एक एक्ट पारित कर भारतीय शासन के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिए। सेक्रेटरी आफ स्टेट्स को सहायता प्रदान करने के लिये 15 सदस्यों की एक काउन्सिल का निर्माण किया गया और इस काउन्सिल को 'ईस्ट इण्डिया काउन्सिल' के नाम से पुकारा गया। काउन्सिल का प्रधान ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का एक सदस्य होता था, जिसे भारत मंत्री कहा जाता था। परन्तु इस एक्ट के द्वारा इस प्रकार का कोई विधान नहीं किया कि काउन्सिल की सभी राय मान ली जायेगी। ब्रिटेन की महारानी ने समस्त शासन-सम्बन्धी अधिकार अपने हाथ में ले लिये और इस बात की घोषणा की कि अब किसी भेद-भाव के बिना सभी को समान रूप से नौकरी प्रदान की जायेगी। यह भी घोषणा की गई कि धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि बातें किसी भी व्यक्ति की उन्नति में बाधक नहीं होगी। सरकार किसी के धार्मिक विचारों और विश्वासों में हस्तक्षेप नही करेगी।

(2) सन 1861 ई० और सन 1892 ई० के इण्डिया काउन्सिल एक्ट—सन् 1858 ई० के एक्ट के पश्चात् भी कुछ ऐसी बातें थीं जिनका समाधान आवश्यक था। फलस्वरूप, सन् 1861 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार भारतीयों को शासन में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हुआ। प्रान्तीय सरकारों को कानून बनाने का अधिकार मिला परन्तु कानून के लिये गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। सन् 1892 ई० में एक दूसरा एक्ट पास किया गया जसके अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय काउन्सिल में नामजद सदस्यों की संख्या कम से कम 10 और अधिक से अधिक 16 कर दी गई और उन सदस्यों में 10 का गैर-सरकारी होना अनिवार्य था। यद्यपि इस एक्ट के द्वारा सुधार लाने का प्रयास किया गया था; परन्तु चुनाव-सम्बन्धी नियम इतने दोषपूर्ण थे कि स्वतंत्र विचार के व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो सका था।

(4) सन् 1909 ई० का इण्डिया काउन्सिल एक्ट या मार्ले-मिण्टो सुधार—सन् 1885 ई० में इंडयन नेशनल कांग्रेस का जन्म हो चुका था। सन 1892

ई० में यह संस्था काफी प्रभावशाली हो चुकी थी और इसने अपने अनेक अधिवेशनों में शासन-सम्बन्धी सुधारों की माँग की थी। लार्ड कर्जन की साम्राज्यवादी नीति के फलस्वरूप देश में अशान्ति की भावना व्याप्त थी। अनेक क्रान्तिकारी दलों का जन्म हो चुका था और स्वतन्त्रता आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। धीरे-धीरे कांग्रेस की नरम और गरम दो पार्टियाँ बन चुकी थीं। ब्रिटेन की संसद—जिसमें इस समय नरम दल का बहुमत था—ने यह अनुभव किया कि अब भारतीयों के सहयोग के बिना भारत का शासन चलाना दुष्कर है। अतएव भारत के सचिव मार्ले ने गवर्नर जनरल मिन्टो के परामर्शानुसार भारत के विधान में कुछ सुधार किए। इन सुधारों के फलस्वरूप सन् 1909 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट सामने आया। इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और सदस्यों को शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछने एवं सरकार की आलोचना करने तथा बजट पर बहस करने के अधिकार प्रदान किए गये। गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। बंगाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नरों की काउन्सिल में भारतवासियों को नियुक्त करने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

इन सुधारों के पश्चात् भी भारतीय सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि गवर्नर जनरल को प्रत्येक बात में 'विटो' का अधिकार था। उसकी स्वीकृति के बिना गैर सरकारी सदस्य किसी प्रकार का प्रस्ताव नहीं रख सकते थे। सदस्यों को बजट के एक बहुत बड़े भाग पर बहस करने और वोट देने का अधिकार नहीं था। मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार प्रदान करके राष्ट्रीय भावना पर कुठाराघात करने का प्रयास किया गया था।

तृतीय चरण (Third Phase)

सन् 1910 ई० से सन् 1939 ई० तक के संवैधानिक विकास का तृतीय चरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस काल की प्रमुख घटनाओं एवं संवैधानिक परिवर्तनों की चर्चा यहाँ की जा रही है —

(1) सन 1919 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट या माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार—सन् 1911 ई० में इङ्गलैण्ड के सम्राट जार्ज पंचम भारत आये। भारतीय जनता में इङ्गलैण्ड के सम्राट के प्रति राजभक्ति की भावना उत्पन्न करने के हेतु भारत में उनका राज्याभिषेक किया गया। बंगाल के विभाजन को भी समाप्त कर दिया गया। परन्तु इन सब बातों से भी भारतीय जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। सन् 1912 ई० में दिल्ली दरबार के अवसर पर लार्ड हार्डिंज पर गोला फेंका गया जो भारतवासियों के असन्तोष का परिचायक था। इसके पश्चात् सन् 1914 ई० में

द्वितीय चरण (Second Phase)

सन् 1858 से संवैधानिक विकास का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है। सन् 1909 ई० तक के संवैधानिक परिवर्तनों को इस चरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में सन् 1858 ई० से सन् 1909 ई० के मध्य हुए संवैधानिक विकास की चर्चा कर रहे हैं :—

(1) सन 1858 ई० का गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट—सन् 1857 ई० के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् ब्रिटेन की संसद को यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि भारत में इस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन अधिक दिनो तक नहीं चल सकता। फलस्वरूप, संसद ने सन 1858 ई० में एक एक्ट पारित कर भारतीय शासन के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिए। सेक्रेटरी आफ स्टेट्स को सहायता प्रदान करने के लिये 15 सदस्यों की एक काउन्सिल का निर्माण किया गया और इस काउन्सिल को 'ईस्ट इण्डिया काउन्सिल' के नाम से पुकारा गया। काउन्सिल का प्रधान ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का एक सदस्य होता था, जिसे भारत मंत्री कहा जाता था। परन्तु इस एक्ट के द्वारा इस प्रकार का कोई विधान नहीं किया कि काउन्सिल की सभी राय मान ली जायेगी। ब्रिटेन की महारानी ने समस्त शासन-सम्बन्धी अधिकार अपने हाथ में ले लिये और इस बात की घोषणा की कि अब किसी भेद-भाव के बिना सभी को समान रूप से नौकरी प्रदान की जायेगी। यह भी घोषणा की गई कि धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि बातें किसी भी व्यक्ति की उन्नति में बाधक नहीं होगी। सरकार किसी के धार्मिक विचारों और विश्वासों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

(2) सन 1861 ई० और सन 1892 ई० के इण्डिया काउन्सिल एक्ट—सन् 1858 ई० के एक्ट के पश्चात् भी कुछ ऐसी बातें थीं जिनका समाधान आवश्यक था। फलस्वरूप, सन् 1861 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार भारतीयों को शासन में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हुआ। प्रान्तीय सरकारों को कानून बनाने का अधिकार मिला परन्तु कानून के लिये गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। सन् 1892 ई० में एक दूसरा एक्ट पास किया गया जसके अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय काउन्सिल में नामजद सदस्यों की संख्या कम से कम 10 और अधिक से अधिक 16 कर दी गई और उन सदस्यों में 10 का गैर-सरकारी होना अनिवार्य था। यद्यपि इस एक्ट के द्वारा सुधार लाने का प्रयास किया गया था; परन्तु चुनाव-सम्बन्धी नियम इतने दोषपूर्ण थे कि स्वतंत्र विचार के व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो सका था।

(4) सन् 1909 ई० का इण्डिया काउन्सिल एक्ट या मार्ले-मिण्टो सुधार—सन् 1885 ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हो चुका था। सन् 1892

ई० में यह संस्था काफी प्रभावशाली हो चुकी थी और इसने अपने अनेक अधिवेशनों में शासन-सम्बन्धी सुधारों की माँग की थी। लार्ड कर्जन की साम्राज्यवादी नीति के फलस्वरूप देश में अशान्ति की भावना व्याप्त थी। अनेक क्रान्तिकारी दलों का जन्म हो चुका था और स्वतन्त्रता आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। धीरे-धीरे कांग्रेस की नरम और गरम दो पार्टियाँ बन चुकी थीं। ब्रिटेन की संसद—जिसमें इस समय नरम दल का बहुमत था—ने यह अनुभव किया कि अब भारतीयों के सहयोग के बिना भारत का शासन चलाना दुष्कर है। अतएव भारत के सचिव मार्ले ने गवर्नर जनरल मिन्टो के परामर्शानुसार भारत के विधान में कुछ सुधार किए। इन सुधार के फलस्वरूप सन् 1909 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट सामने आया। इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और सदस्यों को शासन सम्बन्धी प्रश्न पूछने एवं सरकार की आलोचना करने तथा बजट पर बहस करने के अधिकार प्रदान किए गये। गैरसरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। बंगाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नरों की काउन्सिल में भारतवासियों को नियुक्त करने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

इन सुधारों के पश्चात् भी भारतीय सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि गवर्नर जनरल को प्रत्येक बात में 'विटो' का अधिकार था। उसकी स्वीकृति के बिना गैर सरकारी सदस्य किसी प्रकार का प्रस्ताव नहीं रख सकते थे। सदस्यों को बजट के एक बहुत बड़े भाग पर बहस करने और वोट देने का अधिकार नहीं था। मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार प्रदान करके राष्ट्रीय भावना पर कुठाराघात करने का प्रयास किया गया था।

तृतीय चरण (Third Phase)

सन् 1910 ई० से सन् 1939 ई० तक के संवैधानिक विकास को तृतीय चरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस काल की प्रमुख घटनाओं एवं संवैधानिक परिवर्तनों की चर्चा यहाँ की जा रही है —

(1) सन 1919 ई० का इण्डियन काउन्सिल एक्ट या माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार—सन् 1911 ई० में इङ्गलैण्ड के सम्राट जार्ज पंचम भारत आये। भारतीय जनता में इङ्गलैण्ड के सम्राट के प्रति राजभक्ति की भावना उत्पन्न करने के हेतु भारत में उनका राज्याभिषेक किया गया। बंगाल के विभाजन को भी समाप्त कर दिया गया। परन्तु इन सब बातों से भी भारतीय जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। सन् 1912 ई० में दिल्ली दरबार के अवसर पर लार्ड हार्डिंग पर गोला फेंका गया जो भारतवासियों के असन्तोष का परिचायक था। इसके पश्चात् सन् 1914 ई० में

प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटेन की सरकार ने यह
स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रही है।
थी कि यह युद्ध संसार को प्रजातन्त्र शासन के योग्य बना
महात्मा गांधी के सद्प्रयासों के फलस्वरूप भारतीयोंने इस
परन्तु साथ ही यह मांग की कि उन्हें भी स्वतन्त्रता प्राप्त
वायदा किया कि युद्ध के पश्चात् प्रत्येक देश को अपने
अधिकार स्वयं प्राप्त हो जायगा। 20 अगस्त, सन् 191
यह घोषणा की "ब्रिटिश सम्राट की सरकार की नीति
तन्त्रात्मक उत्तरदायी शासन प्रदान करने की है।" भार
प्रसन्न थे कि युद्ध के पश्चात् उन्हें कम से कम औपनिवे
जायगा; परन्तु दुर्भाग्य से उन्हें कुछ नहीं मिला और
रहा। अमृतसर के जलियानवाला बाग के भीषण हत्याक
के लिए कलंकित कर दिया। इसके फलस्वरूप देश में अस
और अधिक बढ़ गई। इसी वातावरण में सन् 1919
एक्ट पारित किया गया जिसे 'माण्ट-फोर्ड सुधारों' के नाम

सन् 1919 ई० के इण्डियन काउन्सिल एक्ट के
सदस्यों की संख्या 8 से 12 तक निश्चित कर दी गई।
चाहिये थे जो कम से कम 10 वर्ष तक भारत में रहे हों
लौटे 5 वर्ष से अधिक न हुआ हो। काउन्सिल की अवधि
गई और भारत-सचिव को अपना वेतन इङ्गलैण्ड के खजाने
सविस और बड़ी नौकरियों में नियुक्ति का अधिकार भार
और इङ्गलैण्ड में भारत के हाई कमिश्नर की नियुक्ति की
लिए सामान खरीदना और भारतीयों की देखभाल करना
सभा में दो भवनों का निर्माण किया गया, (
काउन्सिल आफ स्टेट्स। एसेम्बली में 104
सदस्य रखे गये। काउन्सिल में कुल सदस्यों
निर्वाचित और 27 मनोनीत होते थे। एसेम्
की पांच वर्ष रखी गई। वायसराय की का
भारतवासी होते थे। परन्तु वायसराय
नहीं था।

प्रत्येक प्रान्त में गवर्नर की स
व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई

और (2) हस्तांतरित में विभाजित किया गया। जैसे, पुलिस, न्याय, नहर और राजस्व आदि विषय रक्षित रखे गये और इन विभागों का शासन गवर्नर अपनी कार्यकारिणी की सहायता से करता था। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, कृषि और ग्राम सुधार आदि को हस्तांतरित विषयों में रखा गया और ये विभाग मन्त्रि-मण्डल के अधीन होते थे। मन्त्रियों की नियुक्ति निर्वाचित सदस्यों में से की जाती थी और मन्त्री धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस एक्ट के द्वारा नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों के अधिकारों एवं उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई।

माण्ट-फोर्ड सुधारों ने भी भारतवासियों को सन्तोष प्रदान नहीं किया क्योंकि इस एक्ट के पारित हो जाने के बाद भी गवर्नरों और गवर्नर जनरल के हाथ में शासन की वास्तविक बागडोर रहती थी और वे भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे। भारतवासी जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड और मार्शल लॉ आदि की घटनाओं से अत्यन्त क्षुब्ध हो चुके थे। मुसलमानों ने 'खिलाफत आन्दोलन' छेड़ा और महात्मा गांधी और कांग्रेस ने उसमें पूरा सहयोग दिया। महात्मा गांधी ने 'अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ किया और टैगोर ने अपनी 'सर' की पदवी का परित्याग किया।

(2) गोलमेज सम्मेलन और सन् 1935 ई० का एक्ट—माण्ट-फोर्ड सुधारों की जाँच हेतु सन् 1927 ई० में साइमन कमीशन भारत आया जिसका विरोध भारतवासियों ने काले झंडे दिखाकर किया। कमीशन की रिपोर्ट असन्तोषपूर्ण थी। 12 नवम्बर, सन् 1930 ई० से 9 जनवरी सन् 1931 ई० तक चलने वाले प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कुछ भारतीय नेताओं और नरेशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन से कोई लाभ नहीं हुआ। सम्मेलन में भारत को स्वतन्त्र उपनिवेश बनाने का फैसला नहीं किया गया और फलस्वरूप भारतवासी क्षुब्ध हो उठे। कांग्रेस ने एक बार फिर असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया और यह आन्दोलन सन् 1931 के गांधी-इरविन समझौते के पश्चात् समाप्त हुआ। 9 सितम्बर सन् 1931 ई० से प्रारम्भ होने वाले दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए महात्मा गांधी इंग्लैण्ड गये, परन्तु इस सम्मेलन से भी भारतवासियों को कोई राहत नहीं मिली। अंग्रेजों ने बड़ी कूटनीति से एक साम्प्रदायिक समस्या पैदा कर दी जिसमें कोई फैसला नहीं हो सका। महात्मा गांधी निराश होकर भारत लौटे, परन्तु जहाज से उतरने से पहले ही उन्हें बन्दी बना लिया गया। देश में पुलिस तथा फौजी शासन लागू कर दिया गया और हजारों देश-भक्तों को जेलों में ठूँस दिया गया। सन् 1932 ई० में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ, परन्तु कांग्रेस ने उसका बहिष्कार किया।

मार्च, सन् 1933 ई० में एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया। इस श्वेत-पत्र के द्वारा देश में और अधिक क्षोभ की भावना उत्पन्न हो गई। भारतवासियों ने यह

फैसला किया कि जो कुछ इस पत्र में लिखा है उसका बहिष्कार किया जाएगा। सन् 1933 ई० के श्वेत-पत्र पर बैठाई गई कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 22 सितम्बर, सन् 1934 को पार्लियामेन्ट में भेज दी और इस रिपोर्ट के आधार पर ही सन् 1935 ई० का एक्ट पारित किया गया।

सन 1935 ई० के एक्ट द्वारा भारतीय काउन्सिल को तोड़ दिया गया और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन पर भारत-सचिव के अधिकारों को कम कर दिया गया। सम्पूर्ण भारत के लिये एक संघ शासन की योजना बनाई गई। केन्द्रीय शासन में दोहरे शासन विधान (Dual System of Govt.) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई। द्वैध शासन के फलस्वरूप सुरक्षा, सैनिक विभाग, ईसाई धर्म और वैदेशिक नीति आदि के विषयों में गवर्नर जनरल को अपने विवेकानुसार फैसला लेने का अधिकार दिया गया और उसकी सलाह के लिए तीन सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। शेष विषयों को मन्त्रि-मण्डल के अधीन रखा गया, जो धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता था। गवर्नर जनरल को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये। संघात्मक सरकार होने के कारण एक सङ्घीय न्यायालय की स्थापना की गई।

प्रान्तों में द्वैध शासन समाप्त कर दिया गया और बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, मद्रास और बम्बई में दो सदनीय धारा सभाओं की स्थापना की गई। प्रान्तों के गवर्नरों के अधिकारों को भी बढ़ा दिया गया।

सन् 1935 ई० के एक्ट के अनुसार सन् 1937 ई० में देश भर में चुनाव हुये। इस चुनाव के फलस्वरूप 8 प्रान्तों में कांग्रेस का मन्त्रि-मण्डल बना। प्रान्तों के गवर्नरों ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे मन्त्रि-मण्डल के किसी कार्य में ...क्षेप नहीं करेंगे। प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों के बनने के कुछ ही दिन बाद यह निश्चित हो गया कि ये सरकारें अधिक दिनों तक नहीं चल सकतीं। सन् 1939 ई० में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और भारतीयों की राय जाने बिना ही अंग्रेजी सरकार ने भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने यह कहा कि जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं प्रदान की जाती तब तक भारतवासी युद्ध में भाग नहीं लेंगे। फलस्वरूप, संकटकाल की घोषणा करके कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों को भंग कर दिया गया और प्रान्तों का शासन गवर्नरों के हाथ में आ गया।

चतुर्थ चरण (Fourth Phase)

सन् 1940 ई० सन् 1947 ई० तक के मध्य हुये संवैधानिक विकास को चतुर्थ चरण के अन्तर्गत रखा गया है और इस बीच हुई मुख्य घटनाओं और 'संवैधानिक परिवर्तनों' की चर्चा यहां संक्षेप में की जा रही है :—

(1) क्रिप्स मिशन—ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के फलस्वरूप भारतवासियों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अँग्रेजों ने यह घोषणा की कि उनका उद्देश्य भारत में स्वराज्य स्थापित करना है। सन् 1941 ई० में जापान भी युद्ध में कूद पड़ा। भारत की अँग्रेज सरकार ने यह अनुभव किया कि बिना भारतवासियों के सहयोग के जापान को हराना दुष्कर है। अतः भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। क्रिप्स महोदय अपनी कुछ योजनाएँ लेकर भारत आए और उन्होंने दिल्ली में काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं से बातचीत की। क्रिप्स की योजना में अनेक बुराइयाँ थीं। सबसे बड़ी बुराई यह थी कि देश की रक्षा का अधिकार किसी भारतीय को न देकर अँग्रेज कमाण्डर-इन चीफ को दिया गया था। साथ ही इस योजना से काँग्रेस की यह बात भी फलीभूत नहीं हो रही थी कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे और गवर्नर जनरल उसका वैधानिक अध्यक्ष हो। काँग्रेस ने अपनी ये दोनों माँगें क्रिप्स महोदय के समक्ष रखीं, जो अस्वीकार कर दी गईं। इस प्रकार क्रिप्स योजना असफल रही और क्रिप्स महोदय को निराश होकर इङ्गलैण्ड लौट जाना पड़ा।

(2) वेवेल योजना—क्रिप्स योजना के असफल होते ही भारत की स्थिति फिर बिगड़ने लगी। 8 अगस्त, सन् 1942 को काँग्रेस ने अपने बम्बई अधिवेशन में, "भारत छोड़ो आन्दोलन" का प्रस्ताव पारित किया। ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन का दमन करना प्रारम्भ किया और देश के बड़े-बड़े नेता जेलों में ठूंस दिये गये। इसी समय गाँधीजी ने 21 दिन का उपवास किया परन्तु इसका भी अँग्रेजी सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सन् 1944 ई० में गाँधीजी जेल में सख्त बीमार पड़े। अँग्रेजी सरकार ने डर के मारे उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया। इसी बीच लार्ड वेवल भारत के गवर्नर जनरल होकर आये। सन् 1945 ई० में उन्होंने अपनी एक योजना रखी। इस योजना में भारत में अन्तरिम सरकार बनाने की बात कही गई, परन्तु सुरक्षा विभाग को वायसराय के हाथ में ही रखा गया। फलस्वरूप, काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही इस योजना को भी अस्वीकार कर दिया।

(3) कैबिनेट मिशन—इसी समय केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए आम चुनाव हुए। 8 प्रान्तों में काँग्रेस को बहुमत मिला और वहाँ काँग्रेस का मन्त्रि मण्डल बना। दिसम्बर सन् 1945 में एक शिष्ट मण्डल भारत के दौरे पर आया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने का निश्चय किया गया। 5 मई, सन् 1946 ई० को शिमले में कैबिनेट मिशन ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। काँग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं को आमन्त्रित किया गया, परन्तु

फैसला किया कि जो कुछ इस पत्र में लिखा है उसका बहिष्कार किया जाएगा। सन् 1933 ई० के श्वेत-पत्र पर बैठाई गई कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 22 सितम्बर, सन् 1934 को पार्लियामेन्ट में भेज दी और इस रिपोर्ट के आधार पर ही सन् 1935 ई० का एक्ट पारित किया गया।

सन 1935 ई० के एक्ट द्वारा भारतीय काउन्सिल को तोड़ दिया गया और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन पर भारत-सचिव के अधिकारों को कम कर दिया गया। सम्पूर्ण भारत के लिये एक सङ्घ शासन की योजना बनाई गई। केन्द्रीय शासन में दोहरे शासन विधान (Dual System of Govt.) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई। द्वैध शासन के फलस्वरूप सुरक्षा, सैनिक विभाग, ईसाई धर्म और वैदेशिक नीति आदि के विषयों में गवर्नर जनरल को अपने विवेकानुसार फैसला लेने का अधिकार दिया गया और उसकी सलाह के लिए तीन सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। शेष विषयों को मन्त्रि-मण्डल के अधीन रखा गया, जो धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता था। गवर्नर जनरल को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये। संघात्मक सरकार होने के कारण एक सङ्घीय न्यायालय की स्थापना की गई।

प्रान्तों में द्वैध शासन समाप्त कर दिया गया और बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, मद्रास और बम्बई में दो सदनीय धारा सभाओं की स्थापना की गई। प्रान्तों के गवर्नरों के अधिकारों को भी बढ़ा दिया गया।

सन् 1935 ई० के एक्ट के अनुसार सन् 1937 ई० में देश भर में चुनाव हुये। इस चुनाव के फलस्वरूप 8 प्रान्तों में कांग्रेस का मन्त्रि-मण्डल बना। प्रान्तों के गवर्नरों ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे मन्त्रि-मण्डल के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों के बनने के कुछ ही दिन बाद यह निश्चित हो गया कि ये सरकारें अधिक दिनों तक नहीं चल सकतीं। सन् 1939 ई० में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और भारतीयों की राय जाने बिना ही अंग्रेजी सरकार ने भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने यह कहा कि जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं प्रदान की जाती तब तक भारतवासी युद्ध में भाग नहीं लेंगे। फलस्वरूप, संकटकाल की घोषणा करके कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों को भंग कर दिया गया और प्रान्तों का शासन गवर्नरों के हाथ में आ गया।

चतुर्थ चरण (Fourth Phase)

सन् 1940 ई० सन् 1947 ई० तक के मध्य हुये संवैधानिक विकास को चतुर्थ चरण के अन्तर्गत रखा गया है और इस बीच हुई मुख्य घटनाओं और 'संवैधानिक परिवर्तनों' की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(1) क्रिप्स मिशन—ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के फलस्वरूप भारत-वासियों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अँग्रेजों ने यह घोषणा की कि उनका उद्देश्य भारत में स्वराज्य स्थापित करने का है। सन् 1941 ई० में जापान भी युद्ध में कूद पड़ा। भारत की अँग्रेज सरकार ने यह अनुभव किया कि बिना भारतवासियों के सहयोग के जापान को हराना दुष्कर है। अतः भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। क्रिप्स महोदय अपनी युद्ध योजनाएँ लेकर भारत आए और उन्होंने दिल्ली में काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं से बातचीत की। क्रिप्स की योजना में अनेक बुराइयाँ थी। सबसे बड़ी बुराई यह थी कि देश की रक्षा का अधिकार किसी भारतीय को न देकर अँग्रेज कमाण्डर-इन-चीफ को दिया गया था। साथ ही इस योजना से काँग्रेस की यह बात भी फलीभूत नहीं हो रही थी कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे और गवर्नर जनरल उसका वैधानिक अध्यक्ष हो। काँग्रेस ने अपनी ये दोनों माँगें क्रिप्स महोदय के समक्ष रखीं, जो अस्वीकार कर दी गई। इस प्रकार क्रिप्स योजना असफल रही और क्रिप्स महोदय को निराश होकर इङ्गलैण्ड लौट जाना पड़ा।

(2) वेवेल योजना—क्रिप्स योजना के असफल होते ही भारत की स्थिति फिर बिगड़ने लगी। 8 अगस्त, सन् 1942 को काँग्रेस ने अपने बम्बई अधिवेशन में, "भारत छोड़ो आन्दोलन" का प्रस्ताव पारित किया। ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन का दमन करना प्रारम्भ किया और दल के बड़े-बड़े नेता जेल में ठूँस दिये गये। इसी समय गाँधीजी ने 21 दिन का उपवास किया परन्तु इसका भी अँग्रेजी सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सन् 1944 ई० में गांधीजी जेल में सख्त बीमार पड़े। अँग्रेजी सरकार ने डर के मारे उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया। इसी बीच लार्ड वेवेल भारत के गवर्नर जनरल होकर आये। सन् 1945 ई० में उन्होंने अपनी एक योजना रखी। इस योजना में भारत में अन्तरिम सरकार बनाने की बात कही गई, परन्तु सुरक्षा विभाग को वायसराय के हाथ में ही रखा गया। फलस्वरूप, काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही इस योजना को भी अस्वीकार कर दिया।

(3) कैबिनेट मिशन—इसी समय केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए आम-चुनाव हुए। 8 प्रान्तों में काँग्रेस को बहुमत मिला और वहाँ काँग्रेस का मन्त्रि मण्डल बना। दिसम्बर सन् 1945 में एक शिष्ट मण्डल भारत के दौरे पर आया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने का निश्चय किया गया। 5 मई, सन् 1946 ई० को शिमले में कैबिनेट मिशन ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। काँग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं को आमन्त्रित किया गया, परन्तु

फैसला किया कि जो कुछ इस पत्र में लिखा है उसका वहिष्कार किया जाएगा। सन् 1933 ई० के श्वेत-पत्र पर वैठाई गई कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 22 सितम्बर, सन् 1934 को पार्लियामेन्ट में भेज दी और इस रिपोर्ट के आधार पर ही सन् 1935 ई० का एक्ट पारित किया गया।

सन 1935 ई० के एक्ट द्वारा भारतीय काउन्सिल को तोड़ दिया गया और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन पर भारत-सचिव के अधिकारों को कम कर दिया गया। सम्पूर्ण भारत के लिये एक सङ्घ शासन की योजना बनाई गई। केन्द्रीय शासन में दोहरे शासन विधान (Dual System of Govt.) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई। द्वैध शासन के फलस्वरूप सुरक्षा, सैनिक विभाग, ईसाई धर्म और वैदेशिक नीति आदि के विषयों में गवर्नर जनरल को अपने विवेकानुसार फैसला लेने का अधिकार दिया गया और उसकी सलाह के लिए तीन सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। शेष विषयों को मन्त्रि-मण्डल के अधीन रखा गया, जो धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता था। गवर्नर जनरल को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये। संघात्मक सरकार होने के कारण एक सङ्घीय न्यायालय की स्थापना की गई।

प्रान्तों में द्वैध शासन समाप्त कर दिया गया और बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, मद्रास और बम्बई में दो सदनीय धारा सभाओं की स्थापना की गई। प्रान्तों के गवर्नरों के अधिकारों को भी बढ़ा दिया गया।

सन् 1935 ई० के एक्ट के अनुसार सन् 1937 ई० में देश भर में चुनाव हुये। इस चुनाव के फलस्वरूप 8 प्रान्तों में कांग्रेस का मन्त्रि-मण्डल बना। प्रान्तों के गवर्नरों ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे मन्त्रि-मण्डल के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों के बनने के कुछ ही दिन बाद यह निश्चित हो गया कि ये सरकारें अधिक दिनों तक नहीं चल सकतीं। सन् 1939 ई० में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और भारतीयों की राय जाने बिना ही अंग्रेजी सरकार ने भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने यह कहा कि जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं प्रदान की जाती तब तक भारतवासी युद्ध में भाग नहीं लेंगे। फलस्वरूप, संकटकाल की घोषणा करके कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों को भंग कर दिया गया और प्रान्तों का शासन गवर्नरों के हाथ में आ गया।

चतुर्थ चरण (Fourth Phase)

सन् 1940 ई० सन् 1947 ई० तक के मध्य हुये संवैधानिक विकास को चतुर्थ चरण के अन्तर्गत रखा गया है और इस बीच हुई मुख्य घटनाओं और 'संवैधानिक परिवर्तनों' की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(1) क्रिप्स मिशन—ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के फलस्वरूप भारत-वासियों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ दिया । इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अँग्रेजों ने यह घोषणा की कि उनका उद्देश्य भारत में स्वराज्य स्थापित करने का है । सन् 1941 ई० में जापान भी युद्ध में कूद पड़ा । भारत की अँग्रेज सरकार ने यह अनुभव किया कि बिना भारतवासियों के सहयोग के जापान को हराना दुष्कर है । अतः भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा । क्रिप्स महोदय अपनी कुछ योजनाएँ लेकर भारत आए और उन्होंने दिल्ली में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं से बातचीत की । क्रिप्स की योजना में अनेक बुराइयाँ थीं । सबसे बड़ी बुराई यह थी कि देश की रक्षा का अधिकार किसी भारतीय को न देकर अँग्रेज कमाण्डर-इन-चीफ को दिया गया था । साथ ही इस योजना से कांग्रेस की यह बात भी फलीभूत नहीं हो रही थी कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे और गवर्नर जनरल उसका वैधानिक अध्यक्ष हो । कांग्रेस ने अपनी ये दोनों माँग क्रिप्स महोदय के समक्ष रखीं, जो अस्वीकार कर दी गईं । इस प्रकार क्रिप्स योजना असफल रही और क्रिप्स महोदय को निराश होकर इङ्गलैण्ड लौट जाना पड़ा ।

(2) वेवेल योजना—क्रिप्स योजना के असफल होते ही भारत की स्थिति फिर बिगड़ने लगी । 8 अगस्त, सन् 1942 को कांग्रेस ने अपने बम्बई अधिवेशन में, "भारत छोड़ो आन्दोलन" का प्रस्ताव पारित किया । ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन का दमन करना प्रारम्भ किया और देश के बड़े-बड़े नेता जेलों में ठूँस दिये गये । इसी समय गांधीजी ने 21 दिन का उपवास किया परन्तु इसका भी अँग्रेजी सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । सन् 1944 ई० में गांधीजी जेल में सख्त बीमार पड़े । अँग्रेजी सरकार ने डर के मारे उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया । इसी बीच लार्ड वेवेल भारत के गवर्नर जनरल होकर आये । सन् 1945 ई० में उन्होंने अपनी एक योजना रखी । इस योजना में भारत में अन्तरिम सरकार बनाने की बात कही गई, परन्तु सुरक्षा विभाग को वायसराय के हाथ में ही रखा गया । फलस्वरूप, कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही इस योजना का भी अस्वीकार कर दिया ।

(3) कैबिनेट मिशन—इसी समय केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए आम-चुनाव हुए । 8 प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत मिला और वहाँ कांग्रेस का मन्त्रि मण्डल बना । दिसम्बर सन् 1945 में एक शिष्ट मण्डल भारत के दौरे पर आया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने का निश्चय किया गया । 5 मई, सन् 1946 ई० को शिमले में कैबिनेट मिशन ने अपना कार्य प्रारम्भ किया । कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं को आमन्त्रित किया गया, परन्तु

दोनों में मतैक्य स्थापित नहो किया जा सका। कैबिनेट मिशन ने यह योजना रखी कि भारत का एक सङ्घ बनाया जाय जिसमें प्रान्तीय और देशी रियासतें दोनों सम्मिलित हों। सङ्घ को यातायात, विदेश विभाग, और सुरक्षा का विभाग सौंपा जाय। विभिन्न प्रान्तो को समूह बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाए जिसकी अपनी अलग-अलग धारा सभा और कार्यकारिणी हो। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बम्बई और मद्रास को एक समूह में रखा गया और पंजाब, सीमान्त तथा सिन्ध प्रदेश को दूसरे में। तीसरे में बंगाल और असम को सम्मिलित किया जाय। यह योजना भी भारत-वासियों को सन्तुष्ट नहीं कर सकी।

(4) माउण्टबेटन योजना—लार्ड वेवेल के पश्चात् माउण्टबैटेन भारत के गवर्नर जनरल बनकर भारत आये। माउण्टबैटेन एक उदार-हृदय राजनीतिज्ञ थे और वह भारत की राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। उन्होंने एक योजना रखी जिसके अनुसार भारत को दो टुकड़ों—भारत और पाकिस्तान, में बाँट दिया गया। पंजाब, सिन्ध, राजस्थान, सीमा प्रान्त और सिलहट जिलों को यह निर्णय करने का अधिकार दे दिया गया कि वह चाहें तो भारत में रहें या पाकिस्तान में। बंगाल और पंजाब के हिन्दू भागों को भी इसी प्रकार के अधिकार प्राप्त हुए। देशी रियासतों को यह अधिकार दिया गया कि ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता के अन्त होने के पश्चात् वे चाहें तो स्वतन्त्र रहें अथवा भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित हों। भारत पाकिस्तान दोनों को ही औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया गया। माउण्टबैटेन योजना को मुस्लिम लीग ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया।

4 जुलाई, सन् 1947 ई० को ब्रिटेन की संसद में भारत की स्वतन्त्रता का बिल पेश किया गया और 27 जुलाई, सन् 1947 को उसे पास कर दिया गया। यह बिल लार्ड माउण्टबैटेन को 3 जून, सन् 1947 वाली योजना को कार्यान्वित करने के लिए पारित किया गया था। इस बिल के अनुसार यह निश्चय किया गया कि 15 अगस्त, सन् 1947 ई० को समस्त भारत को दो उपनिवेशों, भारत तथा पाकिस्तान, में बाँट दिया जाय। इन उपनिवेशों को यह अधिकार दिया जाय कि वह चाहें तो ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल में रहें और चाहें उससे अलग हो जायें। यह दोनों ही राज्य अपने नये विधानों का निर्माण करने के समय तक सन् 1935 ई० के एक्ट के अनुसार ही राज्य करें। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल एवं प्रान्तीय गवर्नरों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया तथा मन्त्रियों को व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। भारत और पाकिस्तान दोनों को ही अपने-अपने गवर्नर जनरल नियुक्त करने का अधिकार दिया गया और देशी राज्यों को यह स्वतन्त्रता दी गई कि वे चाहें तो भारत में मिलें या पाकिस्तान में अथवा स्वतंत्र ही रहें।

पंचम चरण (Fifth Phase)

नये संविधान का निर्माण—भारत के संवैधानिक विकास के इस चरण में भारतीय गणराज्य के नवीन संविधान का निर्माण हुआ। 18 दिसम्बर, सन् 1946 ई० को ही अविभाजित भारत के लिए एक नवीन संविधान का निर्माण करने के लिए एक संविधान परिषद गठित की जा चुकी थी। इस परिषद् में कुल 385 सदस्य थे जिनमें से 292 सदस्य ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों को भेजने का अधिकार दिया गया था और 93 स्थान भारतीय रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए सुरक्षित रखे गये थे। देश के विभाजन के फलस्वरूप संविधान परिषद में कुल सदस्यों की संख्या 300 ही रह गई। आरम्भ में यह परिषद सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न नहीं थी, परन्तु भारत स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 ई० के फलस्वरूप यह सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न हो गई। यह परिषद काफी समय तक कुछ कार्य नहीं कर सकी क्योंकि रोड़े अटकाने वाले अनेक तत्व विद्यमान थे। 15 अगस्त, सन् 1947 ई० के पश्चात् ये प्रगति विरोधी तत्व समाप्त हो गये और परिषद ने बहुत तेजी से कार्य करना प्रारम्भ किया।

संविधान परिषद में भारतीय सामाजिक जीवन से सम्बद्ध सभी महान विभूतियों को स्थान दिया गया था। पं० जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, कृष्णास्वामी अय्यर, गोपालास्वामी आयंगर और टी० टी० कृष्णामाचारी आदि सभी चोटी के नेता इस परिषद् में सम्मिलित थे। संविधान को तैयार करने का कार्य प्रारूप समिति को सौंपा गया था जिसके अध्यक्ष डा० बी० आर० अम्बेदकर थे, जिन्हें भारतीय संविधान का जनक कहा जाता है। संविधान परिषद की पहली बैठक 9 नवम्बर, सन् 1946 को हुई परन्तु संविधान को अन्तिम रूप देने में पूरे 2 वर्ष 11 महीने और 17 दिन का समय लगा। इस बीच में परिषद के 11 अधिवेशन हुये और उसने 165 दिवस कार्य किया। 21 फरवरी, सन् 1948 को प्रारूप समिति ने संविधान परिषद् के अध्यक्ष के सम्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किये। 4 नवम्बर सन 1948 ई० से प्रारूप पर विचार प्रारम्भ हुआ। अनेक संशोधनों के पश्चात् 26 नवम्बर सन् 1949 ई० को संविधान पारित हुआ। भारत के गणराज्य दिवस 26 जनवरी सन 1950 ई० से यह संविधान लागू हुआ।

षष्ठम् चरण (Sixth Phase)

सन् 1950 ई० से आज तक संविधान में जो परिवर्तन या उसका विकास हुआ उसको षष्ठम् चरण के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। सन 1950 ई० से आज तक भारतीय संविधान में अनेक संशोधन हो चुके हैं जिनकी चर्चा यहाँ हम संक्षेप में कर रहे हैं —

प्रथम संशोधन—सन् 1951-52 ई० के प्रथम सामान्य निर्वाचन से पूर्व एक सदनीय संसद के द्वारा संविधान के 15, 19 8 [illegible] 176, 341, 342,

372 और 375 अनुच्छेदों में परिवर्तन किये गये तथा 31 (क) तथा 31 (ख) अनुच्छेद जोड़े गये। इन संशोधनों का सम्बन्ध शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्र में पिछड़े हुए लोगों के वाक् स्वातन्त्र्य पर रोक तथा जमींदारी उन्मूलन से था।

दूसरा संशोधन—यह संशोधन सन् 1952 ई० में हुआ। यह लोक सभा के सदस्यों से सम्बन्धित था। अभी तक लोक सभा के सदस्यों की संख्या का अधिकतम और न्यूनतम-सीमा निर्धारित थी। इस संशोधन के द्वारा न्यूनतम सीमा अर्थात् साढ़े सात लाख जनसंख्या के हेतु कम से कम एक प्रतिनिधि होगा, हटा दी गई।

तीसरा संशोधन—सन् 1954 ई० में संविधान के तृतीय संशोधन के द्वारा समवर्ती सूची के विषयों में वृद्धि की गई।

चौथा संशोधन—सन् 1911 ई० में अनुच्छेद 31, 31 (क) और अनुच्छेद 305 कुछ परिवर्तन किये गये। इन परिवर्तनों के द्वारा जनता के हित में ग्रहण की गई सम्पत्ति पर मुआवजे की दर निश्चित करने का सरकार को एकाधिकार प्राप्त हुआ तथा इस दर के विषय में कोई भी न्यायालय अपनी राय नहीं दे सकेगा।

पाँचवाँ संशोधन—सन् 1955 ई० में संविधान के अनुच्छेद 3 में यह संशोधन किया गया कि राज्यों की सीमा के परिवर्तन के सम्बन्ध में राज्यों को अपनी राय प्रकट करने का जो अधिकार प्राप्त है उसके लिए राय प्रकट करने की सीमा राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित कर दी जाय। यदि राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित समय के अन्दर कोई राज्य सरकार कोई राय न दे तो केन्द्रीय संसद को उसके सम्बन्ध में कानून पारित करने का अधिकार होगा।

छठाँ संशोधन—सन 1956 ई० के छठे संशोधन के द्वारा अन्तर्राज्य वाणिज्य व्यवस्था के अन्तर्गत क्रय-विक्रय पर के कर को समवर्ती सूची में रख दिया गया। सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी गई।

सातवाँ संशोधन—सन् 1956 ई० में किये गये इस संशोधन के द्वारा राज्यों का पुनर्गठन किया गया। क, ख और ग श्रेणी का वर्गीकरण समाप्त करके राज्यों के केवल दो वर्गीकरण रखे गये :—

(1) राज्य और

(2) संघीय भूभाग (Union Territories)

आठवाँ संशोधन—यह संशोधन अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं ऐंग्लो इण्डियनों के संसद एवं विधान सभाओं में आरक्षित स्थानों से सम्बन्धित था। इस आरक्षण सीमा को सन् 1970 ई० तक बढ़ा दिया गया।

नवाँ संशोधन—इस संशोधन के द्वारा बेरुवाड़ी क्षेत्र को पाकिस्तान को सौंपने की व्यवस्था की गई। यह संशोधन सन् 1960 ई० में हुआ।

दसवां संशोधन—सन् 1961 ई० में इस संशोधन के फलस्वरूप दादर और नगर हवेली भारत के राज्य-क्षेत्र में आ गये।

ग्यारहवां संशोधन—सन् 1961 ई० के इस संशोधन द्वारा राष्ट्रपति और उप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया में थोड़ा परिवर्तन किया गया। उप राष्ट्रपति के हेतु संसद के दोनों सदनों की बैठक बुलाने की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया गया। साथ ही यह भी व्यवस्था की गयी कि यदि संसद अथवा विधान सभाओं में कुछ स्थान रिक्त हों तो भी राष्ट्रपति का चुनाव हो सकता है।

बारहवां संशोधन—सन् 1962 ई० के इस संशोधन द्वारा गोवा, डामन और ड्यू को जो पहले पुर्तगाल में थे, भारतीय संघ में सम्मिलित करके उन्हें संघीय भू-भाग घोषित किया गया।

तेरहवां संशोधन—सन् 1962 ई० के इस संशोधन के द्वारा नागालैण्ड को एक पृथक राज्य बना दिया गया परन्तु कुछ समय के हेतु असम के राज्यपाल को नागालैण्ड का राज्यपाल तथा असम के उच्च न्यायालय को नागालैण्ड का उच्च न्यायालय माना गया।

चौदहवां संशोधन- सन् 1963 ई० के 14व संशोधन के द्वारा सदस्यों की संख्या बढ़कर 520 हो गई। केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों—हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा, गोवा, डामन, ड्यु एवं पाण्डेचेरी में विधान-सभाओं एवं मन्त्रि-परिषदों की व्यवस्था की गई।

पन्द्रहवां संशोधन—सन् 1963 ई० के इस संशोधन के द्वारा उच्च न्यायालय के अधिकारों में कुछ वृद्धि की गई और इन न्यायालयों के न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गयी।

सोलहवां संशोधन—सन् 1963 ई० के इस संशोधन द्वारा भारत के राज्य-क्षेत्र के अन्दर एक अन्य पूर्णत स्वतन्त्र राज्य की मांग को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। साथ ही यह प्रावधान किया गया कि संसद एवं राज्यों के विधान मंडलों की सदस्यता के प्रत्याशियों को भारत की अखंडता बनाये रखने और प्रभुसत्ता की रक्षा के हेतु शपथ ग्रहण करनी होगी।

सत्रहवां संशोधन—सन् 1964 ई० के सत्रहवें संशोधन का सम्बन्ध भी सम्पत्ति के अधिकार से था। इस संशोधन के अनुसार संविधान की नवम् सूची में कुछ और विधियां जोड़ी गई एवं सम्पत्ति अधिकार की स्पष्ट व्याख्या की गई।

अठारहवां संशोधन—सन् 1966 ई० के इस संशोधन के द्वारा पंजाब राज्य को दो राज्यों में विभाजित करके पंजाबी सूबा एवं हरियाणा राज्य की स्थापना की गई।

उन्नीसवाँ संशोधन—सन् 1966 ई० के इस संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 324 (1) के कुछ शब्दों को निकाल दिया गया। फलस्वरूप निर्वाचन याचिकाओं (Election Petitions) की सुनवाई सीधे उच्च न्यायालय में हो सकती है तथा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील हो सकती है।

बीसवाँ संशोधन—इस संशोधन की आवश्यकता कुछ न्यायिक पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अमान्य होने के फलस्वरूप हुई। संविधान के इस संशोधन द्वारा उन अधिकारियों के कार्यों को वैध बना दिया गया।

इक्कीसवाँ संशोधन—इस संशोधन के द्वारा संविधान की आठवीं सूची में सिन्धी भाषा को भी स्थान दिया गया।

बाइसवाँ संशोधन—इस संशोधन के द्वारा असम राज्य के अन्तर्गत एक स्वायत्तशासी पहाड़ी राज्य बनाने का निर्णय लिया गया। यह राज्य मेघालय के नाम से स्थापित हुआ।

तेइसवाँ संशोधन—इस संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के लिए संविधान में जो विशेष संरक्षणों की व्यवस्था की गई है वह 26 जनवरी 1970 से 26 जनवरी 1980 तक बढ़ा दी गई। ऐंग्लो-इण्डियनों के लिए भी यह संरक्षण 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।

चौबीसवें संशोधन का प्रस्ताव—संविधान में चौबीसवाँ संशोधन करने हेतु एक बिल विचाराधीन है जिसके अनुसार संविधान की धारा 368 और 13 में संशोधन किया जायगा और संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संवैधानिक संशोधन बिल राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति अवश्य देनी होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान के निर्माण से लागू होने के 21 वर्ष के अन्दर ही इसमें 23 संशोधन किये जा चुके हैं ! ये संशोधन इस बात के स्पष्ट परिचायक हैं कि भारत का संविधान आवश्यकताओं के अनुरूप सदैव विकसित हो रहा है और कालान्तर में जब भी कभी आवश्यक होगा विकास होता रहेगा।

भारतीय संविधान का महत्व

(The Importance of the Indian constitution)

प्रश्न—भारतीय संविधान के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालिये।
(Throw light on the importance of the study of the Indian Constitution)

संसार के विभिन्न देशों के संविधानों के अध्ययन का अपना अलग-अलग महत्व है। ब्रिटिश संविधान का सबसे बड़ा महत्व इस बात से है कि यह संविधान अलिखित होते हुए भी एक ऐसी शासन-व्यवस्था की नींव डालता है जो कि सच्चे प्रजातन्त्र को बनाये रखने में सफल है। इस हेतु उसका अध्ययन आवश्यक है। भारतीय संवि-

धान की उपयोगिता और महत्व के अनेक कारण हैं। यहाँ कुछ प्रमुख कारणों की चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं .—

(1) एक अनोखा संविधान—भारतीय संविधान एक अनोखा संविधान है। इस संविधान में विभिन्न देशों के संविधानों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। एक ओर ब्रिटेन की शासन-पद्धति को अपनाया गया है तो दूसरी ओर अमेरिका के संविधान के मूलाधिकारों तथा आयरलैण्ड के नीति-निर्देशक तत्वों का समावेश इस संविधान में किया गया है। सत्य तो यह है कि इस संविधान में विभिन्न संविधानों की अच्छी बातों को ग्रहण कर लिया गया है और इसलिए इस संविधान के अध्ययन का विशेष महत्व है।

(2) सबसे बड़े प्रजातंत्र की स्थापना—भारतीय संविधान के द्वारा इस देश में प्रजातन्त्रात्मक शासन की स्थापना की गई है। भारत सबसे बड़ा प्रजातन्त्रात्मक देश है। प्रजातन्त्र को इस देश में अत्यन्त सफलतापूर्वक अपनाया गया है और इसके फलस्वरूप संसार के विभिन्न देशों के राजनीतिज्ञों के हेतु भारतीय संविधान के अध्ययन का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

(3) सबसे लम्बा और विस्तृत संविधान—भारतीय संविधान के अध्ययन के हेतु लोग इसलिये भी आकर्षित होते हैं कि यह संसार का सबसे लम्बा और विस्तृत संविधान है। संयुक्त राज्य अमरिका के संविधान को पढ़ने में अधिक से अधिक तीन-चार घण्टे लगते हैं परन्तु भारतीय संविधान का अध्ययन एक दिन में पूरा करना कठिन होगा। इस विस्तार का कारण यह है कि भारतीय संविधान में प्रत्येक बात को अत्यन्त स्पष्ट रूप में लिख दिया गया है।

(4) संघात्मक और एकात्मक संविधान—भारतीय संविधान के अध्ययन का महत्व इसलिये भी है कि इसके द्वारा संघात्मक और एकात्मक दोनों ही शासन व्यवस्थाओं के दर्शन होते हैं। भारत विभिन्न उपराज्यों का एक अविछिन्न संघ है परन्तु इसके संविधान में अनेक बातें एकात्मक प्रणाली जैसी हैं।

(5) स्वतन्त्रता, समता, न्याय और बन्धुत्व जैसे महान राजनीतिक आदर्शों से युक्त—भारतीय संविधान के अध्ययन का महत्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि उसमें स्वतन्त्रता, समता, न्याय और बन्धुत्व जैसे महान राजनीतिक आदर्शों का समावेश किया गया है। ये आदर्श नागरिकों के मूलाधिकारों और राज्य की नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अत्यन्त स्पष्ट रूप में चित्रित किये गये हैं। यह संविधान सच्ची राष्ट्रीयता की भावनाओं को सुदृढ़ करने वाला संविधान है, इसलिये इसके अध्ययन का विशेष महत्व है।

(6) धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना—भारतीय संविधान के अध्ययन का महत्व इसलिये बढ़ जाता है कि इसके द्वारा भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना

हुई है। जहाँ कुछ देशों में धार्मिक कट्टरता का बोलबाला है भारत में विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक साथ रहते हैं और एक ही प्रकार के नियमों का पालन करते हैं। किसी भी धर्म के अनुयायियों को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं की गई हैं।

(7) विभिन्नता में एकता—भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न जातियों और विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले व्यक्ति एक साथ रहते हैं। यह भारतीय संविधान की ही गरिमा है कि यहाँ भाषा, प्रान्त और सम्प्रदाय के भेदों के पश्चात भी सभी देशवासी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं और संविधान ने विभिन्न प्रांतों, विभिन्न भाषा-भाषियों को एक साथ बाँध दिया है। भारतीय संविधान के विषय में श्री एम० वी० पाइली ने अपनी पुस्तक, "भारतीय संविधान" की भूमिका में लिखा है :—

"अन्य किसी भी संविधान निर्मित संस्था के सामने ऐसा कठिन कार्य नहीं था जैसा भारत की संविधान सभा को करना पड़ा। न केवल 36 करोड़ जनसंख्या वाले देश पर राज्य करने के लिये शासन-यंत्र का निर्माण उन्हें करना था बल्कि इस भारी जनसंख्या के भाषा, धर्म, मूलजाति व सभ्यता के आधार पर बहुत बँटे हुए होने की समस्या भी उनके सामने थी। उस समय अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ भी देश के सामने थीं।

इन सभी राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कृत्रिम अवरोधों के होते हुए भी सारे देश में एक सांस्कृतिक एकता वर्तमान थी, किन्तु वह भी विध्वंसात्मक प्रभावों के कारण शीघ्रता के साथ दृष्टि से ओझल हो रही थी। इन सब समस्याओं के साथ ही देश के बँटवारे की समस्या उठ खड़ी हुई। सन् 1947 के भारत से अधिक समस्याओं वाली राजनैतिक संस्था ढूँढ़े नहीं मिल सकती। इस अव्यवस्था से एक सम्पूर्ण एकीकृत राष्ट्र के निर्माण का कार्य संविधान सभा को मिला।

इस समस्या के हल का प्रयत्न भारत का संविधान नवीन राष्ट्र के मौलिक विधान के निर्माण के द्वारा करता है। यह केवल शासन-यंत्र की स्थापना ही नहीं करता वरन् भारतीय जनता के आदर्शों व लक्ष्यों को भी प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संविधान एक अनुपम संविधान है और राजनीति शास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिये इस संविधान का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

अध्याय 2

भारतीय संविधान की विशेषताएँ और उसका स्वरूप
(CHARACTERISTICS AND THE NATURE OF THE INDIAN CONSTITUTION)

भारतीय संविधान की विशेषताएँ
(Characteristics of the Indian Constitution)

प्रश्न—भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा संक्षेप में कीजिये।

(Discuss briefly the salient features of the Indian Constitution)

किसी भी स्वतन्त्र देश की राजनीतिक गतिविधियों का परिचय उसके संविधान से ही मिलता है। संविधान, देश के राजनीतिक राजप्रासाद का प्रकाश-स्तम्भ होता है। संसार का प्रत्येक स्वतन्त्र देश अपने संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होता है। संविधान ही वह कोष है जिसमें देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों की व्याख्या होती है।

भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा के तुरन्त बाद संविधान सभा की बैठक होने लगी। 26 नवम्बर, सन् 1949 ई० को संविधान सभा ने अपना कार्य समाप्त किया और देश को वह गौरवशाली संविधान समर्पित किया जो विभिन्न देशों के संविधानों के मध्य अपना अलग स्थान रखता है। भारतीय संविधान विश्व के विभिन्न संविधानों का सम्मिश्रण है। इस संविधान में संसार के किसी भी देश के संविधान की अपेक्षा अधिक विशेषताएँ हैं। *यहाँ हम इन विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा कर रहे हैं—*

(1) लिखित एवं विस्तृत संविधान—भारत का संविधान एक लिखित संविधान है। इसका निर्माण संविधान सभा ने एक निश्चित अवधि में किया। इस संविधान का निर्माण बहुत कम समय में हुआ परन्तु यह संसार का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। इस संविधान में 395 अनुच्छेद हैं और यह 22 भागों में विभक्त है। इसमें 8 अनुसूचियाँ भी हैं। संविधान की विशालता का मूल कारण यह है कि इस

हुई है। जहाँ कुछ देशों में धार्मिक कट्टरता का बोलवाला है भारत में विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक साथ रहते हैं और एक ही प्रकार के नियमों का पालन करते हैं। किसी भी धर्म के अनुयायियों को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं की गई हैं।

(7) विभिन्नता में एकता—भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न जातियों और विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले व्यक्ति एक साथ रहते हैं। यह भारतीय संविधान की ही गरिमा है कि यहाँ भाषा, प्रान्त और सम्प्रदाय के भेदों के पश्चात भी सभी देशवासी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं और संविधान ने विभिन्न प्रांतों, विभिन्न भाषा-भाषियों को एक साथ बाँध दिया है। भारतीय संविधान के विषय में श्री एम० वी० पाइली ने अपनी पुस्तक, "भारतीय संविधान" की भूमिका में लिखा है :—

"अन्य किसी भी संविधान निर्मित संस्था के सामने ऐसा कठिन कार्य नहीं था जैसा भारत की संविधान सभा को करना पड़ा। न केवल 36 करोड़ जनसंख्या वाले देश पर राज्य करने के लिये शासन-यंत्र का निर्माण उन्हें करना था बल्कि इस भारी जनसंख्या के भाषा, धर्म, मूलजाति व सभ्यता के आधार पर बहुत बँटे हुए होने की समस्या भी उनके सामने थी। उस समय अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ भी देश के सामने थीं।

इन सभी राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कृत्रिम अवरोधों के होते हुए भी सारे देश में एक सांस्कृतिक एकता वर्तमान थी, किन्तु वह भी विध्वंसात्मक प्रभावों के कारण शीघ्रता के साथ दृष्टि से ओझल हो रही थी। इन सब समस्याओं के साथ ही देश के बँटवारे की समस्या उठ खड़ी हुई। सन् 1947 के भारत से अधिक समस्याओं वाली राजनैतिक संस्था ढूँढ़े नहीं मिल सकती। इस अव्यवस्था से एक सम्पूर्ण एकीकृत राष्ट्र के निर्माण का कार्य संविधान सभा को मिला।

इस समस्या के हल का प्रयत्न भारत का संविधान नवीन राष्ट्र के मौलिक विधान के निर्माण के द्वारा करता है। यह केवल शासन-यंत्र की स्थापना ही नहीं करता वरन् भारतीय जनता के आदर्शों व लक्ष्यों को भी प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संविधान एक अनुपम संविधान है और राजनीति शास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिये इस संविधान का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

अध्याय 2

भारतीय संविधान की विशेषताएँ और उसका स्वरूप
(CHARACTERISTICS AND THE NATURE OF THE INDIAN CONSTITUTION)

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

(Characteristics of the Indian Constitution)

प्रश्न—भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा संक्षेप में कीजिये।

(Discuss briefly the salient features of the Indian Constitution)

किसी भी स्वतन्त्र देश की राजनीतिक गतिविधियों का परिचय उसके संविधान से ही मिलता है। संविधान, देश के राजनीतिक राजप्रासाद का प्रकाश-स्तम्भ होता है। संसार का प्रत्येक स्वतन्त्र देश अपने संविधान का पालन करने के लिए बाध्य होता है। संविधान ही वह कोश है जिसमें देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों की व्याख्या होती है।

भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा के तुरन्त बाद संविधान सभा की बैठकें होने लगीं। 26 नवम्बर, सन् 1949 ई० को संविधान सभा ने अपना कार्य समाप्त किया और देश को यह गौरवशाली संविधान समर्पित किया जो विभिन्न देशों के संविधानों के मध्य अपना अलग स्थान रखता है। भारतीय संविधान विश्व के विभिन्न संविधानों *का सम्मिश्रण है। इस संविधान में संसार के किसी भी देश के संविधान की अपेक्षा* अधिक विशेषताएँ हैं। यहाँ हम इन विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा कर रहे हैं—

(1) लिखित एवं विस्तृत संविधान—भारत का संविधान एक लिखित संविधान है। इसका निर्माण संविधान सभा ने एक निश्चित अवधि में किया। इस *संविधान का निर्माण बहुत कम समय में हुआ परन्तु यह संसार का सबसे बड़ा लिखित* संविधान है। इस संविधान में 395 अनुच्छेद हैं और यह 22 भागों में विभक्त है। इसमें 8 अनुसूचियाँ भी हैं। संविधान की विशालता का मूल कारण यह है कि इस

संविधान के निर्माताओं ने शासन के समस्त प्रमुख अंगों का वर्णन करने के बाद शासन की अनेक बारीकियों का उल्लेख भी किया है। भारतीय संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों, संघ तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों आदि का विवेचन अत्यन्त विस्तृत रूप से हुआ है।

(2) लोकतन्त्रात्मक और गणतन्त्रात्मक संविधान—भारतीय संविधान पूर्णतः लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित है। संविधान का उद्देश्य समस्त भारत में प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्र की स्थापना करना है। संविधान की प्रस्तावना में उसके उद्देश्यों का निर्देश करते हुए कहा गया, "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली, बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई० को इस संविधान को अधिनियमित एवं अङ्गीकृत करते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान को भारत की जनता ने स्वयं ही बनाया है। संविधान के द्वारा राज्य की सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथों में रखी गई है। राज्य का प्रधान राष्ट्रपति होगा, जो अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होगा। लोकतन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त पूर्ण रूप से संविधान में अपनाए गए हैं। साथ ही, उसे गणतन्त्रात्मक रूप भी प्रदान किया गया है।

(3) कठोर और परिवर्तनशील संविधान—भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषता यह है कि यह कठोर तथा परिवर्तनशील (Rigid and Flexible) दोनों ही हैं। अंशतः यह कठोर है अंशतः परिवर्तनशील। किसी भी संविधान की कठोरता, प्रधानतः संविधान को संशोधन प्रक्रिया और उसके उपबन्धों पर निर्भर करती है। डा० जेनिंग्स के शब्दों में, "हम भारतीय संविधान को इसलिए कठोर कहते हैं कि उसकी संशोधन-विधि कुछ जटिल है, दूसरे, वह इतना व्यापक है कि संवैधानिक वैधता की बार-बार परीक्षा करनी होगी।" परन्तु यदि तनिक सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो संविधान की संशोधन-विधि इतनी जटिल नहीं है जितनी कि कही जाती है। अमेरिका और आस्ट्रेलिया में संविधान की संशोधन-विधि इतनी जटिल है कि उसमें संशोधन करना एक दुष्कर कार्य है। ब्रिटेन में, जिसका कि कोई लिखित संविधान है ही नहीं, वैधानिक विधि और सामान्य विधि में कोई अन्तर नहीं है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ब्रिटेन में वैधानिक संशोधन की प्रक्रिया

अत्यन्त सरल है। भारत में अमेरिका और ब्रिटेन के बीच का रास्ता अपनाया गया है। न तो यहाँ के संविधान की संशोधन प्रक्रिया अत्यन्त सरल ही कही जा सकती है और न अत्यन्त जटिल। यहाँ का संविधान निश्चित होते हुए भी परिवर्तनशील है। संविधान के निर्माताओं ने जहाँ एक ओर संविधान को स्थायी और ठोस बनाने का प्रयास किया है वहीं उनका उद्देश्य उसे जीवित बनाए रखना भी है। यदि संविधान को एकदम जटिल बना दिया जाता तो देश का विकास रुक जाता। इस तथ्य का पंडित नेहरू ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, "यदि तुम किसी वस्तु को दृढ़ और स्थायी बना दो तो तुम राष्ट्र के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर दोगे, जीवन शक्तिशाली और धर्म-भीरु व्यक्तियों की उन्नति रोक दोगे।"

"If you make anything rigid and permanent, you stop the nations growth, the growth of a living, vital, and organic people."

—J. L. Nehru.

(4) संघात्मक एवं एकात्मक संविधान—भारतीय संविधान की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यह संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। इस संविधान का निर्माण इस प्रकार से किया गया है कि साधारण परिस्थितियों में तो केन्द्रीय सरकार संघात्मक रूप से कार्य करेगी परन्तु असाधारण परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार एकात्मक रूप धारण कर सकती है। संविधान में प्रायः सभी संघात्मक तत्वों को अपनाने का प्रयास किया गया है। संघात्मक संविधान की विशेषताएँ संविधान की सर्वोच्च सत्ता, सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना, केन्द्रीय तथा राज्यों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन इत्यादि सभी विशेषताएँ भारतीय संविधान में दृष्टिगत होती हैं। प्रो० जी० एन० जोशी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि भारतीय संविधान में वे सब विशेषताएँ विद्यमान हैं जो एक संघीय संविधान में होनी चाहिए। प्रो० आलेक्जेन्ड्रोविच ने इस संविधान के विषय में लिखा है "भारतीय संविधान की सर्वप्रमुख समस्या संघात्मकता की है।"

"One of the most outstanding problems of the Indian Constitution is that of the federalism."

परन्तु संघीय शासन के समस्त तत्व मिलने पर भी भारतीय संविधान को पूर्णतया संघात्मक संविधान नहीं कहा जा सकता। इस संविधान में एकात्मक शासन के अनेक तत्व विद्यमान हैं। सारे देश के लिए एक ही संविधान और एक ही नागरिकता की व्यवस्था की गई है। सारे देश की प्रशासन व्यवस्था भी समान है। केन्द्र अत्यन्त शक्तिशाली है और राष्ट्रपति को आपातकालीन विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं जिनके अनुसार वह संकटकालीन स्थिति में देश की समस्त बागडोर अपने हाथ

में ले सकता है। इन एकात्मक प्रवृत्तियों के कारण ही कुछ विद्वान इसको एकात्मक संविधान की संज्ञा भी देते हैं। कुछ इसको अर्द्ध सङ्घीय संविधान बतलाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक और सङ्घात्मक संविधानों का सम्मिश्रण है। इस सम्बन्ध में दुर्गादास बसु ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "भारत का संविधान न तो पूर्ण रूप से सङ्घात्मक है, न एकात्मक, बल्कि यह दोनों का सम्मिश्रण है। यह एक नवीन और अनूठे प्रकार का सङ्घ है।"

"The Constitution of India is neither purely federal, nor unitary but is a combination of both. It is a union or composite of a novel type." —Durga Dass Basu.

(5) शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना—भारतीय संविधान की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा केन्द्र को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया गया है। केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए मुख्यतः तीन उपाय काम में लाए गए हैं। प्रथम तो आपात्-कालीन स्थिति में संघ सरकार को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है, दूसरे, केन्द्र और राज्यों की शक्तियों का विभाजन होने पर भी विशेष परिस्थिति में केन्द्र को राज्य-सूची के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है, और तीसरे समवर्ती सूची के अन्तर्गत आये हुए विषयों में संघ सरकार द्वारा बनाये गए नियमों को प्राथमिकता और प्रधानता दी गई है। इन तीनों उपायों के अतिरिक्त न्यायपालिका के संगठन, राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति, अखिल भारतीय सेवाओं के संगठन आदि के सम्बन्ध में भी केन्द्र को विस्तृत अधिकार प्रदान करके उसको अत्यधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

(6) संसदीय शासन-पद्धति—भारतीय संविधान के द्वारा देश में संसदीय पद्धति को अपनाया गया है। संसदीय पद्धति में राज्य के प्रधान को नाम-मात्र का प्रधान रखा जाता है और वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्रि-मण्डल के हाथ में होती है। इस प्रकार की व्यवस्था ब्रिटेन में अपनायी गई है। भारत में ब्रिटेन की संसदीय पद्धति का अनुकरण किया गया है। यद्यपि यह ठीक है कि भारत के राष्ट्रपति को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गए हैं और आपातकाल में उसके अधिकार बहुत अधिक बढ़ जाते हैं परन्तु व्यावहारिक रूप में भारत के राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटेन के सम्राट या साम्राज्ञी जैसी है। वह नाममात्र का ही अध्यक्ष है। शासन के समस्त सूत्र मन्त्रि-परिषद् के हाथ में केन्द्रीभूत रक्खे गए हैं।

(7) एक संविधान, एक नागरिकता और एक राष्ट्र-भाषा द्वारा सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण—भारत को एक अत्यन्त सुदृढ़ राष्ट्र बनाने के लिए इन महत्व-पूर्ण बातों का उल्लेख संविधान में कर दिया गया है। जहाँ अन्य संघ राज्यों में दोहरी

नागरिकता की व्यवस्था रहती है, भारतीय संघ में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। यह कार्य इसलिए किया गया है कि सम्पूर्ण भारतीय अपने को भारत का नागरिक समझे, किसी और देश का नहीं। देश के समस्त व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हिन्दी भाषा को राजभाषा के पद पर आसीन करने का प्रयास किया गया है।

(8) धर्म-निरपेक्ष राज्य (Secular State) की स्थापना और साम्प्रदायिकता का अन्त—भारत एक धर्म-प्रधान देश है। यहाँ के जन-जीवन में धर्म की स्वास है। परन्तु भारतीय संविधान के द्वारा धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। धर्म-निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विहीनता नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि राज्य किसी विशिष्ट धर्म को प्रधानता अथवा सहायता नहीं देगा। राज्य के समस्त नागरिक, चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी क्यों न हों, बराबर होंगे। धर्म के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था को छोटा या बड़ा नहीं समझा जायगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संविधान के द्वारा साम्प्रदायिकता का अन्त करने का प्रयास किया गया है। हरिजनों और पिछड़ी आदिम जातियों को अन्य नागरिकों की अपेक्षा कुछ सुविधाएँ अवश्य प्रदान की गई हैं परन्तु यह कार्य इसलिए किया गया है कि ये पिछड़े वर्ग के लोग धीरे-धीरे समाज के अन्य वर्गों के लोगों के बराबर आ जायें। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान में राजनीति को धर्म से अलग करके समस्त संसार के सम्मुख एक आदर्श रखने का प्रयास किया गया है। संविधान की इस विशेषता को वेंकटरमन महोदय ने बड़े स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है, राज्य न तो धार्मिक न अधार्मिक है, न धर्म-विरोधी है बल्कि यह धार्मिक रूढ़ियों और कार्यों से नितान्त उन्मुक्त है और इस प्रकार धार्मिक मामलों में बिल्कुल निरपेक्ष है।'

"The state is neither religious nor irreligious nor anti-religious, but is wholly deatched from religious dogmas and activities and thus neutral in relgious matters."



—Venkatraman.

(9) नागरिकों के मूलाधिकारों की व्यवस्था—भारतीय संविधान की एक बहुत बड़ी विशेषता उसमें दिए गए नागरिकों के मूलाधिकार हैं। प्रत्येक नागरिक बिना किसी बाधा के उन्नति कर सके, इसलिये संविधान में उसके लिए मूलाधिकारों की व्यवस्था की गई है। इन अधिकारों की सुरक्षा के हेतु स्पष्ट उपबन्ध किये गये हैं। इन मूलाधिकारों को छीनने अथवा उनके विरुद्ध कानून बनाने का अधिकार किसी भी सरकार को नहीं है। नागरिकों के मूलाधिकार के रक्षक न्यायालय हैं। यदि कोई

सरकार ऐसा कार्य करती है जिससे किसी नागरिक के मूलाधिकार का हनन हो रहा हो तो वह न्यायालय की शरण लेकर अपने अधिकार की रक्षा कर सकता है।

नागरिकों के मूलाधिकारों की जैसी विशद विवेचना भारतीय संविधान में हुई है वैसी संसार के किसी भी संविधान में नहीं हुई। लोकतन्त्र में सच्ची आस्था रखने वाले भारत जैसे देश के संविधान में इस प्रकार के अधिकारों का विवेचन अत्यन्त आवश्यक था।

(10) राज्य के नीति-निर्देशक तत्व—भारतीय संविधान की एक अन्य विशेषता राज्य के नीति-निर्देशक तत्व हैं। आयरलैण्ड के संविधान को छोड़कर संसार के किसी भी देश के संविधान में इन तत्वों का विवेचन इतनी विशदता से नहीं किया गया है। नीति-निर्देशक तत्वों में उन उद्देश्यों का विवेचन है जो हमारे आदर्श हैं। राज्य के यह नीति-निर्देशक तत्व एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिसमें सभी व्यक्ति समान हों, सभी को समान अवसर मिले, और सभी को आर्थिक, राजनीतिक, एवं सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। राज्य के ये नीति-निर्देशक तत्व नागरिकों के मौलिक अधिकारों से भिन्न हैं। मौलिक अधिकारों का हनन होने पर किसी न्यायालय में अपील की जा सकती है, परन्तु राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों को न मानने के कारण किसी सरकार पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, उनका पालन सरकार की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। नैतिकता की दृष्टि से नीति-निर्देशक तत्वों का पालन आवश्यक है परन्तु उनके लिए कानूनी बन्धन नहीं। इन तत्वों के विषय में एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, राज्य के नीति-निर्देशक तत्व एक प्रकार से राजनीतिक परिपत्र हैं और नैतिक सिद्धान्तों का रक्त संविद, जो कि राज्यपालों का समुचित मार्ग प्रदर्शन करते हैं।

(11) वयस्क मताधिकार का प्रावधान—प्रत्येक भारतीय नागरिक को चुनाव में मत प्रदान करने का अधिकार है। धर्म, जाति, लिंग, धन अथवा वर्ण के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरता गया है। इससे पूर्व देश में मताधिकार के सम्बन्ध में इतनी अधिक स्वतन्त्रता कभी नहीं प्रदान की गई थी। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद किसी देश के नागरिकों को इतने व्यापक मताधिकार नहीं प्राप्त हुए। एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है "वास्तव में भारत ने संविधान के विषय में एक बार में जो प्राप्त किया है उसे पाने में इंगलैण्ड को एक शताब्दी लगी है।"

In fact, India has achieved in one stretch what England achieved in about a centrry."

(12) अस्पृश्यता का अन्त—भारतीय संविधाय के 17वें अनुच्छेद में अस्पृश्यता के अन्त का प्रावधान है। संविधान में बड़े स्पष्ट रूप में छुआछूत के भेद-भाव

के अन्त की बात कही गई है। इस अनुच्छेद में लिखा है 'अस्पृश्यता' का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से उपजी किसी नियोग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

(13) स्त्रियों को समान अधिकार—भारतीय संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान किए गए हैं। उन्हें पुरुषों की तरह उन्नति करने, उच्च पदों को प्राप्त करने, चुनाव में भाग लेने का अधिकार है। लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं बरता गया है।

(14) स्वतन्त्र और सशक्त न्यायपालिका की स्थापना—नागरिकों के अधिकारों की रक्षा एवं संविधान के संरक्षण के हेतु प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र में एक स्वतन्त्र, सशक्त और निष्पक्ष न्यायालय की आवश्यकता होती है। भारतीय संविधान के अनुसार इस देश में स्वतन्त्र, सशक्त और निष्पक्ष न्यायालय की स्थापना की गई है। संविधान में इस बात का पूर्ण प्रबन्ध किया गया है, कि न्यायपालिका के कार्य में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न हो और वह निष्पक्ष रूप से अपने कर्त्तव्यों का पालन करे।

(15) निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था—भारत जैसे प्रगतिशील राष्ट्र के नागरिकों के चतुर्मुखी विकास के लिए शिक्षा एक सबल साधन है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने शिक्षा के महत्व को भली-भाँति समझा और इसी कारण यह उपबन्ध रखा कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर देश के 14 वर्ष की अवस्था के समस्त बालक-बालिकाओं को राज्य की ओर से निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जायगी। आज समस्त देश में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो गई है।

(16) गाँव में स्वराज्य की स्थापना—भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 75 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। अतएव देश के लिए ग्रामों का उत्थान अत्यन्त आवश्यक है। संविधान में ग्राम-पंचायतों के संगठन तथा विकास का उपबन्ध इसी उद्देश्य से रखा गया है। भारत संघ के प्रत्येक राज्य में ग्राम राज्य की स्थापना करने की बात है जो संविधान में कही गई है।

(17) संशोधन की सरलता—इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि भारत का संविधान एक परिवर्तनशील और नमनशील संविधान है। संसद संविधान में परिवर्तन कर सकती है और यह परिवर्तन सम्बन्धी विधेयक संसद के किसी भी भवन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि विधेयक कुल सदस्यों के बहुमत से और उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित हो जाता है तो उसको राष्ट्रपति के

पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है इस प्रकार संविधान में संशोधन की प्रणाली अत्यन्त सरल है।

संशोधन की सरलता से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भारतीय संविधान संसद के हाथ की कठपुतली है। कुछ विशिष्ट प्रकार के विषय, जैसे राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि, संघ तथा राज्य की कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका सभा की शक्तियाँ एवं सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय सम्बन्धी उपबन्ध इस प्रकार के हैं कि उनमें संशोधन के हेतु संसद के दोनों सदनों के साथ ही कम से कम आधे राज्यों का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान मे परिवर्तन की विधि अमेरिका के संविधान की भाँति नितान्त कठिन नहीं है परन्तु साथ ही इङ्गलैण्ड की भाँति सरल भी नहीं है।

(18) आपातकालीन उपबन्ध—आपातकालीन उपबन्ध (Emergency Powers) भी भारतीय संविधान की उल्लेखनीय विशेषता है। इन उपबन्धों के द्वारा हमारी सम्पूर्ण संवैधानिक व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया गया है। संकट के अवसर पर राष्ट्रपति शासन का समस्त विधायिकीय और कार्यपालिकीय शक्तियों को अपने हाथ में ले सकता है और संघीय शासन इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है जैसे वह आरम्भ में ही एकात्मक रहा हो।

(19) राष्ट्रमण्डल की सदस्यता—भारतीय संविधान की एक अन्य विशेपता यह है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य होने पर भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य है। राष्ट्रमण्डल की प्रधान ब्रिटेन की साम्राज्ञी है। यही कारण है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को बहुत से व्यक्तियों ने दासता का लक्षण कहा है। परन्तु सत्य तो यह है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता हमारी मित्रता का प्रतीक है और इसके द्वारा हमारी प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार की आँच नही आती। इस सम्बन्ध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था, "हमने बहुत दिनों पहले पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की थी, वह हमने प्राप्त कर लिया है। क्या कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने से अपनी स्वाधीनता खो बैठता है?"

(20) सामाजिक और आर्थिक जनतन्त्र का पोषक—भारतीय संविधान की एक बड़ी विशेपता यह है कि यह सामाजिक और आर्थिक जनतन्त्र का पोषक है। वास्तव में राजनीतिक प्रजातन्त्र की सफलता सामाजिक और आर्थिक जनतन्त्र की स्थापना पर ही अवलम्बित रहती है। भारतीय संविधान में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है और सच्चे प्रजातन्त्र की बात कही गई है। भारत किसी आर्थिक गठबन्धन में नही फँसा है और स्वतन्त्र अर्थनीति का पक्षपाती है। संविधान द्वारा लोक

कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है जिसमें सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त होगा। संविधान में एकल नागरिकता की व्यवस्था है और राष्ट्र-भाषा तथा राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं के विकास हेतु समुचित उपबन्ध हैं। देश के संविधान द्वारा एक स्वतन्त्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है और नौकरियों में भ्रष्टाचार के निवारण एवं प्रशासन के संचालन के हेतु योग्य व्यक्तियों के चुनाव के लिए संविधान में लोक-सेवा आयोग का उपबन्ध है।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार का यह सबसे विशाल लिखित संविधान, अपने ढंग का अनूठा है। इस संविधान में सभी देशों की अच्छी बातों को अपनाया गया है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने ब्रिटेन की संसदीय पद्धति के मूल तत्वों, अमरिका की अध्यक्षात्मक पद्धति के उपयोगी तत्वों, आयरिश संविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों और कनाडा के संविधान से भारतीय यूनियन की भावना लेकर संविधान को पूर्ण रूप से उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में श्री एम० पी० शर्मा ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "हमारे संविधान के निर्माताओं का यह उद्देश्य एक मौलिक या विशिष्ट संविधान का निर्माण नहीं था। वह एक ऐसा संविधान चाहते थे जिसके आधार पर भलीभाँति कार्य किया जा सके। फलस्वरूप, उन्होंने अन्य देशों के संविधानों में से ऐसे अच्छे प्रावधानों जो, उन देशों में उपयोगी साबित हुए थे, और भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थे, को स्वतन्त्रतापूर्वक लिया है।"

भारतीय संविधान राष्ट्र-निर्माण की कुन्जी है और इस कुन्जी के द्वारा ही हम अपनी गुत्थियों को सुलझा सकते हैं और प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

संविधान का संघात्मक और एकात्मक रूप

(The Federal and Unitary Form of Constitution)

प्रश्न—"भारत का संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी"—विवेचना कीजिए।

(The Indian Consutution is the Federal as well as—Unitary. Discuss.)

भारत के संविधान की संघीय विशेषताओं का उल्लेख कीजिए और बतलाइए कि संघ सरकार की स्थापना क्यों उपयुक्त है?

(Describe the Federal Characteristics of the Indian Constitution and show why is the Federal form of Government fit for the Indian ?)

भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ (The Federal Characteristics of the Indian Constitution)

संविधान के अनुसार भारत एक संघात्मक राज्य है। संघ राज्य किसे कहते हैं इसको स्पष्ट करते हुए प्रो० स्ट्रांग ने कहा है, "संघ राज्य में कई रियासतें कुछ समान उद्देश्य के लिए एक हो जाती हैं। केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ रियासतों की शक्तियों के द्वारा सीमित हो जाती हैं। इसलिए यह एक ऐसी शक्ति होती है जो कि इस अधिकार विभाजन को निश्चित करती है। विधान की स्वयं एक शक्ति होती है। इस विधान का स्वरूप सन्धि की तरह होता है।" प्रत्येक संघ सरकार का एक स्पष्ट और लिखित संविधान होता है। अच्छे शासन की दृष्टि से यह संविधान कठोर होना चाहिए जिससे कि संविधान की धाराओं को बदला न जा सके। संघ राज्य का संविधान सर्वशक्तिमान होता है। उसमें राज्य और केन्द्र के अधिकारों का स्पष्ट विभाजन होता है।

संघात्मक संविधान में एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था का प्रावधान होता है जिससे कि यदि राज्य और केन्द्र के बीच में कोई झगड़ा उत्पन्न हो जाय तो न्यायालय द्वारा उसका फैसला कर दिया जाय। संघात्मक संविधान का एक अन्य प्रमुख तत्व यह है कि संघ के निवासी अपने को विराट संघ का एक अंग मानते हैं और एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार करते हैं। उनकी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ समान होती हैं।

संघ राज्य की सरकार के अनेक ढंग हैं। पहला ढंग तो यह है कि कुछ स्वतंत्र राज्य अपने समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी अलग-अलग शक्तियों को छोड़कर एक प्रभावशाली राज्य का निर्माण करते हैं और एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसा ही हुआ है। दूसरा तरीका यह है कि एकात्मक सरकार कुछ विशेष कारणों से संघात्मक सरकार में परिवर्तित हो जाती है। भारत में ऐसा ही हुआ है।

यहाँ हम भारतीय संविधान के संघात्मक तत्वों की विवेचना संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) लिखित एवं कुछ सीमा तक कठोर संविधान—भारत का संविधान संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की भाँति एक लिखित संविधान है। परन्तु जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान अत्यन्त कठोर है और उसमें परिवर्तन करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है वहाँ भारतीय संविधान लचीला और नमनशील है। संविधान में संसद द्वारा परिवर्तन भी किया जा सकता है। परन्तु कुछ प्रावधान ऐसे भी हैं जिनमें परिवर्तन के लिए अधिकांश राज्यों की स्वीकृति आवश्यक है। इस प्रकार जहाँ संविधान में लचीलापन है वहीं परिवर्तन की कुछ कठोर प्रणाली के दर्शन भी होते हैं।

(2) केन्द्र एवं राज्यों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन—भारत में एक

शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गई है और संविधान में केन्द्र एवं राज्यों के अधिकारों का स्पष्ट विभाजन कर दिया गया है। अन्य संघीय संविधानों से भारतीय संविधान का अन्तर यह है कि जहाँ अन्य संघीय राज्यों में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है वहाँ भारतीय संविधान में एकल नागरिकता को ही मान्यता प्रदान की गई है। जहाँ तक राज्यों के अधिकारों का प्रश्न है वह संविधान द्वारा निश्चित कर दिए गए हैं। राज्यों पर केन्द्र के नियन्त्रण के हेतु अनेक अंकुश रक्खे गए हैं और आपातकालीन स्थिति में तो राज्य सरकार की समस्त शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार अथवा राष्ट्रपति में निहित हो जाती हैं।

(3) *स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका*—भारत में संघ और राज्यों के बीच होने वाले गत्यवरोध को दूर करने के लिए एक स्वतन्त्र निष्पक्ष एवं अधिकार सम्पन्न उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है। हमारे न्यायालय ही हमारे संविधान के रक्षक हैं। यदि किसी राज्य और केन्द्र सरकार अथवा दो राज्यों की सरकारों के बीच में कोई विरोध उत्पन्न हो जाता है तो उसका फैसला न्यायालय ही करता है। भारत में न्यायालय संविधान के रक्षक हैं। यदि भारतीय संसद या राज्यों की व्यवस्थापिकाएँ किसी ऐसे कानून का निर्माण करती हैं जो संविधान विरोधी हैं तो न्यायपालिका को उसे असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर देने का अधिकार है। भारत में संविधान ही सर्वोपरि है और इस संविधान की रक्षा का भार न्यायपालिका को ही सौंपा गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान में संघीय संविधान के सभी तत्व विद्यमान हैं। प्रो० जी० एन० जोशी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, 'भारतीय संघ में संघ के सभी सामान्य तत्व विद्यमान हैं—एक लिखित संविधान, दोहरी शासन-व्यवस्था, राष्ट्रीय सरकारों एवं राज्यों की सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन और एक सर्वोच्च न्यायालय।

"The Indian Union exhibits all the normal characteristics of a federation, a written consitution, a dual polity and distribution of powers between the National Government and State Governments, and a Supreme Court" —Prof G N Joshi

प्रो० अलेक्जेंड्रोविच ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं—' भारतीय संविधान की सर्वप्रमुख समस्या उसकी संघात्मकता की है।

"One of the most outstanding problems of the Indian Constitution is that of the federalism"

भारतीय संविधान में एकात्मक शासन की विशेषताएँ (Unitary Characteristics in Indian Constitution)

ऊपर हमने इस बात का विवेचन किया है कि भारतीय संविधान में संघात्मक संविधान के अनेक तत्व विद्यमान हैं और इस आधार पर विद्वानों ने इसको संघात्मक संविधान माना है। परन्तु इस संविधान में एकात्मक प्रशासन के तत्व भी परिलक्षित होते हैं। एकात्मक संविधान में मुख्यतः निम्नलिखित बातें होती हैं :—

(1) समस्त देश के लिए एक ही संविधान।

(2) इकहरी नागरिकता।

(3) समस्त देश की एक ही शासन-व्यवस्था।

(4) शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार।

भारतीय संविधान में ये चारों तत्व परिलक्षित होते हैं। उनकी चर्चा हम यहाँ संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) समस्त देश के लिए एक ही संविधान—समस्त देश के लिए एक ही संविधान की व्यवस्था की गई है। विभिन्न राज्यों को संविधान का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है और प्रत्येक राज्य के लिए अलग संविधान का निर्माण नहीं किया गया है।

(2) इकहरी नागरिकता—अन्य संघीय संविधानों की भाँति भारतीय संविधान में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था नहीं है। यह बात संविधान की एकात्मकता के पक्ष में की जाती है। इस देश के 21 वर्ष की अवस्था को प्राप्त हुए सभी व्यक्ति (कुछ अपवादों को छोड़कर) भारत के नागरिक हैं, किसी राज्य विशेष के नहीं। सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही निर्वाचन-आयोग की व्यवस्था की गई है और नागरिकों को केन्द्र और राज्य में अपने अलग-अलग प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। परन्तु उन्हें राज्य का नागरिक नहीं कहा जाता है। अमेरिका की भाँति दोहरी नागरिकता का प्रावधान भारतीय संविधान में नहीं है और इसलिए भी इसको एकात्मक संविधान कहा जा सकता है।

(3) समस्त देश की एक ही शासन-व्यवस्था—समस्त देश के प्रशासन के लिए एक सी व्यवस्था की गई है। यह ठीक है कि केन्द्र और प्रान्तों का शासन चलाने के लिए अलग-अलग व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है, कुछ कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं और कुछ प्रान्तीय, परन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि विभिन्न राज्यों की प्रशासन व्यवस्था में कोई अन्तर होता है। सम्पूर्ण भारत के लिए विधि और दण्ड-विधान के विषय में एकरूपता रखी गई है। उच्चतम न्यायालय के समस्त आदेश और निर्णय सभी को मान्य होते हैं। सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही महालेखा परीक्षक नियुक्त किया गया है जो संघ और राज्यों की आर्थिक व्यवस्था की देख-रेख करता है। संक्षेप में हम यह कहते हैं कि समस्त देश के प्रशासन का ढाँचा एक-सा है।

(4) शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार—एकात्मक संविधान की सबसे बड़ी विशेषता एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की व्यवस्था होती है। भारत में केन्द्रीय सरकार को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया गया है। संविधान के द्वारा केन्द्रीय सरकार को इतनी विस्तृत शक्तियाँ दे दी गई हैं जो साधारणतः संघात्मक संविधान में नहीं पाई जाती। राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति का पूरा भार राष्ट्रपति ही वहन करता है। अमेरिका आदि देशों में राज्यपालों की नियुक्ति वहाँ के राष्ट्रपति के अधिकार में नहीं होती। राज्यपालों का निर्वाचन जनता द्वारा होता है। परन्तु भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। यही बात उसको एकात्मक संविधान के अधिक निकट ला देती है।

यद्यपि यह ठीक है कि भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन बड़े स्पष्ट रूप में कर दिया गया है, परन्तु इस विभाजन को तनिक बारीकी से देखने पर प्रतीत होता है कि केन्द्रीय सरकार को अत्यधिक अधिकार प्राप्त हैं। शासन के समस्त विषयों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है। संघ सूची में 97 विषय, राज्य सूची में 66 विषय और समवर्ती सूची में 47 विषय हैं। संघीय सूची के विषय अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही केन्द्रीय सरकार को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह राज्य सूची के किसी विषय में कानून बनाकर उसे अपने अधिकार में ले सकती है।

संकटकालीन स्थिति में तो केन्द्रीय सरकार के अधिकार इतने विस्तृत हो जाते हैं कि संविधान का संघात्मक रूप ही समाप्त होता हुआ-सा प्रतीत होता है। उस समय समस्त देश में पूरी तरह एकात्मक शासन स्थापित किया जा सकता है। संसार के किसी भी संघात्मक संविधान में इस प्रकार का प्रावधान नहीं है। यह बात एकात्मक संविधान में ही पाई जाती है।

संविधान की इन समस्त विशेषताओं को देखते हुए कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो संविधान में संघात्मकता की अपेक्षा एकात्मकता के अधिक दर्शन करते हैं। प्रो० के० सी० वेयर (Prof K. C. Wheare) ने यह मत व्यक्त किया है कि "भारत मुख्यतः एक एकात्मक राज्य है जिसमें संघीय विशेषताएँ नाम मात्र की हैं।" उसके विचार में भारत का संविधान संघीय कम और एकात्मक अधिक है।

निष्कर्ष—ऊपर दिए गए विवेचन के अनुसार यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। न तो उसको पूर्णतया संघात्मक संविधान कहा जा सकता है और न एकात्मक। कुछ विद्वान इसको अर्द्ध संघीय संविधान कहते हैं। डॉ० अम्बेदकर ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा है—"संघ में पूरे तौर से एक व्यवस्थित संघीय शासन नहीं है बल्कि अर्द्ध-संघीय व्यवस्था है जिसमें एकात्मक शासन के कुछ तत्व विद्यमान हैं।"

"The union is not strictly a federal polity but a quasifederal polity with some vital elements of unitariness." —Dr. Ambedkar.

श्री दुर्गादास बसु ने भारतीय संविधान को न तो पूर्णतया संघात्मक माना है और न पूर्णतया एकात्मक। उन्होंने उसको दोनों का सम्मिश्रण बतलाया है। उन्होंने लिखा है, "भारत का संविधान न तो पूर्णतया संघात्मक है और न एकात्मक इसमें दोनों का सामंजस्य किया गया है। यह एक नवीन और अनूठे प्रकार का संघ है।"

प्रो० डी० एन० बनर्जी का विचार है, "भारतीय संविधान का स्वरूप एकात्मक की व्यवस्था सहित संघात्मक है।"

भारत में संघ सरकार की स्थापना की उपयुक्तता (The fitness of Federal Government in India)

ऊपर हमने इस बात की विवेचना की है कि भारतीय संविधान का स्वरूप कैसा है? भारत के लिए संघात्मक संविधान उपयोगी होगा अथवा एकात्मक, यह एक अलग प्रश्न है। विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग संघात्मक संविधान को ही भारत के लिए अधिक उपयोगी बतलाता है। इस विषय में वह निम्नलिखित विचार प्रस्तुत करता है—

(1) देश की विशालता—भारत एक अत्यन्त विशाल देश है। इसका क्षेत्रफल लगभग 22 लाख वर्ग किलोमीटर है। देश की जनसंख्या भी बहुत अधिक है और निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस समय यह 50 करोड़ से ऊपर हो गई है। इतने बड़े देश और इतने अधिक लोगों पर शासन करना एक केन्द्रीय सरकार के द्वारा यदि पूर्णतया असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। राज्यों की सरकारों के अभाव में केन्द्रीय सरकार कुशलतापूर्वक शासन नहीं कर सकती। इस कारण देश में संघ सरकार की स्थापना ही अधिक उपयोगी है।

(2) विभिन्न हितों की रक्षा—भारत में अनेक प्रान्त हैं और इन प्रान्तों में पर्याप्त विभिन्नता के दर्शन होते हैं। विभिन्न प्रान्तों की अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं और वहाँ के निवासी अलग-अलग तरह की विचारधारा से प्रभावित हैं। स्थानीय व्यक्तियों की समस्याओं का हल एक केन्द्रीय सरकार सुचारु रूप से नहीं निकाल सकती इसलिए राज्य सरकारों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

(3) संस्कृति एवं भाषा की उन्नति—भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। विभिन्न व्यक्तियों का साहित्य और संगीत भी अलग-अलग तरह का है। इन समस्त भाषाओं की उन्नति, और साहित्य संगीत तथा कला के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सरकार द्वारा प्रोत्साहन मिले। यह प्रोत्साहन जितना अधिक राज्य सरकारें दे सकती हैं, उतना अधिक एक केन्द्रीय सरकार नहीं।

(4) लोकतन्त्रात्मक पक्ष—लोकतन्त्रात्मक दृष्टि से भी भारत में संघ सरकार की स्थापना उचित है। भारत जैसे विशाल देश के लिए लोकतन्त्र की स्थापना में एकात्मक संविधान की अपेक्षा संघात्मक संविधान अधिक उपयोगी होगा। एकात्मक शासन-पद्धति में सम्पूर्ण विषयों का निर्णय केन्द्रीय संसद करती है। कल्पना कीजिए कि भारत में राज्य सरकारों को समाप्त करके केवल केन्द्रीय सरकार की ही स्थापना की जाय तो क्या स्थिति होगी ? हमारी संसद में 6 लाख से साढ़े आठ लाख जनता का एक प्रतिनिधि जाता है। क्या इतने विशाल समुदाय के हितों का संरक्षण एक ही प्रतिनिधि कर सकता है ? राज्य की विधान सभा में लगभग एक लाख व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि होता है, जो केन्द्र के प्रतिनिधि की अपेक्षा जनता से अधिक सम्पर्क स्थापित कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि संघात्मक संविधान में जनता को शासन में भाग लेने का अधिक अवसर प्राप्त होता है और सच्चा लोकतन्त्र वही है जिसमें जनता शासन में समुचित रूप से भाग ले सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में संघ सरकार की स्थापना अधिक उचित और लाभदायक है। यदि भारतीय संविधान पर विचित्र गहनता से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि संविधान में इस बात की समुचित व्यवस्था की गई है कि जनता को शासन में पूर्ण रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान ने देश में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की है जिसमें संघीय संविधान और एकात्मक संविधान के समस्त गुणों का समावेश हुआ है।

———

अध्याय | 3

नागरिकता, मूल अधिकार एवं राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

(CITIZENSHIP, FUNDAMENTAL RIGHTS & THE DIRECTIVE PRINCIPLES OF THE STATE POLICY)

भारतीय नागरिकता

(Indian Citizenship)

प्रश्न—भारतीय संविधान के नागरिकता सम्बन्धी और उनके विरोध में दिये गये तर्कों का उल्लेख कीजिए।

(Discuss the provisions of the Indian Constitution which are related to the citizenship and give an account of the points which are raised against them.)

भूमिका (Introduction)

भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा को भारतीय नागरिकता सम्बन्धी उपबन्धों के सम्बन्ध में निर्णय लेने में दो वर्ष से अधिक का समय लगा। इतना अधिक समय लगने का मूल कारण भारत का विभाजन और विदेशों में रहने वाले भारतीयों की समस्या थी। सन् 1947 ई० और सन् 1949 ई० के मध्य भारत से पाकिस्तान जाने वालों तथा पाकिस्तान से भारत आने वालों ने संविधान-निर्माताओं के सम्मुख बड़ी विकट समस्या उत्पन्न कर दी। एक ओर यह समस्या थी कि जो लोग पाकिस्तान से भारत आ गये हैं उन्हें किस प्रकार की नागरिकता प्रदान की जाए और दूसरी ओर यह समस्या थी कि जो विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान चले गये हैं उनकी नागरिकता किस प्रकार छीनी जाये। इसके साथ ही विदेशों में रहने वाले भारतीयों की समस्या भी अत्यन्त जटिल थी। इन समस्त समस्याओं के समाधान के हेतु कई प्रारूप बनाये गये और नष्ट किये गये तत्पश्चात् जो प्रारूप तैयार हुआ वह संविधान सभा के समक्ष रखा गया। संविधान सभा के समक्ष इस प्रारूप के सम्बन्ध में

विभिन्न लोगों ने 140 संशोधन रखे। इन समस्त संशोधनों पर विचार करके संविधान सभा ने नागरिकता सम्बन्धी उपबन्धों पर निर्णय लिया।

नागरिकता सम्बन्धी विभिन्न उपबन्ध (Various Provisions regarding the citizenship)

नागरिकता सम्बन्धी यह उपबन्ध संविधान के दूसरे भाग में 5 से लेकर 11 अनुच्छेद तक लिखे हुए हैं। इन अनुच्छेदों में नागरिकता से सम्बन्ध रखने वाली कुछ विशिष्ट अर्हताओं का वर्णन किया गया है। संविधान में यह लिखा है कि निम्नलिखित लोगों को भारतीय नागरिकता प्राप्त हो सकती है—

(अ) जो व्यक्ति भारत में बसे हुये हों—भारतीय संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि संविधान के लागू होने के दिन से भारत में निवास करने वाले व्यक्ति और (क) जो भारत में जन्म लेंगे, या (ख) जिनके माता-पिता भारतीय भूमि में पैदा हुए होंगे, या (ग) जो संविधान लागू होने के 5 वर्ष से पूर्व भारत में रह रहे होंगे और उन्होंने किसी विदेशी राष्ट्र की राष्ट्रीयता को न अपनाया होगा, ये सब लोग भारत के नागरिक माने जायगे। संविधान की पाँचवीं धारा में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "इस संविधान के प्रारम्भ पर प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्य-क्षेत्र में अधिवास है, तथा—(क) जो भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, अथवा (ख) जिसके जनकों में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा था, अथवा (ग) जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले कम से कम पाँच वर्ष तक भारत राज्य-क्षेत्र में सामान्य निवासी रहा है, भारत का नागरिक होगा।"

(ब) पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थी—भारतीय नागरिकों का दूसरा वर्ग उनका है जो पाकिस्तान से भागकर भारत आये हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को दो श्रेणी में विभाजित किया गया है, (1) वह जो 19 जुलाई, 1948 से पहले भारत आए, (2) वह जो 19 जुलाई, 1948 के पश्चात् भारत आए।

19 जुलाई, 1948 के पश्चात् भारत आने वाले वे सभी व्यक्ति जिनके माता-पिता अविभाजित भारत में रहे हों और जिनका नाम 26 जनवरी, 1950 तक भारत सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा रजिस्टर कर लिया गया हो, भारतीय नागरिक माने जायेंगे।

(स) विदेशों में रहने वाले भारतीय नागरिक—विदेशों में रहने वाले वे व्यक्ति भारत के नागरिक समझे जायेंगे जो निम्नलिखित शर्तें पूरी करते हैं—

(1) उनके माता-पिता, अथवा दादा-दादी का जन्म *अविभाजित* भारत में हुआ हो।

(2) उन्होंने भारतीय राजदूत को भारतीय नागरिक बनने के लिए प्रार्थना-पत्र

26 जनवरी, 1950 या उसके बाद दिया हो और उन्हें भारतीय नागरिक रजिस्टर कर लिया गया हो।

नागरिकता अधिनियम, 1955 (Citizensbip Act, 1955)

भारतीय संविधान ने संसद को जो सत्ता प्रदान की है उसके अनुसार संसद ने 1955 ई० में नागरिकता सम्बन्धी एक व्यापक कानून बनाया। इस अधिनियम के उपबन्धों में नागरिकता की प्राप्ति और नागरिकता के लोप सम्बन्धी दोनों ही प्रकार के उपबन्ध थे।

(अ) नागरिकता की प्राप्ति—नागरिकता की प्राप्ति के सम्बन्ध में यह प्रावधान किया गया कि निम्नलिखित साधनों के द्वारा नागरिकता की प्राप्ति होगी—

(1) जन्मजात नागरिक—भारत में 26 जनवरी, सन् 1950 ई० को या इससे पूर्व उत्पन्न होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को जन्मजात भारतीय नागरिक माना जायगा, यदि वह किसी विदेशी राजदूत या विदेशी शत्रु की सन्तान न हो।

(2) वंशाधिकार द्वारा नागरिकता की प्राप्ति—26 जनवरी, सन् 1950 ई० अथवा उसके पश्चात् भारत से बाहर उत्पन्न होने वाला कोई व्यक्ति, यदि उसके पिता उसके जन्म के समय भारत के नागरिक हों, वंशाधिकार के आधार पर भारतीय नागरिक माना जायेगा।

(3) रजिस्ट्रेशन द्वारा नागरिकता की प्राप्ति—यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित वर्गों में से किसी एक वर्ग का हो तो वह प्रार्थना-पत्र देकर भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है।

(क) वे भारतीय (Persons of Indian origin) जो साधारणतया भारत में रहते हैं और रजिस्ट्रेशन के लिए प्रार्थना-पत्र देने के समय से 6 माह पूर्व से भारत मे रह रहे हों।

(ख) वे भारतीय जो साधारणतया अविभाजित भारत के किसी स्थान पर रहते हों।

(ग) वे स्त्रियां जिन्होंने अपना विवाह भारतीय नागरिकों से किया हो।

(घ) भारतीय नागरिकों के अवयस्क (Minor) बच्चे।

(4) नागरीकरण द्वारा नागरिकता की प्राप्ति—कोई भी विदेशी (राष्ट्र मण्डल के सदस्य देशों अथवा आयरलैण्ड गणतन्त्र के नागरिकों के अलावा) भारत की सरकार को प्रार्थना-पत्र देने पर नागरीकरण के द्वारा भारत का नागरिक बनाया जा सकता है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करता हो—

(क) वह किसी ऐसे देश का नागरिक हो, जहां भारतीय को नागरीकरण द्वारा नागरिक न बनाया जाता हो।

(ख) उसने अपनी पहली नागरिकता को छोड़ दिया हो।

(ग) प्रार्थना-पत्र देने के पहले वह लगातार भारत में रहा हो और इस दौरान सरकारी नौकर रहा हो।

(घ) एक साल की अवधि से पहले के सात वर्षों में कम से कम चार वर्ष वह भारत में अवश्य रहा हो।

(च) वह सच्चरित्र हो और भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में लिखित भारतीय भाषाओं में से किसी एक का ज्ञाता हो।

(छ) भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जाने के पश्चात् उसका विचार भारत में ही रहने का हो।

उपर्युक्त शर्तें विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन, विश्व शान्ति अथवा मानव उन्नति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले के लिए हटाई भी जा सकती है।

(5) क्षेत्र-विस्तार द्वारा नागरिकता की प्राप्ति—यदि कोई भू-भाग भारत राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है तो वहाँ के निवासियों को भारत की सरकार नागरिकता प्रदान कर सकती है।

(ब) नागरिकता का लोप—इस अधिनियम द्वारा निम्नलिखित तीन परिस्थितियों में कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता से वंचित हो जायेगा—

(1) परित्याग द्वारा—यदि कोई भारतीय नागरिक जो अन्य किसी देश में रह रहा है और वह प्रस्तावित विधि के घोषणा-पत्र द्वारा भारतीय नागरिकता का परित्याग करता है, तो वह घोषणा-पत्र के पंजीकरण के बाद भारतीय नहीं रह जायेगा और उसके अल्प-वयस्क बच्चे भी भारतीय नागरिक नहीं रहेंगे। बालिग होने के एक वर्ष बाद यदि वह बच्चे पुनः भारतीय नागरिक बनना चाहें और तत्सम्बन्धी इच्छा प्रकट करें, तो उन्हें भारतीय नागरिक बना लिया जायगा।

(2) समाप्तीकरण द्वारा—यदि किसी व्यक्ति ने देशीकरण, पंजीकरण अथवा अन्य किसी विधि से भारतीय नागरिकता प्राप्त की थी और उसने 26-1-50 से 30-12-55 के मध्य किसी अन्य देश की नागरिकता स्वेच्छानुसार ग्रहण कर ली हो, तो वह भारतीय नागरिक उस तिथि से नहीं माना जायगा जिस तिथि से उसने अन्य किसी देश की नागरिकता स्वीकार की थी।

(3) वंचित करने पर—1955 के अधिनियम की धारा 10 के अनुसार भारत सरकार पंजीकरण अथवा संविधान के 5वें अनुच्छेद की धारा (ग) के अनुसार नागरिकता प्राप्त किसी व्यक्ति को भारतीय नागरिकता से वंचित कर सकती है, यदि उसने बेईमानी से नागरिकता प्राप्त की है अथवा भारत के संविधान के प्रति कर्म या वचन से अनिष्ठा या विरक्ति प्रदर्शित की है या भारत के किसी शत्रु की सहायता की

है या नागरिकता प्राप्त करने के 5 वर्ष के अन्दर किसी देश में दो वर्ष या उससे अधिक कारावास प्राप्त किया है अथवा उसने सात वर्ष लगातार भारत के बाहर निवास किया है। इस अधिनियम में आवश्यक परित्राणों (Safeguards) की भी चर्चा की गई है जिसमें कि किसी व्यक्ति को भारतीय नागरिकता से वंचित करते समय प्रत्येक मामले को भली प्रकार देखा जाये।

नागरिकता सम्बन्धी प्रावधानों की आलोचना—भारतीय संविधान में दिये गये नागरिकता सम्बन्धी प्रावधानों की विभिन्न विद्वानों ने बड़ी तीखी आलोचना की है। इन प्रावधानों के सम्बन्ध में विद्वानों ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(1) डा० पंजाबराव देशमुख ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भारतीय नागरिकता अत्यन्त सस्ती है। यदि कोई बच्चा किसी विदेशी के भारत भ्रमण के समय पैदा हो जाये तो वह भारत का नागरिक हो सकेगा। यही नहीं, उसके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र आदि भारतीय नागरिक बन सकेंगे।

(2) विदेशी पूँजीपतियों को भारतीय नागरिकता—डा० के० टी० शाह ने यह आशङ्का प्रकट की है कि इस व्यवस्था के अनुसार यदि कोई विदेशी भारत में 5 वर्ष रह जाये तो उसको भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जायेगी। बहुत से विदेशी पूँजीपति भारतीय नागरिक हो जायेंगे और वे भारतीय नागरिकता का उपभोग यहाँ की जनता के शोषण में करेंगे।

(3) हिन्दू और सिक्खों के लिए पंजीकरण की शर्त अनावश्यक—कुछ विद्वानों का मत था कि चूँकि हिन्दू और सिक्खों का अन्य कोई देश नहीं है इसलिए उन लोगों के लिए नागरिकता प्राप्त करने हेतु पंजीकरण की शर्त रखना उचित नहीं है।

(4) भारत से पाकिस्तान जाकर पुनः लौटने वाले लोगों को नागरिकता देना उचित नहीं—कुछ लोगों का यह मत था कि जो लोग प्रसन्नतापूर्वक भारत से पाकिस्तान गये थे और फिर रोते हुये भारत आये उन्हें भारतीय नागरिकता नहीं दी जानी चाहिये थी।

इन आलोचनाओं का उत्तर देश के कर्णधारों ने समय-समय पर दिया। डॉ० अम्बेदकर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह कहना उचित नहीं है कि भारतीय नागरिकता सस्ती है। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि नागरिकता सम्बन्धी किसी नियम में कोई कठिनाई है तो संसद को यह पूर्ण अधिकार दिया गया है कि वह उस नियम को ठीक कर ले। जहाँ तक भारत से पाकिस्तान जाकर फिर लौटने वालों की बात थी, भारत के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह कार्य काफी जाँच-पड़ताल और समझबूझ कर किया गया है। इस प्रकार

हम देखते हैं कि भारतीय नागरिकता से सम्बन्धित उपबन्धों के विरोध में तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उनमें अधिक वज़न नहीं है और आज की स्थिति यह है कि भारत में नागरिकता सम्बन्धी किसी भी प्रकार का विवाद नहीं है।

मौलिक अधिकार
(Fundamental Rights)

प्रश्न—भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों को दिए गए मौलिक अधिकारों के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट कीजिये और विभिन्न अधिकारों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

(Clarify the general nature of the Fundamental Rights given to the citizens by the Indian Constitution and give a brief account of the Various Fundamental Rights.)

भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों को दिये गये मौलिक अधिकारों की चर्चा कीजिये और इन अधिकारों की समीक्षा कीजिये।

(Discuss the Fundamental Rights given by the Indian Constitution to the citizens and give assessment of these rights.)

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की तुलना अमेरिका और रूस के संविधानों से कीजिये।

(Compare the Fundamental Rights of the Indian Constitution with the Fundamental Rights of the American and the Russian Constitution.)

मौलिक अधिकारों का सामान्य स्वरूप (General Nature of the Fundamental Rights)।

मानव सभ्यता के आरम्भ से ही व्यक्ति और राज्य का संघर्ष आरम्भ हुआ और बहुत समय तक राज्य एवं व्यक्ति के विरोधी दावों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया। परन्तु राज्य और व्यक्ति का संघर्ष किसी न किसी रूप में आज तक बना हुआ है। लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में यद्यपि राज्य की सरकार नागरिकों का अधिक से अधिक हित करना चाहती है, फिर भी कभी-कभी ऐसा अवसर आ जाता है जबकि नागरिकों और सरकार के मध्य मतभेद उत्पन्न हो जाता है। नागरिक के सर्वतोमुखी विकास के हेतु स्वतन्त्रता अत्यन्त आवश्यक है। हो सकता है कि उसकी स्वतन्त्रता का कभी हनन किया जाए। इसलिए अधिकतर लोकतन्त्रात्मक संविधानों में नागरिकों के मौलिक अधिकार अलग से दिए गए हैं। ये अधिकार संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं और कार्यपालिका अथवा विधानमण्डल इन अधिकारों से नागरिकों को

वंचित नहीं कर सकते । भारतीय संविधान में भी नागरिकों के सर्वाङ्गीण विकास के हेतु मौलिक अधिकार दिए गए हैं । यह मौलिक अधिकार कानूनी अधिकारों से भिन्न हैं । कानूनी अधिकार विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों या विधियों द्वारा प्रदान किए जाते हैं; परन्तु मौलिक अधिकार संविधान द्वारा प्रदान किए जाते हैं । मौलिक अधिकारों के रक्षक न्यायालय होते हैं । ये अधिकार शासन और विधानमण्डल के ऊपर अंकुश रूप में होते हैं और उनके कारण विधानमण्डल स्वेच्छाचारी नहीं होने पाते । एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "मूल अधिकारों के सिद्धान्त में शासन का सीमित होना छिपा हुआ है । सरकार और विधानमण्डल को तानाशाही से रोकना ही उसका उद्देश्य है और इस उद्देश्य को पाने के लिए यह व्यक्ति को विकास का मौका देता है । चाहे किसी भी दल का व्यक्ति क्यों न हो, उसके मौलिक अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार है । यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के हनन का प्रयास किया जाता है, तो वह न्यायालय की शरण में जाकर तुरन्त अपने अधिकारों की रक्षा कर लेता है ।

ब्रिटेन में मौलिक अधिकारों की स्थिति—ब्रिटेन का संविधान एक अलिखित संविधान है और इसीलिए वहाँ मौलिक अधिकारों को लिखा नहीं गया है; परन्तु फिर भी महाधिकार पत्र (Magna Carta), अधिकार विधेयक (Bill of Rights), अधिकार आवेदन (Petition of Rights) आदि प्रलेखों में नागरिकों के इस प्रकार के अधिकारों की चर्चा है । इसके साथ ही परम्परा रूप में नागरिकों को वह समस्त मौलिक अधिकार प्राप्त हैं जो किसी भी स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक देश में नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए । ब्रिटेन में मौलिक अधिकारों की वास्तविक स्थिति यह है कि यद्यपि ये मौलिक अधिकार कहीं भी एक स्थान पर लिखे हुए नहीं हैं; परन्तु फिर भी ब्रिटेन की जनता अन्य प्रजातन्त्रात्मक देशों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग करती है ।

अमेरिका में मौलिक अधिकारों की स्थिति—अमेरिका के संविधान में नागरिकों को दिए गए मौलिक अधिकारों को बड़े स्पष्ट रूप में लिखा गया है और वहाँ की कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिका इन अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकती । इन अधिकारों की सुरक्षा का भार स्वतन्त्र न्यायपालिका को सौंपा गया है ।

भारत में मौलिक अधिकारों की माँग और भारतीय संविधान में उनका समावेश—जिस समय भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उस समय भारतीय राजनीतिज्ञ एवं संविधान-शास्त्रियों के मस्तिष्क में संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करने की बात घूम रही थी । भारतीयों में यह विचारधारा अमेरिका संविधान के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी । जब सन 1946 ई० में संविधान सभा का

(2) **स्वतन्त्रता का अधिकार**—स्वतन्त्रता के अधिकार का वर्णन अनुच्छेद 19 से 22 तक में किया गया है। इन अनुच्छेदों में अनुच्छेद 19 सबसे महत्वपूर्ण है। इस अनुच्छेद के अनुसार नागरिकों को भाषण और विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, संस्था, परिषद या संघ-निर्माण की स्वतंत्रता, भारतीय राज्य-क्षेत्र में भ्रमण की स्वतंत्रता, व्यवसाय, वृत्ति, उपजीविका या कारोबार की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। अनुच्छेद 20 के द्वारा अपराधी व्यक्ति को स्वेच्छाचारी और अत्यधिक दण्ड से बचाने की चेष्टा की गई है। अनुच्छेद 21 द्वारा जीवन की स्वतन्त्रता का संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें लिखा है, "किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायगा।" अनुच्छेद 22 बन्दीकरण और नजरबन्दी से बचाव के सम्बन्ध में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान में भारतीय नागरिकों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। परन्तु इस स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है। यही कारण है कि भारतीय संविधान में नागरिकों को जहाँ स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है वहाँ दूसरी ओर उन पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाये गए हैं जिससे कि उनकी स्वतन्त्रता निरंकुशता का रूप धारण न कर ले।

(3) **शोषण के विरुद्ध अधिकार**—संविधान के अनुच्छेद 23 व 24 में नागरिकों को शोषण से मुक्ति का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 23 के द्वारा बेगार को निषिद्ध ठहराया गया है। अनुच्छेद 24 के द्वारा बल-श्रम का निषेध किया गया है। समाज के शोषण की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन-काल से चली आ रही है। पूंजीपति व धनवान व्यक्ति श्रमिकों से अधिक काम लेते रहे हैं और कम पैसा देते रहे हैं। मानव-व्यापार की घटनाएँ अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित रही हैं। स्त्रियों के साथ दुराचार होते रहे हैं और क्रय-विक्रय की परम्परा प्रचलित रही है। भारतीय संविधान में शोषण के विरुद्ध जिन अधिकारों का प्राविधान किया गया है उनका मूल उद्देश्य यही है कि बेगार और बलात् श्रम का अन्त हो। मानव-व्यापार समाप्त हो और कम आयु के बालक-बालिकाओं से मजदूरी न करवाई जाए। यदि कोई व्यक्ति दूसरों से बेगार लेता है तो उसे दण्डित किया जा सकता है। पुरुषों, स्त्रियों और बालक-बालिकाओं का क्रय-विक्रय अवैध है। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने या खान में नहीं रक्खा जा सकता और न किसी दूसरे संकटयुक्त कार्य में लगाया जा सकता है। वास्तव में शोषण के विरुद्ध अधिकार भारतीय संविधान का एक तत्व है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में भी इस प्रकार का प्राविधान वर्ष से कम आयु वाले बालकों के खतरनाक कार्य से निषेध की बात

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार—संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की चर्चा की गई है। अनुच्छेद 25 अन्तःकरण की तथा धर्म के अबाध मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद 26 धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद 27 धार्मिक मामलों में दिये गए धन से कर की अदायगी को अलग रखने की व्यवस्था करता है। इसमें लिखा है, "कोई भी व्यक्ति ऐसे करों को देने के लिए बाध्य नहीं किया जायगा जिनके आगम किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिए विशेष रूप से विनियुक्त कर दिए गए हों।" अनुच्छेद 28 के द्वारा विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता दी गई है। भारतीय संविधान धर्म-निरपेक्ष संविधान है। संविधान द्वारा भारत के विभिन्न धर्मानुयायियों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। भारत के विभिन्न धर्मानुयायी, बिना किसी दूसरे धर्म के अनुयायियों के कार्यों में हस्तक्षेप किए हुए अपने-अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी धार्मिक मान्यताओं को मानने का अधिकार है। धर्म के आधार पर किसी को सरकारी नौकरी से वंचित नहीं रखा जा सकता है। किसी भी सरकारी संस्था में किसी भी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं प्रदान की जा सकती, बशर्ते कि इस संगठन विशेष से सामाजिक और राष्ट्रीय हितों को कोई भय न उत्पन्न हो गया हो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उपासना कर सकता है और धर्म का पालन कर सकता है। देश का कोई भी व्यक्ति किसी भी धार्मिक संगठन का सदस्य बन सकता है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की उन्नति के लिए किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जा सकता है।

वास्तव में धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करके भारतीय संविधान ने संसार के सम्मुख एक आदर्श रखा है। हमारे संविधान में इस प्रकार की स्वतन्त्रता इस बात की साक्षी है कि हम सभी धर्मों का आदर करते हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। मानव मात्र की सेवा हमारा सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

(5) सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार—भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 में सांस्कृतिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख किया गया है। संविधान की धाराएँ इस प्रकार हैं—

धारा 29—अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण—(1) भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य-निधि से सहायता पानेवाली किसी शिक्षा

संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जावेगा।

धारा 30—शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यकों का अधिकार—(1) धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(2) शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद न करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।

संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है और शिक्षा उसकी चेतनाशक्ति है जिस राष्ट्र में शिक्षा और संस्कृति की स्वतन्त्रता नहीं प्रदान की जाती है वह राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। भारतीय संविधान में भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। प्रत्येक वर्ग को इस प्रकार के शिक्षालयों की स्थापना करने का अधिकार है जिससे उसकी भाषा, लिपि और धर्म तथा संस्कृति की उन्नति हो। सरकारी शिक्षा संस्थाओं में स्थान होने पर सभी को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है। सरकार की ओर से बिना किसी भेद-भाव के शिक्षा संस्थाओं को अनुदान दिया जाता है। भारतीय संविधान में यह स्पष्ट लिखा है कि देश के किसी भाग में यदि कोई वर्ग ऐसा है जिसकी अपनी भाषा है, अपनी लिपि है और अपनी संस्कृति है तो उसकी संस्कृति को मिटाने का प्रयास नहीं किया जायेगा और उसे उसकी रक्षा करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(6) सम्पत्ति का अधिकार—जीवन में सम्पत्ति का अत्यन्त महत्व है। सम्पत्ति के बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता। यही कारण है कि प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन लॉक ने लिखा था, "प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतन्त्रता, तथा सम्पत्ति का प्राकृतिक अधिकार है।" भारतीय संविधान के अनुच्छेद 31 में सम्पत्ति के अधिकार की चर्चा की गई है। कोई भी व्यक्ति किसी की सम्पत्ति का अपहरण नहीं कर सकता। यदि कोई जबर्दस्ती किसी की सम्पत्ति पर अधिकार करता है तो उसे दण्ड दिया जायेगा। कानून द्वारा भी किसी की सम्पत्ति लेने पर उसे उचित मुआवजा दिया जायेगा। भारत का नागरिक न्यायपूर्वक ईमानदारी से अपनी जीविका अर्जित कर सकता है, और उसके इस कार्य में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। व्यक्तिगत सम्पत्ति को पूर्ण मान्यता प्रदान की गई है और सम्पत्ति रखने का हनन नहीं किया जा सकता है। सम्पत्ति के अधिकार को लेकर संसद में बहुत अधिक बहस हो रही है और अनेक विद्वानों का मत है कि सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों

से निकाल देना चाहिए। लोकतन्त्र मे सम्पति के अधिकार का क्या रूप होगा यह भविष्य के गर्त में है परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नही कि अनुच्छेद 31 द्वारा प्रदान किया गया यह अधिकार अत्यन्त विवादास्पद रहा है।

(7) संवैधानिक उपचार का अधिकार—हमें संविधान द्वारा अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं, परन्तु यह अधिकार तब तक व्यर्थ है जब तक कि उनकी रक्षा का उचित प्रबन्ध न हो। यही कारण है कि संविधान में संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार का समावेश किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचार या प्रतिकार के अधिकार की बात कही गई है। इस धारा में लिखा है :—

(1) इस भाग द्वारा दिये गए अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचलित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

(2) इस भाग द्वारा दिये गए अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी-प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।

(3) उच्चतम न्यायालय को खण्ड (1) और (2) द्वारा दी गई शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद विधि किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (2) के अधीन प्रयोग की जाने वाली सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।

(4) इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जायगा।

किसी भी व्यक्ति के मूलाधिकारों का उल्लंघन होने पर वही उनकी रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय तक जा सकता है। यदि भारतीय संसद भी चाहे तो भारतीय नागरिकों के मूलाधिकारों का हनन नहीं कर सकती। यदि संसद का कोई कानून या सरकार का कोई नियम नागरिक के मूलाधिकार में बाधक है तो उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार है कि वह उस नागरिक के मूलाधिकार की रक्षा के हेतु उस कानून या नियम को अवैध घोषित कर दे। न्यायालयों को बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mangomus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार-पृच्छा (Quo-warranto) और उत्प्रेषण (Certiorari) आदि के अधिकार प्राप्त हैं जिनके द्वारा वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है।

वास्तव में संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार के बिना नागरिकों के समस्त

मौलिक अधिकार केवल प्रदर्शनी ही बनकर रह जाते हैं। संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार ही वह रक्षा-कवच है जिसके द्वारा सभी अधिकारों की रक्षा होती है। यही कारण है कि डा० अम्बेडकर ने कहा था, "अगर मुझसे पूछा जाये कि संविधान में सबसे मुख्य अनुच्छेद कौन सा है, तो मैं यही कहूँगा कि संवैधानिक प्रतिकार को संविधान की अन्तरात्मा का हृदय कहना अनुचित न होगा।"

"If I was asked to name any particular article in this Constitution as the most important—an article without which the Constitution would be a nullity—I could not refer to any other article except this one. It is the very soul of the Constitution and the very heart of it."

—Dr. Ambedkar.

मौलिक अधिकारों का निलम्बन किया जाना (Suspension of the Fundamental Rights)

भारतीय संविधान में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार प्रदान किए गए है उनके निलम्बन की भी व्यवस्था है। जब बाह्य आक्रमण या आंतरिक अशांति के फलस्वरूप राष्ट्रपति द्वारा आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी जाती है तब राष्ट्रपति के आदेश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 19 में दिए गए स्वतन्त्रता सम्बन्धी सर्व अधिकार निलम्बित कर दिये जाते हैं। इसके साथ ही राष्ट्रपति मौलिक अधिकारों की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिए न्यायालय में प्रार्थना करने के अधिकार को भी स्थगित क सकता है। राष्ट्रपति इस प्रकार के आदेश सम्पूर्ण भारत अथवा उसके किसी भाग के लिए जारी कर सकता है। राष्ट्रपति को मौलिक अधिकारों के निलम्बन के सम्बन्ध आदेश जारी करने का अधिकार अवश्य है परन्तु शीघ्रातिशीघ्र उसके इस प्रकार आदेश संसद के दोनों सदनों के समक्ष अवश्य ही रखे जाते हैं और संसद द्वारा उनकी पुष्टि होना आवश्यक हो जाता है। आपातकालीन स्थिति की समाप्ति पर नागरिको को ये मौलिक अधिकार फिर प्राप्त हो जाते हैं।

निलम्बन की समालोचना—कुछ आलोचकों का यह मत है कि स्वातन्त्र्य अधिकार को स्थगित करना उचित नहीं है। इस प्रकार के कार्य से राज्य का रू सर्वाधिकारवादी हो जाता है। नागरिकों की स्वतन्त्रता को किसी भी स्थिति में समाप्त नहीं करना चाहिए। यदि हम किंचित गहनता से विचार करें तो यह आक्षेप कि स्वातन्त्र्य अधिकार के स्थगन से राज्य का रूप सर्वाधिकारवादी हो जाता है, उचि नहीं प्रतीत होता। वास्तव में स्वातंत्र्य अधिकार केवल बाह्य युद्ध अथवा व्याप आंतरिक अशान्ति के फलस्वरूप ही उत्पन्न होने वाले आपात काल के दौरान ही स्थगि किए जाते है। इस स्थिति में राज्य की सुरक्षा का महत्व व्यक्ति की स्वतंत्रता से अधि

ही अधिक हो जाता है और यदि राज्य की सुरक्षा न रहेगी तो व्यक्ति की स्वत का क्या मूल्य रहेगा इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि स्वातन्त्र्य अधिकार के स्थगन के लिए निकाले गए राष्ट्रपति के आदेश की पुष्टि यथाशीघ्र ससद के दोनो सदनों द्वारा अवश्य ही की जाती है। यदि ससद चाहे तो राष्ट्रपति के आदेश पर अपनी स्वीकृति न देकर उसे रद्द कर सकती है। अतएव सर्वाधिकार की बात करना उचित नहीं है। आपातकालीन स्थिति में, जब नागरिको के स्वातन्त्र्य अधिकार का स्थगन हो जाता है तब भी वास्तविक सत्ता जनता के प्रतिनिधियो के हाथ में बनी रहती है। यह बात अवश्य है कि भारत में मौलिक अधिकारो के स्थगन की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में व्यवस्थापिका में ही स्थगन की शक्ति निहित होती है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो नागरिको का स्वातन्त्र्य अधिकार सम्बन्धी मूलाधिकार का स्थगन उचित ही है। भारत जैसे नवजात प्रजातन्त्र देश में जहाँ अत्यन्त भीषण समस्याएँ हैं एव जिस विदेशी आक्रमण का भय सदैव बना हुआ है स्वतन्त्रता के अधिकारो का दुरुपयोग हो जाना अवश्यम्भावी है। यदि आपातकालीन स्थिति में इन अधिकारो का निलम्बन नहीं किया जाता तो सम्भव है कि देश की स्वतन्त्रता को खतरा पैदा हो जाता।

भारतीय सविधान के मौलिक अधिकारो की अमरीका और सोवियत सविधान के मौलिक अधिकारो से तुलना (Comparison between the Fundamental Rights of Indian Constitution with the Fundamental Rights of American and Russian Constitution)

(1) अमरीका सविधान के मौलिक अधिकारो से तुलना—भारतीय सविधान और अमरीकन सविधान में मौलिक अधिकारो की जो योजना दी हुई है उनमें पर्याप्त समानता है। दोनो ही सविधानो में मौलिक अधिकारो की रक्षा का भार न्यायालयो को सौंपा गया है। दोनो देशो में कार्यपालिका इस बात का अधिकार रखती है कि यदि वह समझती है कि व्यवस्थापिका अथवा कार्यपालिका के किसी कार्य से नागरिको के मौलिक अधिकारो का उल्लघन हो रहा है तो वह समुचित समादेश (Writs) और आदेश (Order) जारी कर सकती है। दोनो ही देशो की व्यवस्थापिकाओ को इस बात का स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वे नागरिको के मूलाधिकारो के विरुद्ध किसी प्रकार की कोई भी विधि न बनाएँ। दोनो देशो के मूलाधिकारो में हम कुछ समानता के दर्शन होते हैं परन्तु इनके साथ ही इन मूलाधिकारो में कुछ अन्तर भी है। यहाँ हम इस अन्तर का सक्षेप में स्पष्ट कर रहे हैं—

(अ) भारत में नागरिको को वही मौलिक अधिकार प्राप्त है जिनका स्पष्ट रूप से उल्लेख सविधान में किया गया है। सविधान में नागरिको के मौलिक अधिकारो की

पूर्ण तालिका प्रस्तुत की गई है। इसके विपरीत अमेरिका में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की तालिका अपूर्ण है। वहाँ के नागरिक संविधान में जो मौलिक अधिकार दिए गए हैं उनके अतिरिक्त भी किसी प्रकार के अधिकार का दावा कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि भारत में संविधान ही नागरिकों के मूलाधिकारों का मूल स्रोत है परन्तु अमेरिका में नागरिकों के मूलाधिकारों के स्रोत संविधान के साथ ही सामान्य विधियाँ (Common Laws) और स्वाभाविक न्याय (Natural Jusuces) भी है।

(ब) अमरीकी संविधान में नागरिकों को कुछ ऐसे मूल अधिकार प्रदान किये गये है जो भारतीय संविधान में प्रदान नहीं किये गये हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका में नागरिकों को शस्त्र रखने का अधिकार प्रदान किया गया है; परन्तु भारत में इस प्रकार का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है।

(स) अमेरिका में मौलिक अधिकार, विशेष रूप से सम्पत्ति, व्यवहार और उद्यम की स्वतन्त्रता भारत से कहीं अधिक सुदृढ़ है क्योंकि वहाँ, 'विधि की उचित प्रक्रिया (Due Process of Law) शब्द का प्रयोग किया गया है। अमेरिका में किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी या तलाशी विना वारंट के नहीं हो सकती। कांग्रेस या राज्य की कोई भी शक्ति नागरिकों को उनके इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकती है भारतीय संविधान में 'विधि की उचित प्रक्रिया' को मान्यता नही दी गई है। फलस्व रूप नागरिकों को अपने मूलाधिकारों के प्रति वहुत सीमा तक व्यवस्थापिका अथव कार्यपालिका की दया पर निर्भर रहना पड़ता है।

(द) भारत में आपातकालीन स्थिति में कार्यपालिका को नागरिकों के मूला धिकारों के निलम्बन का अधिकार है परन्तु अमेरिका में कार्यपालिका को इस प्रका का कोई अधिकार प्रदान नही किया गया है। अमेरिका में व्यवस्थापिका अथवा कार्य पालिका नागरिकों की स्वतन्त्रता को कम नही कर सकती। केवल विदेशी आक्रमण अथवा आन्तरिक विद्रोह की स्थिति मे वहाँ की कांग्रेस बन्दी-प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (Act of Habeas Corpus) के निलम्बन का अधिकार रखती है।

(2) सोवियत संविधान के मौलिक अधिकारों से तुलना—भारती संविधान में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार दिये गये हैं उनकी तुलना सोवियत रूस के संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों से करते हैं तो [illegible] से चार अन्तर स्पष्ट होते हैं—

(अ) सोवियत संविधान में नागरिकों को कुछ इस प्रकार के मौ[illegible] प्रदान किये गये हैं जो भारतीय संविधान द्वारा प्रदान नही किये गये [illegible] लिए सोवियत संघ के संविधान द्वारा नागरिकों को काम करने का [illegible]

और अवकाश का अधिकार, शिक्षा का अधिकार इत्यादि दिया गया है। भारतीय सविधान में इस प्रकार के अधिकारों के दर्शन नहीं होते।

(ब) सोवियत संघ में स्वतन्त्रता का अधिकार व्यवहार में अत्यधिक सीमित है परन्तु भारत में ऐसा नहीं है।

(स) सोवियत सविधान में स्वतन्त्रता के अधिकार को छोड़कर अन्य प्रकार के अधिकारों के समुचित उपभोग के हेतु राज्य की ओर से व्यवस्था की जाती है; परन्तु अभी भारत में इस प्रकार की व्यवस्था करने का कोई बड़ा प्रयत्न नहीं किया गया है।

(द) सोवियत सविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों के साथ ही उनके कर्तव्यों का भी उल्लेख है। सोवियत सङ्घ में यह नियम है कि जो काम नहीं करता उसको भोजन पान का अधिकार नहीं है। भारतीय सविधान में मूलाधिकारों के साथ कर्तव्यों का उल्लेख नहीं है। परन्तु यह अवश्य है कि यहाँ कर्तव्य अधिकारों में ही निहित किये गये हैं। भारतीय सविधानों के निर्माताओं ने इस तथ्य को पूर्ण मान्यता दी है कि अधिकार और कर्तव्य एक ही वस्तु के दो पहलू हैं और इसीलिए उन्होंने मौलिक अधिकारों के साथ कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया है।

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व
(Directive Principles of the State Policy)

प्रश्न—भारतीय स विधान मे दिये गये राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का वर्णन कीजिये। उनका नागरिकों के मौलिक अधिकारों से अन्तर आप किस प्रकार स्पष्ट करेंगे ?

(Describe the Directive Principles of State Policy as embodied in the Constitution of India. How would you distinguish the Directive Principle from the Fundamental Rights ?)

प्रश्न—राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का उल्लेख कीजिये और उनके महत्व की विवेचना कीजिये।

(Describe the Directive Principles of State Policy and discuss their significance.)

भूमिका (Introduction)

सामान्यत राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का सम्बन्ध उन सिद्धान्तों से होता है जो राज्य की नीति-निर्धारित करते हैं। कोई भी राज्य जिन सिद्धान्तों के अनुसार अपने सुनिश्चित विकास पर बढ़ता है वही राज्य के नीति-निर्देशक तत्व हैं। वास्तव में इन सिद्धान्तों का कानून की अपेक्षा नैतिक मूल्य अधिक है। ये सिद्धान्त राज्यों की आचार संहिता होते हैं, जिनका पालन राज्य की इच्छा पर निर्भर करता है। एक विद्वान ने

बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "राज्य में नीति-निर्देशक तत्व प्रशासकों की आचार-संहिता, राष्ट्रीय विकास के प्रेरक सूत्र, तथा राष्ट्र रथ को गति की ओर दिशा प्रदान करने वाले प्रकाश-स्तम्भ हैं।"

भारतीय संविधान के चौथे खंड में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का विशद् वर्णन किया गया है। आयरलैण्ड और स्पेन के संविधानों के अतिरिक्त किसी भी अन्य देशों के संविधान में इस प्रकार के तत्वों का उल्लेख नहीं है। भारतीय संविधान में इन तथ्यों का समावेश इस भावना को ध्यान में रखकर किया गया है कि भारतीय संसद और राज्यों के विधानमंडल एवं कार्यपालिका इन तत्वों का अनुसरण करेंगी और राज्यों के बहुमुखी विकास का प्रयत्न करेंगी। वास्तव में ये सिद्धांत कल्याणकारी राज्य (Welfare state) के आधारभूत सिद्धान्त हैं और समाजवादी आधार पर राष्ट्र के विकास के प्रेरक सूत्र हैं। जी० एल० जोशी ने लिखा है, "इन निर्देशक सिद्धान्तों का विधान मंडल को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को उन कानूनों को लागू करते समय ध्यान रखना चाहिये। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं जिसका अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिये""। राज्य का अस्तित्व नागरिकों के हेतु अच्छे जीवन की प्राप्ति है। भारत में अच्छे जीवन की प्राप्ति तभी संभव होगी जब राज्य इस भाग में दिये गये सिद्धान्तों का पालन करे। यह एक प्रकार का घोषणा-पत्र, आदेश-पत्र, एवं सदाचार के नियमों का संग्रह प्रतीत होते हैं जिससे विधानमंडलों और कार्यपालिकाओं का मार्गदर्शन होना चाहिये....। ये अधिकतर ऐसे नियम तथा सूत्र हैं जिनके आशय के विरोध में कोई उपेक्षा नहीं हो सकती है, किन्तु इनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इनका प्रयोग राजनीतिक आलोचनों के लिए किये जा सकता है। ये किसी प्रकार से न तो कानूनी अधिकार की रचना करते हैं और न हो किसी कानून के उपचार की व्यवस्था करते हैं।"

नीति-निर्देशक तत्वों और मूलाधिकारों में अन्तर (Difference between Directive Principles of State Policy and Fundamental Rights)

कुछ लोग भ्रम से नीति-निर्देशक तत्वों और मूलाधिकारों को एक चीज समझते हैं, परन्तु इन दोनों में बड़ा अन्तर है। सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मूलाधिकारों के पीछे कानून का बल होता है परन्तु नीति-निर्देशक तत्वों के पीछे कानून का बल नहीं होता। उनके अनुसार आचरण करना या न करना सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है क्योंकि कोई भी न्यायालय या अन्य कोई संस्था इन तत्वों के पालन के हेतु सरकार को बाध्य नहीं कर सकती। यदि किसी व्यक्ति के मूलाधिकार का हनन होता है तो वह न्यायालय की शरण में जा सकता है, परन्तु नीति-निर्देशक तत्वों के विषय में ऐसा नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के

अनुसार सरकार द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की आजीविका की व्यवस्था की जानी चाहिये। परन्तु यदि सरकार एसा नही कर पाती ता उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील करना बेकार होगा।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि नीति निर्देशक तत्वा के कार्यान्वयन के हेतु ससद द्वारा बनाए गये किमी कानून या कायपालिका की किमी नीति का किसी मौलिक अधिकार से विरोध है तो क्या स्थिति होगी ? मूलाधिकार को मान्यता प्रदान की जायेगी या नीति निर्देशक तत्व को ? सन् 1950 ई० में इस प्रकार का एक विरोध उत्पन्न हुआ था। मद्रास सरकार ने अनुसूचित और पिछडी जाति के विद्यार्थिया क लिये तक्नीकी शिक्षण सस्थाआ में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये। उसका यह कार्य सविधान के अनुच्छेद 46 में दिये गये उस नीति निर्देशक तत्व क अनुकूल था जिसके अनुसार इन जातिया का शिक्षात्मक सुविधाआ को विशेष रूप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। परन्तु कुछ लागा न मद्रास सरकार के इस निर्णय का विरोध कर यह कह दिया उसका यह काय समानता के मूलाधिकार (अनुच्छेद 15) के विरुद्ध है। मुकदमा उच्चतम न्यायालय में ल जाया गया। न्यायालय ने सरकार के विरुद्ध अपना निणय देत हुए कि, "अनुच्छेद 37 के अनुसार नीति निर्देशक तत्व स्पष्ट रूप स न्यायालय द्वारा कार्यान्वित होने से वचित रखा गया है। अत वह मूलाधिकार का अतिक्रमण नहा कर सकती, जा भाग III की व्यवस्था के अनुसार समावश आदि द्वारा कार्यान्वित किया जा सकता है। मूलाधिकार वाले अध्याय पवित्रतम हैं और मूलाधिकार सिवाय उन प्रतिबन्धा के जो उसी अध्याय के अनुच्छेद म दिये गय हैं विधायका या कायपालिका के किसी विधयन या आज्ञा से कम नही किये जा सकते हैं। नीति निर्देशक तत्व मूलाधिकारा की तुलना में गौड हैं।' इस निणय के फलस्वरूप सविधान के अनुच्छेद 15 में सशोधन करना पडा जिससे कि पिछडी जाति के विद्यार्थिया को इस प्रकार की सुविधा दी जा सके।

यह ठीक है कि मूलाधिकारा की अपेक्षा राज्य के नीति निर्देशक तत्वो को कम महत्व प्रदान किया गया है और जब कभी नीति निर्देशक तत्व और मूलाधिकार म विरोध उत्पन्न होगा तो न्यायालय सदैव मूलाधिकारा को रक्षा की ही बात कहग। परन्तु इसका यह अर्थ नहा है कि न्यायालय नीति निर्देशक तत्वा की एकदम उपेक्षा कर देते हैं। यह ठीक है कि नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा होने पर कोई नागरिक न्यायालय की शरण में नही जाता परन्तु फिर भी हमारे न्यायालय इस बात का प्रयास करते हैं कि इन तत्वा को गौरव प्रदान किया जाये।

बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह के मुकदम में न्यायमूर्ति श्री० एस० आर० दास ने अपना निर्णय देते हुए कहा था कि, "मैं पूछता हूँ कि राज्य द्वारा जमीदारी

आदि के उन्मूलन का उद्देश्य क्या है ? निश्चय ही उद्देश्य यह है कि भूमि जिससे समाज को भोजन मिलता है और उसका पोषण होता है, राज्य के स्वामित्व और नियंत्रण में रहकर सार्वजनिक हितों का साधन बने। राज्य की भूमि पर यह स्वामित्व और नियंत्रण नीति-निर्देशक तत्वों के कार्यान्वयन का प्रथम चरण है.....।" पंडित जवाहर लाल नेहरू ने एक बार तो यहाँ तक कह दिया था कि यदि कभी मूलाधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों में विरोध उत्पन्न हो तो नीति-निर्देशक तत्व को ही मानना चाहिए। वैधानिक दृष्टि से पंडित नेहरू के इस कथन का समर्थन भले ही न किया जाए; परन्तु यह अवश्य है कि यदि कोई प्रमुख नीति-निर्देशक तत्व के कार्यान्वयन में मूलाधिकारों की अवहेलना होती है तो ऐसे मूलाधिकारों में संवैधानिक संशोधन द्वारा परिवर्तन किया जाता है। सम्पत्ति सम्बन्धी मूलाधिकार में संशोधन की जो बात आज सुनाई पड़ रही है वह नीति-निर्देशक तत्वों को ध्यान में रखकर ही की जा रही है।

नीति-निर्देशक तत्वों के भेद (Kinds of the Directive Principles of State Policy)

भारतीय संविधान में दिए गए नीति-निर्देशक तत्वों को मुख्यतया निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(1) सामाजिक विकास-सम्बन्धी तत्व।

(2) आर्थिक व्यवस्था-सम्बन्धी तत्व।

(3) शासन-सुधार-सम्बन्धी तत्व।

(4) सांस्कृतिक विकास-सम्बन्धी तत्व।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा-सम्बन्धी तत्व।

(1) सामाजिक विकास-सम्बन्धी तत्व—भारतीय संविधान में भारतीय नागरिकों के सामाजिक उत्थान विषयक अनेक तत्वों का निरूपण किया गया है। उनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।

(क) कल्याणकारी समाज की रचना—संविधान की धारा 38 में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य के समस्त कार्यों एवं नीतियों का लक्ष्य कल्याणकारी समाज का निर्माण होगा और सभी व्यक्तियों को यह अवसर प्राप्त होगा कि इस कार्य में हाथ बँटा सकें।

(ख) जीवन-स्तर का उन्नयन—राज्य अपने नागरिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने और उन्हें स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करेगा। संविधान की 47वीं धारा में सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने की बात कही गई है। राज्य अपनी नीति का निर्धारण इस प्रकार करेगा कि लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठे।

(ग) नारियों का सुधार एवं बालकों का संरक्षण—भारतीय संविधान

में दिए गए मूलाधिकारों के अनुसार ही नारियों को समानाधिकार प्रदान किए गए हैं परन्तु नीति निर्देशक तत्वों में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राज्य इस बात का पूरा प्रयत्न करेगा कि नारियों की पिछड़ी दशा को सुधारा जाए। उन्हें पुरुषों के समान कार्य अवसर और वेतन मिलेगा तथा प्रसूतिकाल में उन्हें विशेष प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जायेंगी।

संविधान की 36वीं धारा में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य बालकों को शोषण से बचाने के हेतु प्रयत्न करेगा।

(2) आर्थिक व्यवस्था-सम्बन्धी तत्व—किसी भी देश की रीढ़ उसकी आर्थिक-व्यवस्था ही होती है। आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई भी मूल्य नहीं है। यही कारण है कि भारतीय संविधान में राज्य के आर्थिक विकास सम्बन्धी तत्वों का भी समावेश किया गया है। वह तत्व मुख्यतया निम्नलिखित हैं —

(क) जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन और बेकारी का अन्त—भारतीय संविधान के अनुसार सभी स्त्री-पुरुषों को जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार इस बात के लिए प्रयत्नशील रहेगा कि सभी को उनकी योग्यतानुसार काम मिल सके। राज्य ऐसे लोगों की सहायता भी करेगा जो बुढ़ापे अथवा बीमारी के कारण जीविकोपार्जन करने में समर्थ न हों।

(ख) समान कार्य के लिए समान वेतन—भारतीय संविधान में समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था की गई है और यह कहा गया है कि राज्य अपनी सामर्थ्य भर उसको पूरा करने का प्रयत्न करेगा।

(ग) सम्पत्ति का समान वितरण—सरकार आर्थिक विषमता को दूर करने और सम्पत्ति के समान वितरण की व्यवस्था करेगा जिससे सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना की जा सके।

(घ) साधनों का समान वितरण—उत्पादन के विभिन्न साधनों का विकेन्द्रीकरण ही उपयोगी होता है। केन्द्रीयकरण के द्वारा उत्पादन रुक जाता है। इसलिए राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि सम्पत्ति के साधन एक स्थान पर केन्द्रीभूत न हो जायें और उनका समान रूप से वितरण हो।

(ङ) श्रमिक की दशा में सुधार—राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि कृषि और उद्योग में लगे हुए व्यक्ति उतनी मजदूरी पा सकें कि वह सरलपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकें, जीवन-स्तर ऊँचा रख सकें और अवकाश के समय का

पूरा उपभोग कर सकें। राज्य सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी उनके जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेगा।

(च) विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों के हेतु मानवोचित दशाओं का निर्माण—राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि वह ऐसे नियम निर्माण करे कि विभिन्न कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को मानवोचित दशाओं में कार्य करना पड़े। राज्य इस बात का प्रबन्ध करेगा कि स्त्रियों को प्रसूतिकाल में सहायता प्राप्त हो सके।

(छ) कृषि और पशु-सुधार का प्रयत्न—राज्य, कृषि और पशु-पालन को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से संगठित करने का पूर्ण प्रयत्न करेगा। आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की खेती को प्रोत्साहन देगा और गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू व वाहक पशुओं की नस्ल की रक्षा और सुधार का प्रयत्न करेगा।

(3) शासन-सुधार-सम्बन्धी तत्व—संविधान में कुछ ऐसे नीति-निर्देशक तत्वों का समावेश किया गया है जिनका सम्बन्ध शासन-स्तर को ऊँचा और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने से है। ये तत्व निम्नलिखित हैं :—

(क) एक ही आचार संहिता—संविधान की धारा 44 में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि देश के समस्त नागरिकों के लिए एक ही आचार संहिता या नागरिक नियम संहिता (Welfare Civil Code) की व्यवस्था की जाय जिससे देश में प्रशासनिक एकरूपता स्थापित हो और अनेक प्रशासनिक शिथिलताओं को दूर किया जा सके। इस धारा में लिखा है, "भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।"

(ख) ग्राम-पंचायतों का संगठन—गाँवों का सुधार हमारे देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए संविधान की 40वीं धारा में गाँवों में ग्राम-पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है। ये ग्राम-पंचायतें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करेंगी और स्थानीय स्वायत्त-शासन की आधारशिला होंगी। धारा 40 में लिखा है, "राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।"

(ग) कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की पृथकता—संविधान की 50वीं धारा के अनुसार राज्यों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग-अलग रखने का प्रयत्न करें, जिससे कि न्याय में कार्यपालिका का हस्तक्षेप न हो और कार्यपालिका के कार्यों की वैधानिकता की परीक्षा हो सके।

(4) सांस्कृतिक विकास-सम्बन्धी तत्व—राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में

सांस्कृतिक विकास के कार्यक्रम को भी स्थान दिया गया है। सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी तत्व निम्नलिखित हैं—

(क) नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था—संविधान में लिखा हुआ है कि उसके लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बालकों को नि:शुल्क और अनिवार्य बेसिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

(ख) दलित वर्ग की शिक्षा-व्यवस्था—संविधान की धारा 46 में लिखा है, राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के शिक्षा तथा अर्थ-सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।

(ग) कलात्मक और ऐतिहासिक वस्तुओं को संरक्षण—संविधान की धारा 49 के अनुसार राज्य का दायित्व होगा कि वह देश के प्रत्येक कलात्मक अथवा ऐतिहासिक स्मारक, अभिरुचि के प्रत्येक स्थान अथवा वस्तु को जिसे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया है, नष्ट होने, दूषित होने, स्थानान्तरित होने या बाहर भेजे जाने से बचाएगा। धारा 49 में लिखा है, "(संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित) कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या चीज का यथा-स्थिति लुण्ठन, विनाश, अपनयन, व्ययन अथवा निर्यातों से रक्षा करना राज्य का आभार होगा।"

(घ) सांस्कृतिक विकास का अवसर—राज्य इस बात का पूर्ण प्रबन्ध करेगा कि प्रत्येक नागरिक को अपने सांस्कृतिक विकास के हेतु पूरी सुविधाएं प्राप्त हो सकें और वह अपना सांस्कृतिक विकास कर सके।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा सम्बन्धी तत्व—भारत आरम्भ से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से अनुप्राणित है। यही कारण है कि आधुनिक युग की विभीषिकाओं को दूर करने के लिए भारतीय संविधान में ऐसे नीति-निर्देशक तत्वों का समावेश किया गया है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से सम्बन्धित हों।

(क) अन्य देशों से सह-अस्तित्व का व्यवहार—भारत इस बात का पूर्ण प्रयत्न करेगा कि वह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करते हुए अन्य राष्ट्रों के साथ सहयोग, सद्भावना और मैत्री का सम्बन्ध बनाए रहे।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का प्रबन्ध—भारत इस बात का निरन्तर प्रयत्न करेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा का अनुकूल वातावरण बना रहे। इसके लिए वह राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने, विभिन्न राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि-पत्रों के प्रति आदर उत्पन्न करने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने का प्रयत्न करेगा।

पूरा उपभोग कर सकें । राज्य सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी उनके जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेगा ।

(च) विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों के हेतु मानवोचित दशाओं का निर्माण—राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि वह ऐसे नियम निर्माण करे कि विभिन्न कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों को मानवोचित दशाओं में कार्य करना पड़े । राज्य इस बात का प्रबन्ध करेगा कि स्त्रियों को प्रसूतिकाल में सहायता प्राप्त हो सके ।

(छ) कृषि और पशु-सुधार का प्रयत्न—राज्य, कृषि और पशु-पालन को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से संगठित करने का पूर्ण प्रयत्न करेगा । आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की खेती को प्रोत्साहन देगा और गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू व वाहक पशुओं की नस्ल की रक्षा और सुधार का प्रयत्न करेगा ।

(3) शासन-सुधार-सम्बन्धी तत्व—संविधान में कुछ ऐसे नीति-निर्देशक तत्वों का समावेश किया गया है जिनका सम्बन्ध शासन-स्तर को ऊँचा और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने से है । ये तत्व निम्नलिखित हैं :—

(क) एक ही आचार संहिता—संविधान की धारा 44 में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि देश के समस्त नागरिकों के लिए एक ही आचार संहिता या नागरिक नियम संहिता (Welfare Civil Code) की व्यवस्था की जाय जिससे देश में प्रशासनिक एकरूपता स्थापित हो और अनेक प्रशासनिक शिथिलताओं को दूर किया जा सके । इस धारा में लिखा है, "भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा ।"

(ख) ग्राम-पंचायतों का संगठन—गांवों का सुधार हमारे देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए संविधान की 40वीं धारा में गांवों में ग्राम-पंचायतों के गठन का निर्देश किया गया है । ये ग्राम-पंचायतें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करेंगी और स्थानीय स्वायत्त-शासन की आधारशिला होंगी । धारा 40 में लिखा है, "राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों ।"

(ग) कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की पृथकता—संविधान की 50वीं धारा के अनुसार राज्यों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग-अलग रखने का प्रयत्न करें, जिससे कि न्याय में कार्यपालिका का हस्तक्षेप न हो और कार्यपालिका के कार्यों की वैधानिकता की परीक्षा हो सके ।

(4) सांस्कृतिक विकास-सम्बन्धी तत्व—राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में

सांस्कृतिक विकास के कार्यक्रम को भी स्थान दिया गया है। सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी तत्व निम्नलिखित हैं—

(क) नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था—संविधान में लिखा हुआ है कि उसके लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बालकों की नि शुल्क और अनिवार्य वैसिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

(ख) दलित वर्ग की शिक्षा-व्यवस्था—संविधान की धारा 46 में लिखा है, राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के शिक्षा तथा अर्थ-सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।

(ग) कलात्मक और ऐतिहासिक वस्तुओं को संरक्षण—संविधान की धारा 49 के अनुसार राज्य का दायित्व होगा कि वह देश के प्रत्येक कलात्मक अथवा ऐतिहासिक स्मारक, अभिरुचि के प्रत्येक स्थान अथवा वस्तु को जिसे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया है, नष्ट होने, दूषित होने, स्थानान्तरित होने या बाहर भेजे जाने से बचाएगा। धारा 49 में लिखा है, "(संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित) कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या चीज का यथा-स्थिति लुण्ठन, विनाश, अपनयन, व्ययन अथवा निर्यात से रक्षा करना राज्य का आभार होगा।"

(घ) सांस्कृतिक विकास का अवसर—राज्य इस बात का पूर्ण प्रबन्ध करेगा कि प्रत्येक नागरिक को अपने सांस्कृतिक विकास के हेतु पूरी सुविधाएँ प्राप्त हो सकें और वह अपना सांस्कृतिक विकास कर सके।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा सम्बन्धी तत्व—भारत आरम्भ से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से अनुप्राणित है। यही कारण है कि आधुनिक युग की विभीषिकाओं को दूर करने के लिए भारतीय संविधान में ऐसे नीति निर्देशक तत्वों का समावेश किया गया है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से सम्बन्धित हों।

(क) अन्य देशों से सह-अस्तित्व का व्यवहार—भारत इस बात का पूर्ण प्रयत्न करेगा कि वह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करते हुए अन्य राष्ट्रों के साथ सहयोग, सद्भावना और मैत्री का सम्बन्ध बनाए रहे।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का प्रबन्ध—भारत इस बात का निरन्तर प्रयत्न करेगा कि अन्तराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा का अनुकूल वातावरण बना रहे। इसके लिए वह राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने, विभिन्न राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि-पत्रों के प्रति आदर उत्पन्न करने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने का प्रयत्न करेगा।

नीति निर्देशक तत्वों का महत्व और उपयोगिता

राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये सिद्धान्त थोथे आदर्श हैं। इनका विशेष महत्व नहीं है। इन विद्वानों ने इनको संविधान निर्माताओं का बौद्धिक विकास कहा है। उनका कथन है कि चूंकि इन सिद्धान्तों के बीच कोई कानूनी मान्यता नहीं है और इनका पालन अनिवार्य नहीं है इसलिए इनकी कोई विशेष उपयोगिता भी नहीं है। नीति-निर्देशक तत्वों के पालन के हेतु राज्य को बाध्य नहीं किया जा सकता। राज्य यदि चाहे तो इनका पालन करे और चाहे तो न करे। प्रो० के० टी० शाह ने इन तत्वों की आलोचना करते हुये लिखा है कि ये तत्व उस चैक की भाँति हैं जिसे कि राज्य रूपी बैंक तभी भुनाता है जबकि उसके पास पर्याप्त धन होता है।

"....They are like a cheque on a bank payable when able—only if the resources of the bank permit."

—Prof. K. T. Shah.

एक अन्य विद्वान ने इन तत्वों के विषय में लिखा है, "राज्य के ये नीति-निर्देशक तत्व महाजन की वह पूंजी हैं जिसे महाजन अपनी इच्छानुसार ही खर्च करता है, चाहे दुनिया वाले उसे कितनी ही प्रतारणा क्यों न दें।" राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के आलोचक इस प्रकार की बातें इसलिए ही करते हैं कि नीति-निर्देशक तत्वों के पीछे कोई कानूनी मान्यता नहीं है। कानूनी सत्ता के अभाव में ही उनकी उपादेयता में कमी आ जाती है। एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है, "उनकी यदि कोई उपादेयता है तो यह है कि समाजवादी विचारधारा के लोग उनको देख-देखकर अपने आंसू पोंछ सकते हैं और सन्तोष प्रकट कर सकते हैं।"

यदि किंचित गहनता से विचार किया जाये तो यह प्रतीत होगा कि विद्वानों का वह वर्ग जो उनको कोरा थोथा और अनुपयोगी बताता है, भ्रम में है। यह ठीक है कि राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों को कानूनी मान्यता नहीं प्राप्त हैं परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि देश में चाहे कोई भी राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो, इन नैतिक आदर्शों को मानने के लिए बाध्य होगा; क्योंकि यदि वह इन तत्वों का पालन नहीं करेगा तो चुनाव में उसे मतदाताओं के सम्मुख उत्तर देना होगा।

यदि देश की जनता जागरूक है तो कोई भी शक्ति नहीं है जो इन तत्वों को अवहेलना करने का साहस कर सके। यही कारण है कि अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर ने बड़े जोरदार शब्दों में लिखा है, "कोई भी मन्त्रिमण्डल जो लोगों के प्रति उत्तरदायी हो इन सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं कर सकता।" सिद्धांतों को थोथे आदर्श मानकर उनकी आलोचना करना उचित नहीं है। ये सिद्धांत सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना के

मार्ग-प्रदर्शक हैं। राजनीतिक अस्थिरता में भी इन सिद्धान्तों से बल मिलेगा और प्रत्येक सरकार को राष्ट्र-कल्याण की दिशा में गति मिलेगी। डा० अम्बेदकर ने इन सिद्धान्तों की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए कहा था, "हमारे विचार से निर्देशक सिद्धान्तों का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि वे इस तथ्य को प्रस्थापित करते हैं कि हमारा लक्ष्य आर्थिक प्रजातन्त्रवाद है। हम नहीं चाहते कि संविधान में दी गई विभिन्न व्यवस्थाओं के माध्यम से केवल संसदीय पद्धति के शासन की स्थापना हो जाये और हमारी आर्थिक दृष्टि से एवं सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई निर्देशन रहे। अतएव हमने जान-बूझकर अपने संविधान में नीति निर्देशन तत्वों का समावेश किया।" डा० अम्बेदकर के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि नीति-निर्देशक तत्वों की चाहे जितनी आलोचना क्यों न की जाये उनके महत्व को कम नहीं किया जा सकता। उनकी उपयोगिता निम्नलिखित कारणों से है—

(1) नीति निर्देशक तत्व वह मंजिल हैं जहाँ तक पहुँचना हमारा नैतिक कर्तव्य है। ये हमें अपने लक्ष्य की याद दिलाते हैं।

(2) ये तत्व हमें कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना में योगदान देंगे।

(3) नीति निर्देशन तत्व राजनीतिक स्थिरता और प्रशासकीय एकरूपता में सहायता प्रदान करेंगे।

(4) इन तत्वों के कारण सजग और प्रबुद्ध लोकमत सरकार को अपने लक्ष्य से विचलित न होने का निर्देश देता रहेगा।

(5) इन तत्वों के द्वारा राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना होगी और समाजवादी आधार पर हमारे समाज का निर्माण होगा.

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी और अनूठे हैं। भारत के भूतपूर्व महान्यायवादी श्री तलवार ने कहा था कि यद्यपि इन सिद्धान्तों का कोई कानूनी महत्व नहीं है, परन्तु ये न्यायालय के हित में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। उन्हीं के शब्दों में—

"These fundamental axioms of state policy, though of no legal effect, have served as useful beacon lights to courts."

—Shri Talwar.

इस नीति-निर्देशक तत्वों में राष्ट्र के चतुर्मुखी विकास के तत्वों को रखा गया गया है और यदि हमारा जनमत प्रबुद्ध और सजग रहेगा तो ये नीति निर्देशक तत्व अवश्य ही वरदान सिद्ध होंगे। यही कारण है कि डा० अम्बेदकर ने कहा था—

"They are a novel feature in a constitution framed for parliamentary democracy."

—Dr. Ambedkar.

एम० वी० पाइली ने नीति-निर्देशक तत्वों के बारे में लिखा है, "सामूहिक रूप से ये सिद्धांत लोकतन्त्रात्मक भारत का शिलान्यास करते हैं, ये भारतीय जनता के आदर्शों एवं आकांक्षाओं के वे भाग हैं जिन्हें हमें सामाजिक विधि के भीतर प्राप्त करना चाहिये। जब तक भारत सरकार इनको कार्यरूप में परिणत न कर पायेगी तब तक भारत एक सच्चा कल्याणकारी राज्य न कहलायेगा।

नीति-निर्देशक तत्वों का वास्तविक महत्व इस बात में है कि ये नागरिक के प्रति राज्य के दायित्व के द्योतक हैं। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि ये दायित्व महत्व-हीन हैं और इनकी पूर्ति होने पर भारत की सामाजिक व्यवस्था में कोई अन्तर ही नहीं आयेगा। वस्तुतः ये क्रांतिकारी गुण से ओतप्रोत हैं। यही कारण है कि निर्देशन सिद्धांतों को संविधान का अभिन्न अंग बनाया गया है। "राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों" द्वारा भारतीय संविधान व्यक्ति स्वातन्त्र्य की घातक, श्रमजीवियों की तानाशाही (Dictatorship of Proletariate) तथा जन साधारण की आर्थिक सुरक्षा में बाधक होने वाले पूँजीवादी अल्पतन्त्र (Capitalist oligarchy) दोनों चरम सीमाओं का सन्तुलन स्थापित करता है।"

———

अध्याय 4

भारत संघ का राष्ट्रपति
(PRESIDENT OF INDIAN UNION)

निर्वाचन, वेतन एवं कार्यकाल
(Election, Emoluments & Tenure)

प्रश्न—भारत के राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार होता है, उसके वेतन-भत्ते एवं कार्यकाल आदि के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(How is the President of India elected ? What do you know about his emoluments and tenure ?)

भूमिका (Introduction)

भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति का पद अत्यन्त गौरवपूर्ण है। संविधान के अनुच्छेद 53 (1) में लिखा है, "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा।" संवैधानिक दृष्टि से उसे अत्यन्त व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वह मन्त्रि-परिषद् के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संसदात्मक पद्धति को अपनाया है। परन्तु इसके साथ ही राष्ट्रपति को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यह ठीक है कि परम्परा के विकास के फलस्वरूप भारत का राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद की सलाह के अनुसार ही कार्य करता है, परन्तु संविधान के किसी भी अनुच्छेद में यह बात नहीं कही गई है। चूँकि राष्ट्रपति का पद अत्यन्त गौरवशाली है अतएव देश का कोई भी व्यक्ति इस पद को प्राप्त करके अपने को बहुत भाग्यशाली समझेगा।

राष्ट्रपति पद के लिए योग्यताएँ—राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए—

(1) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।

(2) उसकी अवस्था 35 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

(3) उसमें लोकसभा का सदस्य होने की योग्यता होनी चाहिए।

(4) उसे संघ सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों के अन्तर्गत किसी लाभ या वैतनिक पद पर नहीं होना चाहिये। राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल, राजप्रमुख, उपराज्य प्रमुख, यूनियन अथवा राज्य के मंत्री आदि के पद लाभ के पद नहीं माने जाते। अतएव इन पदों पर काम करने वाला कोई व्यक्ति राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार हो सकता है।

निर्वाचन (Election)

भारत संघ के राष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। उसके निर्वाचन की पद्धति अत्यन्त जटिल है। राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए एक निर्वाचन मण्डल की स्थापना की जाती है, जिसमें दो प्रकार के सदस्य होते हैं—(क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, (ख) राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य। संसद और विधान सभाओं के नामजद सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। राज्यों की विधान परिषदों के सदस्यों को भी चुनाव के अधिकार से वंचित रखा गया है। संसद के निर्वाचित सदस्यों की जनसंख्या एवं राज्य की विधान सभाओं के सदस्यों की मत संख्या समान रखी जाती है।

(क) राज्यों के विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य की मत संख्या—किसी राज्य की विधान सभा के एक निर्वाचित सदस्य की मत संख्या कितनी है इसका निर्णय भी एक विशिष्ट प्रणाली से किया जाता है। राज्य की कुल जनसंख्या को राज्य की विधान सभा के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग दिया जाता है और जो भजनफल आता है उसे एक हजार से भाग दिया जाता है। एक हजार से भाग देने पर जो भजनफल आता है, राज्य की विधान सभा का प्रत्येक सदस्य उतने ही मत देने का अधिकारी होता है। संक्षेप में इस बात को इस प्रकार इंगित किया जा सकता है—

$$\frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधान-सभा के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या}} \div 1000$$

शेषफल यदि 500 से अधिक होता है तो एक मत और जोड़ दिया जाता है परन्तु यदि 500 से कम होता है तो उसे वैसा ही छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण के लिए यदि किसी राज्य की जनसंख्या 2,08,49,840 है और उसकी विधान सभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या 218 है तो प्रत्येक सदस्य को $\frac{2,08,49,840}{218} \div 1000 = 100$ मत देने का अधिकार होगा (शेष 239 आता है, जो 500 से कम है; अतः उसे छोड़ दिया जायगा)।

(ख) संसद के निर्वाचित सदस्यों की मत संख्या—संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की मत संख्या निर्धारित करने के लिए सब राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा दिये गए समस्त मतों का जोड़ दिया जाता है और इस योग को संसद के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग दिया जाता है। जो भजनफल आता है उतने ही मत प्रत्येक निर्वाचित संसद सदस्य को देने का अधिकार होता है। मान लीजिए कि समस्त देश की विधान सभाओं के सदस्यों की मत संख्या 3,25 000 और संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 700 है तो प्रत्येक सदस्य को 3,25,000 – 700 = 464 मत देने का अधिकार होगा।

मतदान पद्धति एवं मतगणना—राष्ट्रपति का चुनाव अनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Proportional representation by single transferable vote) द्वारा होता है। एकल संक्रमणीय मत द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व के माने यह होते हैं कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रत्येक सदस्य को अपने समस्त मतो एक ही उम्मीदवार को देने होंगे। अर्थात् यदि किसी को 100 मत देने का अधिकार है तो वह अपने सब मत एक ही उम्मीदवार को दे सकेगा। वह ऐसा नहीं कर सकेगा कि 50 मत एक उम्मीदवार को दे दे, 40 दूसरे को और 10 तीसरे को। प्रत्येक सदस्य मतदान-पत्र पर लिखे हुए उम्मीदवार के नाम के सामने अपनी (Preferences) लिख सकता है, अर्थात् जिस उम्मीदवार को वह सबसे अधिक चाहता है उसके सामने एक और फिर क्रम से अपनी पसन्द के अनुसार दो, तीन आदि लिख सकता है। जिस उम्मीदवार को 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त होते हैं वह निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि प्रथम गणना में ही किसी उम्मीदवार को समस्त डाले गए मतों में से पहली पसन्द (First Preferences) के 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त हो जाते हैं तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि किसी को भी पहली पसन्द के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं मिलते तो सूची के अंतिम उम्मीदवार के नाम को अलग कर दिया जाता है और उसकी दूसरी पसन्दगी के मिले हुए मतों को शेष उम्मीदवारों में बाँट दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि किसी एक उम्मीदवार को कुल मतों के 50 प्रतिशत से अधिक मत नहीं प्राप्त होते। जैसे 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही मत-गणना बन्द कर दी जाती है और परिणाम घोषित कर दिया जाता है।

निर्वाचन प्रणाली की समालोचना—राष्ट्रपति के चुनाव के हेतु अनुपातिक पद्धति का अपनाया जाना कुछ विद्वानों की दृष्टि में उचित नहीं है, परन्तु इस पद्धति के अपनाये जाने के अनेक कारण हैं। पहला कारण यह है कि इस पद्धति के

फलस्वरूप वही व्यक्ति निर्वाचित हो सकेगा जिसे कुल मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त हो। यदि अनुपातिक पद्धति को न अपनाकर एकल बहुमत पद्धति (Single majority System) को अपनाया जाता तो साधारण बहुमत प्राप्त व्यक्ति भी राष्ट्रपति हो सकता था। अनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति को अपनाने का एक अन्य कारण यह है कि इसके फलस्वरूप छोटे दलों एवं प्रादेशिक दलों को भी चुनाव में अपना असर डालने का अवसर प्राप्त होता है। यदि निर्वाचक मण्डल में किसी एक दल का बहुमत नहीं होता तो उसे अन्य दलों का सहयोग प्राप्त करना होता है। कुछ विद्वानों ने राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की भी आलोचना की है। उनका कहना है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन अमेरिका की भाँति सम्पूर्ण निर्वाचक मण्डल द्वारा प्रत्यक्ष-रूप से होना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि चूँकि भारत में मन्त्रिमण्डलात्मक शासन-व्यवस्था को अपनाया गया है और राष्ट्रपति केवल संवैधानिक अध्यक्ष होता है इसलिए अमेरिका के राष्ट्रपति के निर्वाचन को भाँति सम्पूर्ण निर्वाचक मण्डल द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव कराना आवश्यक नहीं समझा गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने वड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "यदि हम राष्ट्रपति को कोई भी वास्तविक शक्तियाँ न देते तो वह कुछ दुविधापूर्ण हो जाता।"

"If we had the President-election on adult franchise and did not give him any real power, it might become a little anamolus."

—Pt. JawaharLal Nehru.

वास्तव में राष्ट्रप्रति के चुनाव की प्रणाली की आलोचना करना उचित नहीं है। यह प्रणाली भारत जैसे देश के लिए पूर्णतया उचित है। यह ठीक है कि वयस्क मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं होता, परन्तु राष्ट्रपति के निर्वाचन के आधार को यथासम्भव लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया गया है। इस चुनाव में केवल संसद के सदस्य भी भाग नहीं लेते बल्कि राज्य की विधान सभाओं में सदस्यों को भी भाग लेने का अधिकार होता है। सन् 1967 ई0 के मई के महीनों के डाक्टर जाकिर हुसेन और श्री सुब्बाराव के मध्य राष्ट्रपति पद के लिए जो संघर्ष हुआ उससे यह स्पष्ट है कि यह आक्षेप करना कि संसद में जिस दल का बहुमत होगा उसी दल का राष्ट्रपति चुन लिया जायगा उचित नहीं है। डाक्टर जाकिर हुसेन को 4,71,244 मत प्राप्त हुए और श्री सुब्बाराव को 3,63,971 मत प्राप्त हुए। यह मत इस बात के स्पष्ट परिचायक हैं कि डाक्टर जाकिर हुसेन को यदि संसद के बहुमत दल के सदस्यों के ही मत प्राप्त होते तो वह कदापि विजयी नहीं हो सकते थे। राज्य को विधान सभाओं के मतों पर भी बहुत हद तक निर्भर रहना पड़ा।

शपथ, वेतन एवं भत्ते (Oath & Emoluments)

सविधान की धारा 60 क अनुसार, "प्रत्यक राष्ट्रपति और प्रत्येक व्यक्ति जो राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा है अथवा उसके कृत्या का निर्वहन करता है अपने पद ग्रहण करने से पूर्व भारत क मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसकी अनुपस्थिति में उच्च तम न्यायालय के प्राप्त अग्रनम न्यायाधीश के समक्ष निम्न रूप में शपथ या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा, अर्थात—

ईश्वर की शपथ लेता हूँ
मैं अमुक कि मैं श्रद्धा-
सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञापन करता हूँ

पूर्वक भारत के राष्ट्रपति-पद का कार्यपालन (अथवा राष्ट्रपति के कृत्या का निर्वहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से सविधान और विधि का परिरक्षण, सरक्षण और प्रतिरक्षण करूँगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।"

सविधान के अनुसार राष्ट्रपति का वेतन 10,0ᴗ0 रुपये मासिक निश्चित किया गया है। उसक कार्यकाल में उमक वेतन को घटाया नहीं जा सकता। वेतन के साथ ही उस राज्य की ओर से रहन के लिए नि शुल्क निवास-स्थान दिया जाता है। वेतन के अतिरिक्त राष्ट्रपति का भत्त, उपलब्धियाँ और विशेषाधिकार आदि भी प्राप्त होते हैं। राष्ट्रपति की यात्रा, अतिथि-सत्कार, अधीन कर्मचारियो व अन्य कार्यों क लिए भारत सरकार लगभग 15 लाख प्रतिवर्ष व्यय करती है।

कार्यकाल (Tenure)

राष्ट्रपति काय-काल 5 वर्ष निश्चित किया गया है, परन्तु इस अवधि के समाप्त होने पर भी वह उस समय तक अपन पद पर आसीन रहेगा जब तक कि उसका उत्तराधिकारी निर्वाचित न हो जाय। 5 वर्ष अवधि के बाद काई भी व्यक्ति दुबारा 5 वर्ष के लिए निर्वाचित हो सकता है। निम्नलिखित दशाओ में 5 वर्ष से पूर्व कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के पद स वचित हो सकता है—

(1) अकाल मृत्यु के फलस्वरूप।

(2) त्याग-पत्र देन पर—राष्ट्रपति त्याग-पत्र देकर अपने पद स हट सकता है। वह अपना त्याग-पत्र उपराष्ट्रपति का सम्बोधित करगा और उपराष्ट्रपति उसकी सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को देगा।

(3) महाभियोग लगने पर—भारत क राष्ट्रपति का सविधान के विरुद्ध आचरण करने, उनका उल्लंघन करन अथवा राष्ट्रविरोधी कार्यों में रुचि लेने पर महाभियोग लगाकर हटाया जा सकता है। महाभियोग का प्रस्ताव ससद के किसी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु उस पारित होन क लिए सदन के सदस्यो का कम से कम दो तिहाई का बहुमत आवश्यक है। महाभियोग का प्रस्ताव रखने क

कम से कम 14 दिन पहले एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षरों से युक्त एक लिखित सूचना देनी होती है।

जब एक सदन के दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति पर दोषारोपण कर दिया जाता है तो दूसरा सदन उस दोषारोपण की जाँच-पड़ताल कर करता है। इस जाँच के समय राष्ट्रपति स्वयं उपस्थित हो सकता है अथवा अपने प्रतिनिधि को भेज सकता है। जांच पूरी होने के पश्चात् यदि दूसरा सदन भी कुछ सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से महाभियोग का प्रस्ताव पारित कर देता है तो महाभियोग प्रमाणित माना जाता है और राष्ट्रपति को अपने पद से हटना होता है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of the President)

प्रश्न—भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों और कार्यों की विवेचना कीजिये और उस पर महाभियोग लगाने की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

(Discuss the powers and functions of the President of India and describe the method of his impeachment.)

राष्ट्रपति के सङ्कटकालीन अधिकारों की चर्चा संक्षेप में कीजिए और बतलाइये कि क्या भारत का राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है?

(Describe in brief the emergency powers of the President and write if the Indian President can be a dictator.)

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं। भारत संघ की सम्पूर्ण शक्ति उसी में निहित होती है। राष्ट्रपति के इन अधिकारों को मुख्यतः दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—साधारण स्थिति के अधिकार और संकटकालीन अधिकार।

साधारण स्थिति के अधिकारों का अध्ययन पांच विभागों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) प्रशासकीय या शासन-सम्बन्धी अधिकार।

(2) विधायनी अथवा कानून-निर्माण-सम्बन्धी अधिकार।

(3) वित्तीय अथवा अर्थ-सम्बन्धी अधिकार।

(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार।

(5) विशेषाधिकार।

(1) प्रशासकीय या शासन-सम्बन्धी अधिकार (Administrative Powers)

भारतीय संघ की सरकार का शासन-सम्बन्धी, प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम

से होता है। भारतीय सविधान में अनुच्छेद 53 में लिखा है—"सघ की प्रशासकीय शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होगी और वह उन शक्तियों का उपभोग या तो स्वय अथवा अन्य अफसरो के द्वारा सविधान के अनुसार करेगा। राष्ट्रपति के प्रशासकीय अधिकारो को कई कोटियो में विभाजित किया जा सकता है। इनकी यहाँ हम सक्षेप में चर्चा कर रहे हैं—

(क) पदाधिकारियो की नियुक्ति का अधिकार—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि राष्ट्रपति भारतीय सघ की कार्यपालिका का प्रधान है और इस दृष्टि से उसे अनेक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। वह ससद के बहुमत दल के नेता की नियुक्ति प्रधान मन्त्री के पद पर करता है तथा उसके परामर्श से अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति करता है। राज्यसभा के 12 सदस्यो को राष्ट्रपति ही मनोनीत करता है। राज्यो के राज्यपाल भी उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और उनके प्रसादकाल तक ही अपने पद पर आसीन रह सकते हैं। सर्वोच्च एव उच्च न्यायालयो के न्यायाधीश, महान्यायवादी, महालेखा परीक्षक, केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्यो के मुख्य आयुक्त, लोक-सेवा-आयोग का अध्यक्ष, जल, थल एव वायु सेना के अधिकारी और विदेशो को भेजे जाने वाले दूतो की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करता है।

(ख) राज्यो के नीति-निर्देशन का अधिकार—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि वह राज्यो के राज्यपालो एव मुख्य आयुक्तो आदि की नियुक्ति करता है, एवं इनके माध्यम से राज्यो की नीति का निर्देशन करता है तथा राज्यो पर अपना नियन्त्रण रखता है। यदि राष्ट्रपति यह समझता है कि किसी प्रदेश में शासन-तन्त्र असफल हो रहा है तो उस प्रदेश के प्रशासन के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लेता है।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अधिकार—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना भी राष्ट्रपति का काय है। वह विदेशो से सन्धियाँ एव राजनीतिक, सास्कृतिक तथा व्यापारिक समझौते करता है। विदेशो से आय हुए राजदूतो के प्रमाण-पत्रो को जाँच भी राष्ट्रपति ही करता है तथा विदेशो में अपने देश के राजदूत भी नियुक्त करता है।

(घ) सैनिक अधिकार—राष्ट्रपति ही सेना का सर्वोच्च अधिकारी है। वह जल, थल एव वायु सेना का सर्वोच्च अधिकारी है और इस दृष्टि से वह अपने अधिकारो का पूर्ण प्रयोग कर सकता है।

(ङ) अन्य अधिकार—उपर्यु ... के अतिरिक्त राष्ट्रपति के अन्य प्रशासकीय अधिकार भी हैं। वह ... नियम निर्धारित कर सकता है और सघ शासन में पूर्ण रूप से भाग ले ...

कम से कम 14 दिन पहले एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षरों से युक्त एक लिखित सूचना देनी होती है।

जब एक सदन के दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति पर दोषारोपण कर दिया जाता है तो दूसरा सदन उस दोषारोपण की जाँच-पड़ताल कर करता है। इस जाँच के समय राष्ट्रपति स्वयं उपस्थित हो सकता है अथवा अपने प्रतिनिधि को भेज सकता है। जांच पूरी होने के पश्चात् यदि दूसरा सदन भी कुछ सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से महाभियोग का प्रस्ताव पारित कर देता है तो महाभियोग प्रमाणित माना जाता है और राष्ट्रपति को अपने पद से हटना होता है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ और

(Powers and Functions of the President)

प्रश्न—भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों और कार्यों की विवेचना कीजिये और उस पर महाभियोग लगाने की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

(Discuss the powers and functions of the President of India and describe the method of his impeachment.)

राष्ट्रपति के सङ्कटकालीन अधिकारों की चर्चा संक्षेप में कीजिए और बतलाइये कि क्या भारत का राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है?

(Describe in brief the emergency powers of the President and write if the Indian President can be a dictator.)

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं। भारत संघ की सम्पूर्ण शक्ति उसी में निहित होती है। राष्ट्रपति के इन अधिकारों को मुख्यतः दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—साधारण स्थिति के अधिकार और संकटकालीन अधिकार।

साधारण स्थिति के अधिकारों का अध्ययन पांच विभागों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) प्रशासकीय या शासन-सम्बन्धी अधिकार।
(2) विधायनी अथवा कानून-निर्माण-सम्बन्धी अधिकार।
(3) वित्तीय अथवा अर्थ-सम्बन्धी अधिकार।
(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार।
(5) विशेषाधिकार।

(1) प्रशासकीय या शासन-सम्बन्धी अधिकार (Administrative Powers)

भारतीय संघ की सरकार का शासन-सम्बन्धी, प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम

से होता है । भारतीय सविधान के अनुच्छेद 53 में लिखा है—"सघ की प्रशासकीय शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होगी और वह उन शक्तियो का उपभोग या तो स्वय अथवा अन्य अफसरो के द्वारा सविधान के अनुसार करेगा । राष्ट्रपति के प्रशासकीय अधिकारो को कई कोटियो में विभाजित किया जा सकता है । इनकी यहाँ हम सक्षेप में चर्चा कर रहे हैं—

(क) पदाधिकारियो की नियुक्ति का अधिकार—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि राष्ट्रपति भारतीय सघ की कार्यपालिका का प्रधान है और इस दृष्टि से उसे अनेक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। वह ससद में बहुमत दल के नेता की नियुक्ति प्रधान मन्त्री के पद पर करता है तथा उसके परामर्श से अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति करता है । राज्यसभा के 12 सदस्यो को राष्ट्रपति ही मनोनीत करता है। राज्यो के राज्यपाल भी उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और उनके प्रासादकाल तक ही अपने पद पर आसीन रह सकते हैं। सर्वोच्च एव उच्च न्यायालयो के न्यायाधीश, महान्यायवादी, महालेखा परीक्षक, केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्यो में मुख्य आयुक्त, लोक-सेवा-आयोग का अध्यक्ष, जल, थल एव वायु सेना के अधिकारी और विदेशो को भेजे जाने वाले दूतो की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करता है ।

(ख) राज्यो के नीति-निर्देशन का अधिकार—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि वह राज्यो के राज्यपालो एव मुख्य आयुक्तो आदि की नियुक्ति करता है, एव इनके माध्यम से राज्यो की नीति का निर्देशन करता है तथा राज्यो पर अपना नियन्त्रण रखता है । यदि राष्ट्रपति यह समझता है कि किसी प्रदेश में शासन-तन्त्र असफल हो रहा है तो उस प्रदेश के प्रशासन के समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लेता है ।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अधिकार—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करना भी राष्ट्रपति का काय है । वह विदेशो से सन्धियाँ एव राजनीतिक, सास्कृतिक तथा व्यापारिक समझौते करता है । विदेशो से आये हुए राजदूतो के प्रमाण-पत्रो की जाँच भी राष्ट्रपति ही करता है तथा विदेशो में अपने देश के राजदूत भी नियुक्त करता है ।

(घ) सैनिक अधिकार—राष्ट्रपति ही सेना का सर्वोच्च अधिकारी है । वह जल, थल एव वायु सेना का सर्वोच्च अधिकारी है और इस दृष्टि से वह अपने अधिकारो का पूर्ण प्रयोग कर सकता है ।

(ङ) अन्य अधिकार—उपर्युक्त अधिकारो के अतिरिक्त राष्ट्रपति के अन्य प्रशासकीय अधिकार भी हैं । वह मन्त्रियो के लिए नियम निर्धारित कर सकता है और सघ शासन में पूर्ण रूप से भाग ले सकता है ।

(2) विधायनी या कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार (Legislative Powers)

राष्ट्रपति को अनेक विधायनी शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। इन शक्तियों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(क) संसद के अधिवेशन बुलाने एवं संदेश भेजने का अधिकार—संविधान द्वारा संसद के दोनों भवनों का अधिवेशन बुलाने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। वह अधिवेशन बुला भी सकता है और उसे समाप्त भी कर सकता है, परन्तु राज्यसभा के विघटन का अधिकारी वह नहीं है।

राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को अलग-अलग अथवा एक साथ सम्बोधित कर सकता है अथवा उन्हें सन्देश भेज सकता है।

(ख) राज्यों के विधानमण्डलों पर अधिकार—राष्ट्रपति का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों पर भी होता है। राज्यों के विधानमण्डलों के किसी कार्य पर प्रतिबन्ध लगाने तथा तत्सम्बन्धी कानून बनाने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। अनेक प्रकार के ऐसे विधेयक होते हैं जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना लागू नहीं किये जा सकते।

(ग) विधेयक पारित करने अथवा न करने का अधिकार—संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक उस समय तक कानून नहीं बन सकता है जब तक कि राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति न दे दे। यह राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करे अथवा न करे। धन विधेयक के अतिरिक्त वह किसी भी विधेयक को संसद को पुनः विचार के लिए वापस कर सकता है। यह संसद की स्वेच्छा पर होगा कि वह राष्ट्रपति द्वारा की गई सिफारशों को माने अथवा न माने। संसद राष्ट्रपति की सिफारशों पर विचार करके राष्ट्रपति को विधेयक पुनः भेजती है और तब राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी ही होती है।

सभी धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारशों के पश्चात् ही संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं।

(घ) अध्यादेश जारी करने का अधिकार—आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति अध्यादेश भी जारी कर सकता है। यह कार्य वह तभी करता है जब संसद के किसी भवन का अधिवेशन न हो रहा हो। राष्ट्रपति के द्वारा जारी किये गए अध्यादेशों की शक्ति तथा प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि अन्य अधिनियमों का होता है। संसद का अधिवेशन होने पर इन अध्यादेशों का अनुमोदन करवाना होता है और संसद की बैठक प्रारम्भ होने की तिथि से 6 सप्ताह तक यह अध्यादेश लागू रह सकता है। संसद के अधिवेशन 6 सप्ताह बाद वह स्वयंमेव समाप्त हो जाता है।

राष्ट्रपति किसी भी अध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है। अनुसूचित क्षेत्रों में शान्ति और सुशासन के लिए नियम बनाने का अधिकार भी राष्ट्रपति को प्राप्त है।

(3) वित्तीय अथवा अर्थ-सम्बन्धी अधिकार (Financial Powers)

भारत के राष्ट्रपति को वित्तीय अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। इन अधिकारों का अध्ययन निम्नलिखित श्रेणियों में किया जा सकता है—

(क) बजट उपस्थित कराने का अधिकार—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राज्य को आय-व्यय का वार्षिक चिट्ठा अर्थात् बजट राष्ट्रपति ही संसद के सम्मुख प्रस्तुत करवाता है। बजट में सरकार की वर्ष भर की आय तथा व्यय के अनुमानित आँकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं।

(ख) कर एवं अनुदान सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति नये करों को लगाने अथवा प्रचलित करों को समाप्त करने की सिफारिश कर सकता है। विशिष्ट कार्यों को करने के हेतु राष्ट्रपति अनुदान की माँग भी कर सकता है। राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी वित्त विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(ग) आय वितरण की व्यवस्था—देश की समस्त आय को संघ सरकार एवं राज्यों की सरकारों के बीच भली भाँति वितरित करने का अधिकार भी राष्ट्रपति को ही है। राष्ट्रपति ही विभिन्न राज्यों की राशि का निश्चय करता है।

(ङ) वित्त आयोग की नियुक्ति का अधिकार—भारतीय संविधान के अनुसार वित्त से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के लिए राष्ट्रपति एक वित्त आयोग की नियुक्ति कर सकता है। यह आयोग वित्त-सम्बन्धी समस्त समस्याओं पर विचार करके उनका समाधान प्रस्तुत करता है।

(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार (Judicial Powers)

राष्ट्रपति को न्याय सम्बन्धी भी कुछ अधिकार प्रदान किये गए हैं। राष्ट्रपति ही सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय व न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है एवं संसद के प्रस्ताव पर उन्हें पदच्युत भी कर सकता है। राष्ट्रपति को किसी अपराधी को क्षमा-दान करने का अधिकार है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति को भी वह क्षमा कर सकता है। किसी भी अपराधी के दण्ड को क्षमा करने, कम करने, स्थगित करने तथा अन्य किसी दण्ड में बदल देने का अधिकार भी राष्ट्रपति को है। परन्तु यह कार्य वह तभी कर सकता है जब दण्ड सैनिक न्यायालय द्वारा न दिया गया हो और संघीय कानून का उल्लंघन करने के लिए दण्ड मिला हो।

(2) विधायनी या कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार (Legislative Powers)

राष्ट्रपति को अनेक विधायनी शक्तियां भी प्राप्त हैं। इन शक्तियों की चर्चा यहां संक्षेप में की जा रही है—

(क) संसद के अधिवेशन बुलाने एवं संदेश भेजने का अधिकार—संविधान द्वारा संसद के दोनों भवनों का अधिवेशन बुलाने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। वह अधिवेशन बुला भी सकता है और उसे समाप्त भी कर सकता है, परन्तु राज्यसभा के विघटन का अधिकारी वह नहीं है।

राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को अलग-अलग अथवा एक साथ सम्बोधित कर सकता है अथवा उन्हें सन्देश भेज सकता है।

(ख) राज्यों के विधानमण्डलों पर अधिकार—राष्ट्रपति का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों पर भी होता है। राज्यों के विधानमण्डलों के किसी कार्य पर प्रतिबन्ध लगाने तथा तत्सम्बन्धी कानून बनाने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। अनेक प्रकार के ऐसे विधेयक होते हैं जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना लागू नहीं किये जा सकते।

(ग) विधेयक पारित करने अथवा न करने का अधिकार—संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक उस समय तक कानून नहीं बन सकता है जब तक कि राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति न दे दे। यह राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करे अथवा न करे। धन विधेयक के अतिरिक्त वह किसी भी विधेयक को संसद को पुनः विचार के लिए वापस कर सकता है। यह संसद की स्वेच्छा पर होगा कि वह राष्ट्रपति द्वारा की गई सिफारिशों को माने अथवा न माने। संसद राष्ट्रपति की सिफारिशों पर विचार करके राष्ट्रपति को विधेयक पुनः भेजती है और तब राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी ही होती है।

सभी धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिशों के पश्चात् ही संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं।

(घ) अध्यादेश जारी करने का अधिकार—आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति अध्यादेश भी जारी कर सकता है। यह कार्य वह तभी करता है जब संसद के किसी भवन का अधिवेशन न हो रहा हो। राष्ट्रपति के द्वारा जारी किये गए अध्यादेशों की शक्ति तथा प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि अन्य अधिनियमों का होता है। संसद का अधिवेशन होने पर इन अध्यादेशों का अनुमोदन करवाना होता है और संसद की बैठक प्रारम्भ होने की तिथि से 6 सप्ताह तक यह अध्यादेश लागू रह सकता है। संसद के अधिवेशन 6 सप्ताह बाद वह स्वयंमेव समाप्त हो जाता है।

राष्ट्रपति किसी भी अध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है। अनुसूचित क्षेत्रों में शान्ति और सुशासन के लिए नियम बनाने का अधिकार भी राष्ट्रपति को प्राप्त है।

(3) वित्तीय अथवा अर्थ-सम्बन्धी अधिकार (Financial Powers)

भारत के राष्ट्रपति को वित्तीय अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। इन अधिकारों का अध्ययन निम्नलिखित श्रेणियों में किया जा सकता है—

(क) बजट उपस्थित कराने का अधिकार—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राज्य की आय-व्यय का वार्षिक चिट्ठा अर्थात् बजट राष्ट्रपति ही संसद के सम्मुख प्रस्तुत करवाता है। बजट में सरकार की वर्ष भर की आय तथा व्यय के अनुमानित आँकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं।

(ख) कर एवं अनुदान सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति नये करों को लगाने अथवा प्रचलित करों को समाप्त करने की सिफारिश कर सकता है। विशिष्ट कार्यों को करने के हेतु राष्ट्रपति अनुदान की माँग भी कर सकता है। राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी वित्त विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(ग) आय वितरण की व्यवस्था—देश की समस्त आय को संघ सरकार एवं राज्यों की सरकारों के बीच भली भाँति वितरित करने का अधिकार भी राष्ट्रपति का ही है। राष्ट्रपति ही विभिन्न राज्यों की राशि का निश्चय करता है।

(उ) वित्त आयोग की नियुक्ति का अधिकार—भारतीय संविधान के अनुसार वित्त से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के लिए राष्ट्रपति एक वित्त आयोग की नियुक्ति कर सकता है। यह आयोग वित्त-सम्बन्धी समस्त समस्याओं पर विचार करके उनका समाधान प्रस्तुत करता है।

(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार (Judicial Powers)

राष्ट्रपति को न्याय सम्बन्धी भी कुछ अधिकार प्रदान किये गए हैं। राष्ट्रपति ही सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है एवं संसद के प्रस्ताव पर उन्हें पदच्युत भी कर सकता है। राष्ट्रपति को किसी अपराधी को क्षमा दान करने का अधिकार है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति को भी वह क्षमा कर सकता है। किसी भी अपराधी के दण्ड को क्षमा करने, कम करने स्थगित करने तथा अन्य किसी दण्ड में बदल देने का अधिकार भी राष्ट्रपति को है। परन्तु यह कार्य वह तभी कर सकता है जब दण्ड सैनिक न्यायालय द्वारा न दिया गया हो और संघीय कानून का उल्लंघन करने के लिए दण्ड मिला हो।

(5) विशेषाधिकार (Previleges)

भारतीय संविधान ने राष्ट्रपति को कुछ विशेषाधिकार भी प्रदान किए हैं। वह अपने शासन-सम्बन्धी और राजकीय कार्यों के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी न होगा। न तो उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है और न उसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारन्ट जारी किया जा सकता है। उसे दो माह पूर्व सूचना दिए बिना उसके विरुद्ध कोई दीवानी कार्यवाही भी नहीं की जा सकती है।

(6) सङ्कटकालीन अधिकार (Emergency Powers)

संकटकाल में भारतीय संविधान एकात्मक रूप धारण कर लेता है यही कारण है कि भारत के राष्ट्रपति के अधिकारों में सब से अधिक महत्वपूर्ण उसके संकट-कालीन हैं। संकट-काल में राष्ट्रपति देश का सर्वेसर्वा भी बन सकता है, परन्तु संविधान निर्माताओं ने यह आशा प्रकट की है कि संकट-काल में राष्ट्रपति अपने अधिकारों का प्रयोग राष्ट्र के हित को ध्यान में रखकर ही करेगा।

भारतीय संविधान में तीन प्रकार के संकटों और उनकी उपस्थिति होने पर राष्ट्रपति के अधिकारों की विस्तृत चर्चा की गई है। संकट निम्न तीन प्रकार के हो सकते हैं—

(1) वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति की आशंका।

(2) राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता के कारण उत्पन्न संकट।

(3) आर्थिक संकट।

(1) वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति की आशंका—यदि भारत के राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा युद्ध, वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक उपद्रवों के कारण संकट में है तो वह आपात-कालीन स्थिति की घोषणा करके समस्त देश अथवा देश के किसी भाग का शासन अपने हाथ में ले सकता है। परन्तु राष्ट्रपति का यह अधिकार संसद के अधीन रखा गया है। यह घोषणा दो महीने तक लागू रह सकती है और यदि इसी बीच में संसद इसे स्वीकार कर लेती है तो वह घोषणा लागू रहेगी। संसद की स्वीकृति पर भी इस घोषणा की अवधि एक समय में 6 मास तक ही रहेगी और 6 मास बाद घोषणा की पुष्टि करनी पड़ेगी। अधिक से अधिक यह घोषणा 3 वर्ष तक लागू रह सकती है। संकटकाल की घोषणा के उपरान्त संघात्मक संविधान व्यवहारतः एकात्मक रूप धारण कर लेगा। इस घोषणा के निम्नलिखित परिणाम होंगे—

(1) घोषणा के लागू रहने तक संसद को राज्य सूची में दिए गए किसी भी विषय के सम्बन्ध में अथवा समस्त देश अथवा किसी भाग के लिए कानून बनाने का

अधिकार होगा और राज्य का कोई ऐसा कानून जो ससद के कानून विपरीत होगा, रद्द समझा जायगा।

(2) सघ सरकार को राज्यो को इस प्रकार के आदेश देने का अधिकार होगा कि वे कार्यपालिका की शक्ति का उपयोग किस प्रकार से करें।

(3) सकटकाल की घोषणा के फलस्वरूप निम्नलिखित मौलिक अधिकार स्थगित रहगे—

(अ) भाषण एव विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता।

(ब) शान्तिपूर्वक बिना हथियार के सम्मलन की स्वतन्त्रता।

(इ) समुदाय एव सघ बनाने की स्वतन्त्रता।

(ई) भारत की भूमि म किसी स्थान पर विचरण करने या रहने की स्वतन्त्रता।

(उ) सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन की स्वतन्त्रता।

(ऊ) कोई भी व्यापार, व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता।

(4) आपत्तिकाल में राष्ट्रीय को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी व्यक्ति के मौलिक अधिकारो की रक्षा के हेतु न्यायालयो की शरण में जाने की मनाही कर दे। वह इन अधिकारो की रक्षा के हेतु उच्चतम या अन्य न्यायालयो में जाने के अधिकार का स्थगन कर सकता है।

(5) राष्ट्रपति का यह अधिकार होगा कि वह देश क राजस्व (Revenue) के साधारण वितरण में परिवतन कर दे और सघ एव राज्यो के बीच राजस्व एव वितरण के सम्बन्ध में प्रार्थना-पत्र स्वीकार न करे।

सक्षेप में हम कह सकते हैं कि युद्ध एव आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न सकट का सामना करन के हेतु राष्ट्रपति को जो अधिकार दिए गए हैं वे अत्यन्त व्यापक हैं। यद्यपि राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह इन अधिकारो का उपयोग मन्त्रि-परिषद् के परामर्श स ही करेगा परन्तु सविधान में ऐसा कोई बन्धन नही दिया गया है।

(2) राज्यो मे सवैधानिक तन्त्र की विफलता के कारण उत्पन्न सकट—यदि किसी राज्यपाल या राजप्रमुख की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि उस राज्य म शासन-कार्य सविधान के अनुसार चलना असम्भव है तो वह राज्य का समस्त शासन अपने हाथ में ले सकता है। राष्ट्रपति इस स्थिति में राज्य के विधान-मण्डल की समस्त शक्तियाँ ससद को दे सकता है। राज्य के उच्च न्यायालयो के अधिकारो को छोडकर सरकार के समस्त कार्य और अधिकार अपने हाथ मे ले सकता है।

राष्ट्रपति की यह घोषणा दो मास तक लागू रह सकती है। घोषणा का समय 6 मास संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति पर ही किया जा सकता है। 6 मास पश्चात् संसद की इस घोषणा पर पुनः विचार करना होगा और वह 6 मास के लिए इस अवधि को और बढ़ा सकती है। कोई भी घोषणा 3 वर्ष से अधिक के लिए कभी भी लागू नहीं की जा सकती।

इस घोषणा के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि इसके लिए राष्ट्रपति को राज्यपाल की सूचना की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं भी इस प्रकार की घोषणा बिना राज्यपाल की राय के कर सकता है।

इस घोषणा के लागू होने पर संसद विधि-निर्माण का अधिकार राष्ट्रपति, राज्यपाल या अन्य किसी अधिकारी को दे सकती है। कार्यपालिका को किसी राज्य के सम्बन्ध में विधि-निर्माण का अधिकार तभी होगा जब कि संसद द्वारा उसे यह अधिकार प्रदान किया जाय। राष्ट्रपति को अपने इस अधिकार का प्रयोग अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए अन्यथा आन्तरिक कलह उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् कई राज्यों में इस प्रकार की घोषणा की गई। कुछ प्रदेशों की जनता ने इस घोषणा का स्वागत किया और कुछ ने तीखी आलोचना।

(3) आर्थिक संकट—यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि भारत की आर्थिक स्थिरता या साख खतरे में है तो वह संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। यह घोषणा संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जाएगी और दो मास तक लागू रह सकेगी। यदि इस बीच संसद उसे स्वीकार कर लेती है तो वह दो मास के बाद भी लागू रह सकती है।

इस घोषणा के लागू होने पर राष्ट्रपति राज्य के आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकेगा। उसे राज्य के सरकारी कर्मचारियों, न्यायाधीशों, सरकारी व्यय की मदों में कटौती करने का अधिकार होगा। धन-सम्बन्धी विधेयक को उसी के सम्मुख प्रस्तुत किया जायेगा और उस पर विचार करने तथा उस पर स्वीकृति देने का अधिकार उसी को होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संकटकाल में राष्ट्रपति को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। उसके अधिकारों को देखकर प्रसिद्ध विद्वान एलेन ग्लेडहिल (Alen Gladhill) ने लिखा है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में भारत का राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है। परन्तु यदि किंचित गहनता से विचार किया जाय तो व्यावहारिक रूप में यह बात उचित नहीं है। शायद ही कोई ऐसा राष्ट्रपति होगा तो अपने संकटकालीन अधिकारों का वास्तविक उपयोग करेगा। संकटकालीन अधिकारों

के विषय में डा० महादेवप्रसाद शर्मा ने लिखा है 'राष्ट्रपति के अधिकारों की सूची कागज पर अत्यन्त विस्तृत प्रतीत होती है और इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं है कि यदि राष्ट्रपति अपनी इन शक्तियों का वास्तविक उपभोग कर सके तो वह संसार का सबसे बड़ा स्वेच्छाचारी शासक होगा।

"The list of President's powers looks formidable on paper and there is no doubt that the president would be the greatest despot of the world if he could really exercise these powers."

—M. P. Sharma.

क्या राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है ?—ऊपर हमने राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकारों का विवेचना करते समय इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला है क्या संकट काल में राष्ट्रपति शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में ले सकता है ? यहाँ इस बात पर अधिक विस्तार से प्रकाश डालना होगा कि क्या भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को इतने अधिकार दिए गए हैं कि वह तानाशाह बन जाय।

भारतीय संघ के राष्ट्रपति को इतनी अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं कि संघात्मक सरकार एकात्मक बन सकती है संसद भंग की जा सकती है और देश में सैनिक शासन स्थापित किया जा सकता है। यहाँ तक कि संविधान का निलम्बन किया जा सकता है। राष्ट्रपति को मूलाधिकारों को निलम्बन करने का अधिकार है। साथ ही संविधान में यह कहीं नहीं लिखा है कि राष्ट्रपति मन्त्रि-मण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य है। संविधान की 74वीं धारा इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहती। प्रो० डा० एन० बनर्जी ने यही मत व्यक्त किया है कि राष्ट्रपति मन्त्रि-मण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा है 'मुख्य प्रश्न यह है कि क्या संविधान की 74 (1) धारा के अनुसार राष्ट्रपति कानूनी दृष्टि से मन्त्रि-परिषद् की सलाह हर परिस्थिति में मानने को बाध्य है ? मेरा निवेदन है कि वह बाध्य नहीं है।

"The essential point is whether the President is legally bound under article 74 (1)........to accept the advice of his Council of Ministers under all circumstances ? My submission is that he is not."

—Prof. D N Banerji.

मूलाधिकारों का निलम्बन और मन्त्रि-मण्डल की सलाह को न मानना यही दो बातें हैं जिनको उठाकर कुछ आलोचक यह मत प्रकट करते हैं कि भारतीय राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है। इन दोनों प्रश्नों पर किञ्चित विस्तार से विचार करना होगा। जहाँ तक मूलाधिकारों के निलम्बन का प्रश्न है, देश में संकटकालीन

स्थिति की घोषणा के उपरान्त न्यायालय नागरिकों के मूलाधिकारों का संरक्षण नहीं कर पाते। परन्तु संविधान के निर्माताओं ने राष्ट्रपति को मूलाधिकारों के निलम्बन का अधिकार देश की सुरक्षा की दृष्टि से दिया था न कि उसे तानाशाह बनाने के लिए। जब देश की सुरक्षा खतरे में हो तो नागरिकों के अधिकारों की अवहेलना की जा सकती है क्योंकि जब देश की स्वतन्त्रता ही नहीं होगी तो मूलाधिकारों की रक्षा कहाँ होगी ? साथ ही संविधान निर्माताओं ने यह भी आशा व्यक्त की है कि राष्ट्रपति अपने अधिकारों का प्रयोग देश के हित में ही करेगा। भारत में यह परम्परा बन गई है कि अभी तक भारत के राष्ट्रपति ने सदैव मूलाधिकारों का निलम्बन राष्ट्र की रक्षा के लिए ही किया है, तानाशाह बनने के लिए नहीं। अतएव आलोचकों का यह कथन कि नागरिकों के मूलाधिकारों के निलम्बन का अधिकार राष्ट्रपति को तानाशाह बना सकता है कागजी घोड़े दौड़ाने के लिए भले ही उचित हो, व्यवहार में समीचीन नहीं प्रतीत होता है।

जहाँ तक संविधान की 74वीं धारा का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्रपति उस धारा का दुरुपयोग नहीं कर सकता है। किसी भी संसदीय पद्धति के शासन में अध्यक्ष, मंत्रि-मण्डल के विचारों की अवहेलना नहीं कर सकता। व्यवहार में मंत्रि-मण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है न कि राष्ट्रपति के प्रति। अतएव मन्त्रि-मण्डल और राष्ट्रपति में मतभेद उत्पन्न होने पर मंत्रि-मण्डल राष्ट्रपति को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करेगा जिस कार्य को करने में वह समर्थ है। इसलिए राष्ट्रपति मंत्रि-मण्डल की सलाह की अवहेलना करके तानाशाह बनने का प्रयास नहीं करेगा।

अतएव यह मत व्यक्त करना कि भारत का राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है, व्यवहार में अधिक समीचीन नहीं प्रतीत होता। संविधान की धाराओं से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि एक स्थिति ऐसी आ सकती है कि राष्ट्रपति समस्त देश की बागडोर अपने हाथ में लेकर तानाशाह बन जाय परन्तु उसके बड़े भयंकर परिणाम राष्ट्रपति को भुगतने होंगे। संसार का कदाचित ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो भारत के राष्ट्रपति जैसे महत्वपूर्ण पद पर निर्वाचित होकर अपना आगा-पीछा सोचे बिना तानाशाह बनने का प्रयत्न करे। इसलिए व्यवहार में राष्ट्रपति कभी भी तानाशाह नहीं बन सकता। एक विद्वान ने बड़े सुन्दर शब्दों में यही व्यक्त किया है—

To conclude that the Indian President may become a Grand Moghul, in given circumstances, is simply to forget the basic structure of the Indian Polity.

राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की प्रक्रिया

राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की प्रक्रिया का उल्लेख संविधान की धारा 61 में किया गया है। इसमें लिखा है—

(1) संविधान के अतिक्रमण के लिए जब राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना हो तब संसद का कोई सदन दोषारोप करेगा।

(2) ऐसा कोई दोषारोप तब तक नहीं किया जायगा जब कि—

(क) ऐसे दोषारोप के करने की प्रस्तावना किसी संकल्प में न हो, जो कम से कम चौदह दिन की ऐसी लिखित सूचना के दिये जाने के पश्चात् प्रस्तुत किया गया है, जिस पर सदन के कम से कम एक चौथाई सदस्यों ने हस्ताक्षर करके, उस संकल्प को प्रस्तावित करने का विचार प्रगट किया है तथा

(ख) उस सदन के समस्त सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से ऐसा संकल्प पारित न किया गया हो।

(3) जब दोषारोप संसद के किसी सदन द्वारा इस प्रकार किया जा चुके तब दूसरा सदन उस दोषारोप का अनुसंधान करेगा या करायगा तथा इस अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधित्व कराने का राष्ट्रपति को अधिकार होगा।

(4) यदि अनुसंधान के फलस्वरूप राष्ट्रपति के विरुद्ध किये गये दोषारोप की सिद्धि को घोषित करने वाला संकल्प दोषारोप के अनुसंधान करने या कराने वाले सदन के समस्त सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से पारित हो जाता है है तो ऐसे संकल्प का प्रभाव उसकी पारण तिथि से राष्ट्रपति को अपने पद से हटाया जाना होगा।

राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति और उसका महत्व

(The Real Position of the President and His Importance)

प्रश्न—"भारत का राष्ट्रपति देश का वैधानिक प्रधान है, वास्तविक नहीं।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?

(The President of India is the constitutional head of the country not in reality" How for do you agree with this view ?)

भारत के राष्ट्रपति की स्थिति की विवेचना कीजिए। भारत में राष्ट्रपति का क्या महत्व है ?

(Discuss the position of the President of India What is the importance of the President in India ?)

'भारत का राष्ट्रपति किन्हीं भी परिस्थितियों में तानाशाह नहीं हो सकता। वह राज्य करता है शासन नहीं।"—क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

"The President of India can never be a dictator He only reigns but does not rule"—Do you agree with this view ?

भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों और उसकी वास्तविक स्थिति के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत का राष्ट्रपति तानाशाह हो सकता है; परन्तु अधिकतर विद्वान यह मानते हैं कि भारत का राष्ट्रपति किन्हीं भी परिस्थितियों में स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता। कुछ विद्वान उसको इंगलैण्ड के सम्राट की भाँति ही रबड़ की मोहर स्वीकार करते हैं, परन्तु अन्य विद्वानों का मत है कि भारत का राष्ट्रपति इंगलैंड के सम्राट की भाँति पूर्णतया निर्बल तो नहीं है। परन्तु इसमें किन्चित मात्र भी सन्देह नहीं कि वह केवल वैधानिक प्रधान है। उसकी वही स्थिति है जो किसी संसदीय-पद्धति की सरकार में राष्ट्रपति की होती है। भारत का राष्ट्रपति अमेरिका के प्रेसीडेण्ट की भाँति शक्तिशाली भले ही न हो परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति निर्बल भी नहीं है। हमारे मत से एक विद्वान का यह कथन पूर्णतया उचित है कि "ऐसा कहा जाता है कि ब्रिटेन का सम्राट केवल राज्य करता है, शासन नहीं करता, अमेरिका का प्रसीडेण्ट शासन करता है, राज्य नहीं करता और फ्रांस का प्रेसीडेण्ट न तो राज्य ही करता है और न शासन ही, परन्तु भारत का राष्ट्रपति राज्य भी करता है और शासन भी।" अतः इसके लिए यह कहना कि वह शासन करता ही नहीं केवल राज्य करता है, उचित नहीं है। यहाँ हम विभिन्न दृष्टिकोणों से राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कर रहे हैं :—

(1) क्या राज्य भारत का राष्ट्रपति स्वेच्छाचारी है ?—(इस सम्बन्ध में इस अध्याय का पिछला प्रश्न देखिये।)

(2) क्या भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के राजा की भाँति निर्बल है ?—बहुत से विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि संविधान में भारत के राष्ट्रपति की शक्तियाँ चाहे जितनी अधिक क्यों न दी गयी हों; परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि भारत का राष्ट्रपति इंगलैण्ड के शासक की भाँति ही निर्बल है। प्रसिद्ध विद्वान पालंडे का मत है कि "यह स्मरण रखना चाहिये कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग संविधान के अनुसार ही कर सकेगा और संविधान से यह ध्वनि निकलती है कि राष्ट्रपति केवल संवैधानिक शासक रहेगा।" सन्यानम से संविधान की धारा 61 (1) पर विशेष बल देते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारत का राष्ट्रपति केवल संवैधानिक प्रधान है। संविधान की धारा 74 (1) के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि मन्त्रि परिषद् का कार्य राष्ट्रपति को सहायता एवं परामर्श देना मात्र है; परन्तु संविधान की धारा के अर्थ अत्यन्त व्यापक रूप में ग्रहण किये जाने चाहिये। डा० अम्बेदकर ने संविधान सभा में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था, "राष्ट्रपति का स्थान वही है जो अंग्रेजी संविधान में ताज का है। वह राज्य का अध्यक्ष है; किन्तु कार्यपालिका का नहीं है। वह राष्ट्र का प्रति-

निधि है, शासक नहीं। प्रशासन में उसका स्थान एक विह्न या रबड़ की मोहर के तुल्य है जिसके द्वारा राष्ट्रपति के निर्णयों को जाना जाता है।"

"The President occupies the same position as the Kidg under the English Constitution. He is the head of the State but not of the Executive. He represents the nation but does not rule the nation. He is the symbol of the nation. His place in the administration is that of a ceremonial device or a seal by which the nation's decisions are made krown."

—B. R Ambedkar in the Constituent Assembly.

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भी सविधान में कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा था, "हमने राष्ट्रपति के लिए ब्रिटिश राजा जैसा स्थान अपनाया है। उसका स्थान वैधानिक राष्ट्रपति का है।"

"We have adopted more or less, the position of the British monarch for the President..................his posiuon is that of a constitutional President."

—Dr. Rajendra Prasad in the Constituent Assembly.

यह ठीक है कि इन विद्वानो ने भारत के राष्ट्रपति को इगलैंण्ड के राजा के तुल्य ही बतलाया है, परन्तु यदि हम भारत के राष्ट्रपति और इगलैण्ड के राजा के कार्यों पर सूक्ष्मता से विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत का राष्ट्रपति इगलैण्ड के सम्राट की अपेक्षा अपने अधिकारो का अधिक प्रयोग करता है और वह रबड की मोहर मात्र नही रह जाता है।

(3) वास्तविक स्थिति—भारत का राष्ट्रपति किन्ही परिस्थितियो मे तानाशाह नहीं हो सकता परन्तु वह इगलैण्ड के सम्राट की भाँति अत्यन्त निर्बल भी नहीं है। ब्रिटेन का राजा तो पूर्णरूप से अपने मन्त्रि परिषद् के अधीन रहता है। यहाँ तक कि राजा का यदि किन्हीं परिस्थितियो में मन्त्रि परिषद् से विरोध हो जाय तो इगलैण्ड से राजपद तक समाप्त हो सकता है, परन्तु भारत में यह स्थिति नहीं है। यहाँ मन्त्रि-परिषद् अपने प्रस्ताव के फलस्वरूप ही राष्ट्रपति को अपने पद से भले ही पदच्युत कर दें, परन्तु भारत से राष्ट्रपति का पद समाप्त करना मन्त्रि-परिषद् के लिए सम्भव नहीं है।

ब्रिटेन में यह परम्परा है कि सम्राट के प्रत्येक आदेश पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं, परन्तु भारत के सविधान में ऐसा कोई भी उपबन्ध नहीं है। यदि भारतीय सविधान के निर्माता भारत के राष्ट्रपति को इगलैण्ड के सम्राट की

भाँति ही बनाना चाहते तो उन्हें यह स्पष्ट लिख देना चाहिये था कि जैसे इंगलैण्ड, फ्रान्स, आयरलैण्ड, जापान व बर्मा के राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं वैसे ही भारत के राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर भी किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर हों। संविधान निर्माताओं ने ऐसी कोई भी बात नहीं लिखी और इससे यह स्पष्ट है कि भारत संविधान के निर्माता भारत के राष्ट्रपति को केवल एक रबड़ की मोहर मात्र नहीं बनाना चाहते थे।

यही नहीं भारतीय संविनान ने यहाँ के राष्ट्रपति को कुछ ऐसी शक्तियाँ प्रदान की हैं जो अन्य संसदात्मक पद्धति वाले देशों के संविधानों में राज्य के प्रमुख को प्रदान नहीं की गई हैं। भारत का राष्ट्रपति संसद को अपना सन्देश भेज सकता है। किसी प्रश्न पर मतभेद होने पर धन विधेयक को छोड़ कर किसी भी विधेयक को संसद को पुनर्विचार के लिए लौटा देने अथवा उस पर अनुमति न देने का अधिकार रखता है। इसका यह अर्थ है कि यदि राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद् से भिन्न मत रखता है तो मन्त्रि-परिषद् राष्ट्रपति को कुछ करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। अपनी शक्तियों के उपयोग के द्वारा कोई भी प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला राष्ट्रपति अत्यन्त शक्तिशाली बन सकता है। इसके साथ ही संविधान की धारा 61 में कहीं यह नहीं लिखा है कि राष्ट्रपति को मन्त्रि परिषद् की परामर्श मानना होगा। बी० एन० राऊ ने लिखा है, "संविधान राष्ट्रपति के ऊपर यह थोप नहीं देता कि उसे मन्त्रिपरिषद् की सलाह माननी होगी।"

यदि भारत का राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की सलाह न माने तो क्या स्थिति होगी इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक होगा। पहली स्थिति तो यह हो सकती है कि मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाये। परन्तु इसके लिए संसद के बहुमत की आवश्यकता होगी और इस बहुमत को प्राप्त करना मन्त्रिपरिषद् के लिए आसान न होगा। यह स्वाभाविक है कि मन्त्रिपरिषद् के निर्णय का विरोध विरोधी दल के सदस्य ही करेंगे। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि मन्त्रिपरिषद् अपना पद त्याग दे और गतिरोध उत्पन्न कर दे। इस अवस्था में राष्ट्रपति दूसरी मन्त्रिपरिषद् भी नियुक्त कर सकता है और 6 माह तक वह ऐसे मन्त्रियों से भी शासन कार्य चलवा सकता है जिन्हें बहुमत का समर्थन प्राप्त न हो। इस मध्य यदि अगला चुनाव हुआ तो आवश्यक नहीं है कि पद त्याग करने वाले दल का ही लोकसभा में बहुमत हो। यह भी हो सकता है कि बहुसंख्यक जनता राष्ट्रपति के मत की समर्थन हो और वह पहले सत्तारूढ़ होने वाले दल के पक्ष में अपना मत न दे। दूसरी ओर इंगलैण्ड का राजा मन्त्रिपरिषद् का विरोध लेकर एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकता यहाँ तक कि उसके पद तक के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

भारत के राष्ट्रपति को जो आपातकालीन शक्तियाँ दी गयी हैं वह भी उसकी स्थिति को इंगलैण्ड के राजा की अपेक्षा अधिक मजबूत बनाती हैं। ब्रिटेन में नागरिकों के मूलाधिकारों को निलम्बित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है, परन्तु अमेरिका में कांग्रेस ही केवल बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Writ of Habeas Corpus) के अधिकार द्वारा निलम्बित कर सकती है। इस प्रकार उन दोनों देशों में यह शक्ति कार्यपालिका को नहीं प्राप्त है। परन्तु भारत में स्थिति कुछ भिन्न है। यह ठीक है कि भारत का राष्ट्रपति यदि मूलाधिकारों को स्थगित करेगा तो उसे संसद की स्वीकृति लेनी होती है, परन्तु संसद की स्वीकृति के बिना वह ऐसा करने का अधिकार अवश्य रखता है। श्री अमरनन्दी ने उचित ही लिखा है, "कभी ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि जब राष्ट्रपति इस अधिकार का प्रयोग मन्त्रिपरिषद् से बिना पूछे अपने निर्णय के अनुसार भी कर सकता है, और जब हम ध्यान में लाते हैं कि युद्ध अथवा आक्रमण की वास्तविक घटना के समय (अर्थात् केवल उसके खतरे पर) राष्ट्रपति आपत्ति की घोषणा कर सकता है तो ऐसा लगता है कि वास्तविक गणतन्त्र में राष्ट्रपति को इतने निरंकुश अधिकार नहीं मिलने चाहिये थे।' यह ठीक है कि राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का उपयोग बिना मन्त्रिपरिषद् की सलाह से नहीं करता, परन्तु यदि वह ऐसा कर ले तो उसे कौन रोक सकता है ?

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत का राष्ट्रपति केवल नाम मात्र का कार्यपालिका का अध्यक्ष नहीं है। उसके लिए यह कहना उचित नहीं है कि वह केवल राज्य करता है शासन नहीं। साधारण स्थिति में यह ठीक है कि वह शासन के कार्यों में दखल नहीं देता परन्तु यदि विशिष्ट परिस्थितियों में वह ऐसा करना प्रारम्भ कर दे तो संविधान की कोई भी धारा उसे ऐसा करने से रोकती नहीं है। सत्य तो यह है कि राष्ट्रपति की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि उसका स्वयं का व्यक्तित्व कैसा है। वह अपने व्यक्तित्व के द्वारा मन्त्रिमण्डल को अवश्य ही प्रभावित कर सकता है। व्यावहारिक रूप में यदि वह शासन नहीं कर सकता तो अच्छा शासन अवश्य करवा सकता है।

आगे चलकर भारत के राष्ट्रपति के स्वरूप में क्या परिवर्तन होगा यह भविष्य के गर्भ में है। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि प्रोफेसर मृत्युञ्जय बनर्जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, 'वास्तविक स्थिति को देखना अत्यन्त कठिन है और भविष्य का अनुभव ही अस्तित्व को स्पष्ट कर सकता है।"

"It is very difficult to foresee the correct position which only future experience can show ... .

Prof. M[illegible] anerji.

भाँति ही बनाना चाहते तो उन्हें यह स्पष्ट लिख देना चाहिये था कि जैसे इंगलैण्ड, फ्रान्स, आयरलैण्ड, जापान व वर्मा के राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं वैसे ही भारत के राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश पर भी किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर हों। संविधान निर्माताओं ने ऐसी कोई भी बात नहीं लिखी और इससे यह स्पष्ट है कि भारत संविधान के निर्माता भारत के राष्ट्रपति को केवल एक रबड़ की मोहर मात्र नहीं बनाना चाहते थे।

यही नहीं भारतीय संविनान ने यहाँ के राष्ट्रपति को कुछ ऐसी शक्तियाँ प्रदान की हैं जो अन्य संसदात्मक पद्धति वाले देशों के संविधानों में राज्य के प्रमुख को प्रदान नहीं की गई हैं। भारत का राष्ट्रपति संसद को अपना सन्देश भेज सकता है। किसी प्रश्न पर मतभेद होने पर धन विधेयक को छोड़ कर किसी भी विधेयक को संसद को पुर्नविचार के लिए लौटा देने अथवा उस पर अनुमति न देने का अधिकार रखता है। इसका यह अर्थ है कि यदि राष्ट्रपति मन्त्रि-परिषद् से भिन्न मत रखता है तो मन्त्रि-परिषद् राष्ट्रपति को कुछ करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। अपनी शक्तियों के उपयोग के द्वारा कोई भी प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला राष्ट्रपति अत्यन्त शक्तिशाली बन सकता है। इसके साथ ही संविधान की धारा 61 में कहीं यह नहीं लिखा है कि राष्ट्रपति को मन्त्रि परिषद् की परामर्श मानना होगा। बी० एन० राऊ ने लिखा है, "संविधान राष्ट्रपति के ऊपर यह थोप नहीं देता कि उसे मन्त्रिपरिषद् की सलाह माननी होगी।"

यदि भारत का राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की सलाह न माने तो क्या स्थिति होगी इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक होगा। पहली स्थिति तो यह हो सकती है कि मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाये। परन्तु इसके लिए संसद के बहुमत की आवश्यकता होगी और इस बहुमत को प्राप्त करना मन्त्रिपरिषद् के लिए आसान न होगा। यह स्वाभाविक है कि मन्त्रिपरिषद् के निर्णय का विरोध विरोधी दल के सदस्य ही करेंगे। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि मन्त्रिपरिषद् अपना पद त्याग दे और गतिरोध उत्पन्न कर दे। इस अवस्था में राष्ट्रपति दूसरी मन्त्रिपरिषद् भी नियुक्त कर सकता है और 6 माह तक वह ऐसे मन्त्रियों से भी शासन कार्य चलवा सकता है जिन्हें बहुमत का समर्थन प्राप्त न हो। इस मध्य यदि अगला चुनाव हुआ तो आवश्यक नहीं है कि पद त्याग करने वाले दल का ही लोकसभा में बहुमत हो। यह भी हो सकता है कि बहुसंख्यक जनता राष्ट्रपति के मत की समर्थन हो और वह पहले सत्तारूढ़ होने वाले दल के पक्ष में अपना मत न दे। दूसरी ओर इंगलैण्ड का राजा मन्त्रिपरिषद् का विरोध लेकर एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकता यहाँ तक कि उसके पद तक के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

भारत के राष्ट्रपति को जो आपातकालीन शक्तियाँ दी गयी हैं वह भी उसकी स्थिति को इंगलैण्ड के राजा की अपेक्षा अधिक मजबूत बनाती हैं। ब्रिटेन में नागरिकों के मूलाधिकारों को निलम्बित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है, परन्तु अमेरिका में कांग्रेस ही केवल बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Writ of Habeas Corpus) के अधिकार द्वारा नियन्त्रित कर सकती है। इस प्रकार उन दोनों देशों में यह शक्ति कार्यपालिका को नहीं प्राप्त है। परन्तु भारत में स्थिति कुछ भिन्न है। यह ठीक है कि भारत का राष्ट्रपति यदि मूलाधिकारों को स्थगित करेगा तो उसे संसद की स्वीकृति लेनी होती है, परन्तु संसद की स्वीकृति के बिना वह ऐसा करने का अधिकार अवश्य रखता है। श्री अमरनन्दी ने उचित ही लिखा है, "कभी ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि जब राष्ट्रपति इन अधिकारों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद् से बिना पूछे अपने निर्णय के अनुसार भी कर सकता है, और जब हम ध्यान में लाते हैं कि युद्ध अथवा आक्रमण की वास्तविक घटना के समय (अर्थात् केवल उसके खतरे पर) राष्ट्रपति आपत्ति की घोषणा कर सकता है तो ऐसा लगता है कि वास्तविक गणतन्त्र में राष्ट्रपति को इतने निरंकुश अधिकार नहीं मिलने चाहिये थे।" यह ठीक है कि राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का उपयोग बिना मन्त्रिपरिषद् की सलाह से नहीं करता, परन्तु यदि वह ऐसा कर ले तो उसे कौन रोक सकता है ?

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत का राष्ट्रपति केवल नाम मात्र का कार्यपालिका का अध्यक्ष नहीं है। उसके लिए यह कहना उचित नहीं है कि वह केवल राज्य करता है शासन नहीं। साधारण स्थिति में यह ठीक है कि वह शासन के कार्यों में दखल नहीं देता परन्तु यदि विशिष्ट परिस्थितियों में वह ऐसा करना प्रारम्भ कर दे तो संविधान की कोई भी धारा उसे ऐसा करने से रोकती नहीं है। सत्य तो यह है कि राष्ट्रपति की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि उसका स्वयं का व्यक्तित्व कैसा है। वह अपने व्यक्तित्व के द्वारा मन्त्रिमण्डल को अवश्य ही प्रभावित कर सकता है। व्यावहारिक रूप में यदि वह शासन नहीं कर सकता तो अच्छा शासन अवश्य करवा सकता है।

आगे चलकर भारत के राष्ट्रपति के स्वरूप में क्या परिवर्तन होगा यह भविष्य के गर्भ में है। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि प्रोफेसर मृत्युञ्जय बनर्जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "वास्तविक स्थिति को देखना अत्यन्त कठिन है और भविष्य का अनुभव ही अस्तित्व को स्पष्ट कर सकता है।"

"It is very difficult to foresee the correct position which only future experience can show .

Prof. M. Bannerji.

राष्ट्रपति का महत्व (Importance of the President)

राष्ट्रपति का पद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है। यह ठीक ही है कि डा० अम्बेदकर ने यह मत व्यक्त किया है कि वह राज्य का प्रधान है, कार्यपालिका का नहीं, वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, शासन का नहीं; परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्व नहीं है। यदि उसके पद का महत्व न होता तो उस पर इतना अधिक व्यय करना मूर्खता ही होती और संविधान-निर्माता संविधान में राष्ट्रपति के पद का प्रविधान ही नहीं रखते। राष्ट्रपति कुछ ऐसे महत्व पूर्ण कार्य करता है कि जिनसे उसका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(1) राष्ट्र का प्रतीक—भारत का राष्ट्रपति ही स्वदेश एवं विदेश में राष्ट्र का प्रतीक है। उसकी आवाज राष्ट्र की आवाज। भारत में जहाँ व्यक्ति पूजा का बोलबाला है, राष्ट्रपति अत्यधिक श्रद्धा का पात्र है। श्रद्धा के लिए किसी प्रतीक की आवश्यकता अवश्य होती है और यह कार्य राष्ट्रपति ही पूर्ण करता है। वह नागरिकों में देश-प्रेम, त्याग, संगठन और एकता आदि गुणों का संचार करता है और उनमें राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति करता है।

(2) राष्ट्र की एकता का द्योतक—भारत का राष्ट्रपति राष्ट्र की एकता का द्योतक है। संविधान में राष्ट्रपति के चुनाव के लिए जिस प्रणाली का निर्देश किया गया है वह राज्य के सभी तत्वों को प्रतिनिधित्व देती है। राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह राष्ट्र के सभी तत्वों के प्रति जागरूक रहेगा और किसी का भी अहित न होने देगा। उसके पद द्वारा ही नागरिकों के मध्य एकता की सुदृढ़ भावना जन्म लेती है।

(3) लोकतन्त्र का रक्षक—भारत की राजनीति में कभी ऐसा अवसर आ सकता है जबकि केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् को संसद में बहुमत तो प्राप्त हो; परन्तु जनता का समर्थन न प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में एक ऐसी स्थिति आ सकती है जब भारतीय संसद जन साधारण का वास्तविक प्रतिनिधित्व न करती हो। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति लोकतन्त्र की रक्षा के हेतु लोकसभा की माँग कर सकता है और नवीन निर्वाचन द्वारा संसद का पुनर्गठन कर सकता है। इससे लोकतन्त्र की रक्षा तो होगी ही साथ ही आन्तरिक विद्रोह की सम्भावना भी न रहेगी।

(4) संकट काल में राष्ट्र का अधिनायक—युद्ध एवं वाह्य आक्रमण के समय लोकतन्त्रात्मक शासन में उतनी अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकती, जितनी अधिक अधिनायकवादी शासन में। उस समय देश में एक नेता और एक आवाज की आवश्यकता होती है। यह स्थिति राष्ट्रपति ही ग्रहण कर सकता है। राष्ट्रपति ही देश का एक ऐसा व्यक्ति है जिसके प्रति सबसे अधिक श्रद्धा प्रकट की जाती है। अत

एवं उसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने की आशंका बहुत कम की है। वह गन्दी दलबन्दी से ऊपर होता है, अतएव संकट-काल में वही देश की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो सकता है।

(5) संक्रमण काल में स्थायित्व—यदि देश में कभी ऐसी स्थिति आ गई कि संसद में किसी दल विशेष का बहुमत न हुआ तो मन्त्रि-परिषद् समय समय पर बदलेगी। एक मन्त्रि-परिषद् के त्याग-पत्र प्रस्तुत करने पर दूसरी को नियन्त्रित करने और कार्य-भार सम्हालने का कार्य राष्ट्रपति ही पूरा करेगा। बीच में यदि मन्त्रि परिषद् का निर्माण न हो सके तो राष्ट्रपति देश का समस्त शासन भार सम्हालकर गृह-युद्ध और आन्तरिक अशान्ति से देश की रक्षा करेगा। देश में निष्पक्ष रूप से निर्वाचन होने के लिये राष्ट्रपति का होना अनिवार्य है क्योंकि वह राजनीतिक दल बन्दी से ऊपर होता है। इस प्रकार वह देश के संक्रमण काल में स्थायित्व प्रदान करता है।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधि—भारत का राष्ट्रपति ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। संविधान के अनुसार युद्ध और शान्ति की घोषणा का अधिकार उसी को दिया गया है। विदेशी राजदूतों के प्रमाण-पत्र स्वीकार करने और विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति करना उसी का कार्य है। साधारण तौर पर यह कार्य प्रधान-मन्त्री को सुपुर्द किया जा सकता था, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय जगत में यह मान्यता है कि इस तरह के महत्वपूर्ण कार्य राज्य की प्रधान करता है, कार्यपालिका का प्रधान नहीं।

(7) शासन-व्यवस्था का समन्वयकर्त्ता—भारतीय संविधान में संघात्मक और एकात्मक दोनों प्रकार की प्रणालियों के गुणों का समावेश हुआ है। दोनों प्रणालियों के गुणों का समावेश राष्ट्रपति पद के बिना सम्भव नहीं था। यदि शासन-व्यवस्था से राष्ट्रपति को अलग कर दिया जाय तो दिखलाई पड़ेगा कि भारतीय शासन का समस्त तारतम्य बिखरा हुआ-सा है। राज्यों और केन्द्र के बीच सामञ्जस्य के दर्शन नहीं होंगे। अतएव शासन-व्यवस्था में समन्वय लाने की दृष्टि से भी राष्ट्रपति पद का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राष्ट्रपति भले ही अपने अधिकारों का उपयोग न करता हो, परन्तु उसके पद की महत्ता में किसी को भी सन्देह नहीं होना चाहिये।

भारत का उप-राष्ट्रपति

(Vice-President of India)

प्रश्न—भारत के उप-राष्ट्रपति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(Write a short note on Vice-President of India.)

उपराष्ट्रपति का चुनाव—भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के साथ ही एक उप-राष्ट्रपति का भी प्रावधान किया गया है। उसका चुनाव संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा निर्मित एक फ्लेक्टोरल कालेज "द्वारा होता है। यह चुनाव अनुपातिक प्रतिनिधित्व-प्रणाली के अनुसार एकत्र संक्रमणीय मत द्वारा होता है। संविधान की धारा 66 मे उसके निर्वाचन की प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है। उसने लिखा हैं,"

(1) संयुक्त अधिवेशन में (एक निर्वाचक गण, जिसमें संसद के दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित है, के सदस्य) द्वारा अनुपाती प्रगतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन होगा तथा ऐसे निर्वाचन में मतदान गुण शलाका द्वारा होगा।

(2) उपराष्ट्रपति न तो संसद के किसी सदन का, और न किसी राज्य के मण्डल के सदन का, सदस्य होगा तथा यदि संसद के किसी सदन का, अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के सदन का सदस्य उपराष्ट्रपति निर्वाचित हो जाय तो यह समझा जायेगा कि उसने उस सदन का अपना स्थान उपराष्ट्रपति के रूप में अपने पद-ग्रहण को तारीख से रिक्त कर दिया है।

(3) कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा जब तक कि वह—

(क) भारत का नागरिक न हो,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो, तथा

(ग) राज्य-परिषद् के लिए सदस्य निर्वाचित होने की अर्हता न रखता हो।

(4) कोई व्यक्ति, जो भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन उक्त सरकारों में से किसी से नियंत्रित किसी स्थानीय या अन्य आधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण किए हुए है, उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र न होगा।

उपराष्ट्रपति का कार्य-काल—उपराष्ट्रपति का कार्य-काल 5 वर्ष होता है परन्तु इससे पूर्व भी यह त्याग-पत्र दे सकता है। उपराष्ट्रपति को हटाया भी जा सकता है, यदि राज्य-सभा उसे हटाने का प्रस्ताव पारित करे और लोक-सभा उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करे। संविधान की धारा 6 में उसके पदावधि के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। इसमें लिखा है, "उपराष्ट्रपति अपने पद-ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा।"

परन्तु—

(क) उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा, अपना पद त्याग सकेगा,

(ख) उपराष्ट्रपति, राज्य-परिषद् के ऐसे संकल्प द्वारा, अपने पद से हटाया जा सकेगा जिसे परिषद् के तत्कालीन सदस्यों के बहुमत ने पारित किया हो तथा जिसे लोक-सभा ने स्वीकृत किया हो, किन्तु इस खंड के प्रयोजन के लिए भी संकल्प तब तक प्रस्तावित न किया जायेगा जब तक कि उसे प्रस्तावित करने के अभिप्राय की सूचना कम से कम चौदह दिन पूर्व न दे दी गई हो।

(ग) उपराष्ट्रपति, अपने पद की अवधि—समाप्त हो जाने पर भी, अपने उत्तराधिकारी के पद-ग्रहण तक पद धारण किए रहेगा।

उपराष्ट्रपति के कार्य—उपराष्ट्रपति के कार्यों या अधिकारों को हम दो कोटियों में विभाजित कर सकते है—

(1) राज्य-सभा की अध्यक्षता का कार्य।

(2) राष्ट्रपति पद पर स्थानापन्न रूप से काम करने का कार्य।

उपराष्ट्रपति ही राज्य-सभा का अध्यक्ष होता है। जो कार्य लोक-सभा में स्पीकर करता है लगभग वही कार्य राज्य-सभा में उपराष्ट्रपति सम्पन्न करता है। राज्य-सभा की बैठकों को सुचारु रूप से चलाने का गुरुतर भार उपराष्ट्रपति पर ही होता है।

यदि राष्ट्रपति बीमार हो जाय अथवा उसकी मृत्यु हो जाय या त्याग-पत्र या बर्खास्तगी के कारण उसका पद खाली हो जाय तो उपराष्ट्रपति स्थानापन्न रूप से राष्ट्रपति का कार्य करता है। इस कार्य-काल में उसे राष्ट्रपति के सभी अधिकार और शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है। उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में अधिक से अधिक 6 महीने तक ही कार्य कर सकता है और इस अवधि में राष्ट्रपति का चुनाव अवश्य हो जाना चाहिए।

उप-राष्ट्रपति का महत्व—उप-राष्ट्रपति का महत्व इस कारण है कि वह गुरुतर पदों का भार सम्भालता है। भारतीय संविधान-निर्माताओं ने उसे राज्यसभा का अध्यक्ष बनाकर अनोखी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। यदि ऐसा न किया जाता तो उप-राष्ट्रपति बेकार बैठा रहता और राज्यसभा के लिए एक अलग अध्यक्ष की व्यवस्था करनी पड़ती। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक रूप में उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति की अपेक्षा अधिक व्यस्त रहता है। राष्ट्रपति को तो केवल गौरव ही प्रदान किया गया है, परन्तु उप-राष्ट्रपति को गौरव प्रदान करने के साथ ही अधिक व्यस्त भी रखा गया है।

अध्याय | 5

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद्

(CENTRAL CAB ET)

मंत्रिपरिषद् का सगठन, कार्य और महत्व

(Composition, Functions and Importance of the Cabinet)

प्रश्न—केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के संगठन और कार्यों का वर्णन संक्षेप में कीजिए।

(Describe in brief the composition and functions of the Central Cabinet.)

"मन्त्रिपरिषद् ही भारत सरकार की वास्तविक कार्यपालिका है"—विवेचना कीजिए।

("The Cabinet is the real executive of the Indian Government," Discuss.)

मन्त्रिपरिषद् के सङ्गठन, कार्य-संचालन और महत्व के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about the compostion, working and importance of the Cabinet ?)

मन्त्रिपरिषद् के मुख्य कार्यों और उसकी कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिए।

(Describe the main functions and the working of the Cabinet.)

भूमिका (Introduction)

भारतीय संविधान में मन्त्रिपरिषद् से सम्बन्धित दो अनुच्छेद अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद 47 में लिखा है कि राष्ट्रपति को उसके कार्यों में सहायता देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के विषय में कोई भी न्यायिक कार्यवाही नहीं हो सकेगी। अनुच्छेद 74 के शब्द इस प्रकार है, "राष्ट्रपति

को अपने कार्यों के प्रयोग में सहायता एवं परामर्श देने के हेतु एक मन्त्रिपरिषद होगी, जिसका प्रमुख प्रधानमन्त्री होगा। मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को क्या कोई परामर्श दिया और यदि दिया तो क्या, इस प्रश्न पर न्यायालय में कोई जाँच नहीं की जा सकेगी।" संविधान की धारा 75 में स्पष्ट किया गया है कि—

(1) प्रधान-मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान-मन्त्री की मन्त्रणा पर करेगा।

(2) राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त मन्त्री अपने पद धारण करेंगे।

(3) मन्त्रि-परिषद लोक-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे।

(4) किसी मन्त्री के अपने पद-ग्रहण करने से पहिले राष्ट्रपति उससे तृतीय अनुसूची में इसके लिए दिए हुए प्रपत्र के अनुसार पद की तथा गोपनीयता की शपथें करायेगा।

(5) किसी मन्त्री के अपने पद-ग्रहण करने से पहिले राष्ट्रपति उससे तृतीय अनुसूची में इसके लिए दिए हुए प्रपत्र के अनुसार पद की तथा गोपनीयता की शपथें करायेगा।

(6) कोई मन्त्री जो निरन्तर छः मास की किसी कालावधि तक संसद के किसी सदन का सदस्य न रहे उस कालावधि की समाप्ति पर मन्त्री न रहेगा।

(7) मन्त्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे, समय-समय पर, संसद विधि द्वारा निर्धारित करे तथा जब तक संसद इस प्रकार निर्धारित न करे तब तक ऐसे होंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है।'

मन्त्रिपरिषद का संगठन (Composition of the Cabinet)

(1) प्रधानमन्त्री एवं अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति—जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है कि भारतीय संविधान में मन्त्रिपरिषद के संगठन के विषय में अधिक चर्चा नहीं की गई है। केवल इतना ही कहा गया है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमन्त्री होगा। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगा। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि व्यवहार में राष्ट्रपति अपनी स्वेच्छा से प्रधानमन्त्री की नियुक्ति कर सकता है। वास्तव में लोकसभा के बहुमत दल का नेता ही मन्त्रिपरिषद के गठन के लिए राष्ट्रपति द्वारा आमन्त्रित किया जाता है। यदि यह ठीक प्रकार से स्पष्ट नहीं हो रहा है कि बहुमत किस दल का है तो राष्ट्रपति अपनी इच्छानुकूल व्यक्ति को मन्त्रिपरिषद के निर्माण के लिए आमन्त्रित कर सकता है। परन्तु इस स्थिति में भी राष्ट्रपति के अधिकार सीमित होते हैं।

राष्ट्रपति बहुमत दल का नेता मन्त्रिपरिषद बनाने के लिए आमन्त्रित करता है

और तत्पश्चात् प्रधानमंत्री अपने साथियों का चुनाव करता है। प्रधानमंत्री अपने साथियों का चुनाव करने में पूर्ण स्वतन्त्र होता है। वह किसी भी व्यक्ति को मन्त्री पद के लिए चुन सकता है। अपने सहयोगियों का चुनाव करने के पश्चात् प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को उनकी नामावली भेज देता है और राष्ट्रपति सहमत नहीं है तो वह इसकी सूचना प्रधानमंत्री को देता है। परन्तु प्रधानमन्त्री इस बात के लिए बाध्य नहीं होता है कि वह राष्ट्रपति की राय को मान ले। यदि प्रधानमन्त्री चाहे तो ऐसे व्यक्ति को भी मन्त्रिपरिषद में रखने की सिफारिश कर सकता है जो कि संसद का सदस्य न हो। परन्तु मन्त्री नियुक्त होने के 6 मास के अन्दर उस व्यक्ति को संसद के किसी न किसी सदन का सदस्य अवश्य ही बनाना पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसद के बहुमत दल का नेता ही मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष अथवा प्रधानमन्त्री होता है और व्यावहारिक रूप में उसको ही यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह मन्त्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों का चुनाव करे।

संविधान में यह उल्लेख है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह प्रधानमन्त्री को अपने पद से हटा दे। परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति के लिए यह सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रधानमन्त्री और उसकी मन्त्रिपरिषद् मुख्य रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को पदच्युत करता है तो एक बड़ा भारी वैधानिक संकट उत्पन्न हो जाएगा और राष्ट्रपति के अस्तित्व को भी खतरा उत्पन्न हो सकता है। अतएव राष्ट्रपति इस प्रकार का कार्य नहीं करता।

(2) मंत्री पद के लिए योग्यता—मन्त्री पद के लिए कोई शैक्षिक योग्यता अनिवार्य नहीं रखी गई है। भारत के किसी भी नागरिक को मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि संसद के सदस्यों में से ही मन्त्री नियुक्त किए जा सकते हैं, परन्तु उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह 6 मास के अन्दर संसद के सदस्य अवश्य बन जाएँ अन्यथा उन्हें अपने पद का परित्याग करना पड़ता है। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि लोकप्रिय व्यक्ति ही मन्त्री बन सकें जिससे कि शासन का संचालन सुचारु रूप से हो सके।

(3) मन्त्रियों के विभिन्न प्रकार—मन्त्रिपरिषद् के विभिन्न सदस्यों के महत्व को दृष्टि में रखते हुए मन्त्रियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम श्रेणी में कैबिनेट मन्त्री (Cabinet Minister) आते हैं। ये मन्त्रिपरिषद् की प्रत्येक बैठक में भाग लेकर अपनी राय प्रगट करते हैं। दूसरी श्रेणी राज्य मंत्रियों (State Ministers) की है और तीसरी श्रेणी में उपमन्त्री (Deputy Ministers) रखे जाते हैं। दूसरी और तीसरी श्रेणी के मन्त्री मन्त्रिपरिषद् की रोजमर्रा की बैठकों में भाग नहीं लेते। उन्हें मन्त्रिपरिषद् की बैठक में तभी बुलाया जाता है जब उनके विभाग के

कार्यों की जाँच पड़ताल की जाती है या सामूहिक कार्य की योजना बनाई जाती है। राज्य मन्त्री और उपमन्त्री कैबिनेट मन्त्री की देख-रेख में कार्य करते हैं।

(4) प्रमुख मन्त्रालय—भारत सरकार के प्रमुख मन्त्रालयों के नाम इस प्रकार से हैं—परराष्ट्र, प्रतिरक्षा, वित्त, गृह, फौलाद, खनिज और ईंधन, खाद्य और कृषि शिक्षा, सिंचाई और शक्ति, परिवहन और संचार, कानून, रेल, वैज्ञानिक खोज, नियोजन, श्रम वाणिज्य और उद्योग स्वास्थ्य, सूचना और ब्राडकास्टिंग, सार्वजनिक कार्य एवं गृह-निर्माण और सामुदायिक विकास इत्यादि। इनमें से प्रत्येक मन्त्रालय किसी न किसी मन्त्री के अधीन अवश्य ही रहता है।

(5) मन्त्री की शपथ—प्रत्येक मन्त्री को अपना पद ग्रहण करने के पूर्व अपने पद की शपथ लेनी होती है। यह शपथ राष्ट्रपति दिलवाता है। यह शपथ दो प्रकार की होती है। पहली पद की शपथ और दूसरी मन्त्रिपरिषद् के कार्यों को गुप्त रखने की शपथ। ये दोनों शपथें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

(i) पद की शपथ—"मैं ...(अमुक) ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत संविधान के प्रति निष्ठा रखूँगा। संघ के मन्त्री के रूप में अपने कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अन्तःकरण से पालन करूँगा, तथा भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना मैं सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान के अनुसार न्याय करूँगा।"

(ii) गोपनीयता की शपथ—"मैं .(अमुक) ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विषय-संघ-मन्त्री के रूप में मेरे विचार के लिए लाया जायगा अथवा मुझे ज्ञात होगा, उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को उस अवस्था को छोड़कर जब कि ऐसे मन्त्री के रूप में कर्तव्य उचित निर्वाह के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, अन्य अवस्था में मैं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सूचित या प्रकट नहीं करूँगा।"

(6) मन्त्रियों के वेतन एवं भत्ते—मन्त्रियों को वेतन एवं भत्ते आदि निर्धारित करने का अधिकार संसद का प्रदान किया गया है। समय-समय पर संसद मन्त्रियों के वेतन एवं भत्ते निर्धारित करती रहती है। संसद इनके वेतन एवं भत्तों को बढ़ा भी सकती है और घटा भी सकती है। मन्त्रियों को रहने के लिए बंगला और फर्नीचर प्रदान किया जाता है एवं उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाता है।

मन्त्रि-परिषद् के कार्य (Functions of the Cabinet)

मन्त्रिपरिषद् के कार्य अत्यन्त व्यापक हैं। वास्तव में राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों का उपभोग मन्त्रिपरिषद् ही करती है। मन्त्रिपरिषद् के कार्यों को अनेक

और तत्पश्चात् प्रधानमंत्री अपने साथियों का चुनाव करता है। प्रधानमंत्री अपने साथियों का चुनाव करने में पूर्ण स्वतन्त्र होता है। वह किसी भी व्यक्ति को मन्त्री पद के लिए चुन सकता है। अपने सहयोगियों का चुनाव करने के पश्चात् प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को उनकी नामावली भेज देता है और राष्ट्रपति सहमत नहीं है तो वह इसकी सूचना प्रधानमंत्री को देता है। परन्तु प्रधानमन्त्री इस बात के लिए बाध्य नहीं होता है कि वह राष्ट्रपति की राय को मान ले। यदि प्रधानमन्त्री चाहे तो ऐसे व्यक्ति को भी मन्त्रिपरिषद में रखने की सिफारिश कर सकता है जो कि संसद का सदस्य न हो। परन्तु मन्त्री नियुक्त होने के 6 मास के अन्दर उस व्यक्ति को संसद के किसी न किसी सदन का सदस्य अवश्य ही बनाना पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसद के बहुमत दल का नेता ही मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष अथवा प्रधानमन्त्री होता है और व्यावहारिक रूप में उसको ही यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह मन्त्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों का चुनाव करे।

संविधान में यह उल्लेख है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह प्रधानमन्त्री को अपने पद से हटा दे। परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति के लिए यह सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रधानमन्त्री और उसकी मन्त्रिपरिषद् मुख्य रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को पदच्युत करता है तो एक बड़ा भारी वैधानिक संकट उत्पन्न हो जाएगा और राष्ट्रपति के अस्तित्व को भी खतरा उत्पन्न हो सकता है। अतएव राष्ट्रपति इस प्रकार का कार्य नहीं करता।

(2) मंत्री पद के लिए योग्यता—मन्त्री पद के लिए कोई शैक्षिक योग्यता अनिवार्य नहीं रखी गई है। भारत के किसी भी नागरिक को मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि संसद के सदस्यों में से ही मन्त्री नियुक्त किए जा सकते हैं, परन्तु उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह 6 मास के अन्दर संसद के सदस्य अवश्य बन जाएँ अन्यथा उन्हें अपने पद का परित्याग करना पड़ता है। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि लोकप्रिय व्यक्ति ही मन्त्री बन सकें जिससे कि शासन का संचालन सुचारु रूप से हो सके।

(3) मन्त्रियों के विभिन्न प्रकार—मन्त्रिपरिषद् के विभिन्न सदस्यों के महत्व की दृष्टि से रखते हुए मन्त्रियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम श्रेणी में कैबिनेट मन्त्री (Cabinet Minister) आते हैं। ये मन्त्रिपरिषद् की प्रत्येक बैठक में भाग लेकर अपनी राय प्रगट करते हैं। दूसरी श्रेणी राज्य मंत्रियों (State Ministers) की है और तीसरी श्रेणी में उपमन्त्री (Deputy Ministers) रखे जाते हैं। दूसरी और तीसरी श्रेणी के मन्त्री मन्त्रिपरिषद् की रोजमर्रा की बैठकों में भाग नहीं लेते। उन्हें मन्त्रिपरिषद् की बैठक में तभी बुलाया जाता है जब उनके विभाग के

कार्यों की जाँच पड़ताल की जाती है या सामूहिक कार्य की योजना बनाई जाती है। राज्य मन्त्री और उपमन्त्री कैबिनेट मन्त्री की देख-रेख में कार्य करते हैं।

(4) प्रमुख मन्त्रालय—भारत सरकार के प्रमुख मंत्रालयों के नाम इस प्रकार से हैं—परराष्ट्र, प्रतिरक्षा, वित्त, गृह, फौलाद, खनिज और ईंधन, खाद्य और कृषि शिक्षा, सिंचाई और शक्ति, परिवहन और संचार, कानून, रेल, वैज्ञानिक खोज, नियोजन, श्रम वाणिज्य और उद्योग स्वास्थ्य, सूचना और ब्राडकास्टिंग, सार्वजनिक कार्य एवं गृह-निर्माण और सामुदायिक विकास इत्यादि। इनमें से प्रत्येक मंत्रालय किसी न किसी मंत्री के अधीन अवश्य ही रहता है।

(5) मन्त्री की शपथ—प्रत्येक मन्त्री को अपना पद ग्रहण करने के पूर्व अपने पद की शपथ लेनी होती है। यह शपथ राष्ट्रपति दिलवाता है। यह शपथ दो प्रकार की होती है। पहली पद की शपथ और दूसरी मन्त्रिपरिषद् के कार्यों को गुप्त रखने की शपथ। ये दोनों शपथें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

(i) पद की शपथ—"मैं "(अमुक) ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत संविधान के प्रति निष्ठा रखूँगा। संघ के मंत्री के रूप में अपने कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अन्तःकरण से पालन करूँगा, तथा भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना मैं सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान के अनुसार न्याय करूँगा।"

(ii) गोपनीयता की शपथ—"मैं .(अमुक) ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विषय-संघ-मन्त्री के रूप में मेरे विचार के लिए लाया जायगा अथवा मुझे ज्ञात होगा, उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को उस अवस्था को छोड़कर जब कि ऐसे मंत्री के रूप में कर्तव्य उचित निर्वाह के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, अन्य अवस्था में मैं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सूचित या प्रकट नहीं करूँगा।"

(6) मन्त्रियों के वेतन एवं भत्ते—मंत्रियों को वेतन एवं भत्ते आदि निर्धारित करने का अधिकार संसद को प्रदान किया गया है। समय-समय पर संसद मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते निर्धारित करती रहती है। संसद इनके वेतन एवं भत्तों को बढ़ा भी सकती है और घटा भी सकती है। मन्त्रियों को रहने के लिए बगला और फर्नीचर प्रदान किया जाता है एवं उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाता है।

मन्त्रि-परिषद् के कार्य (*Functions of the Cabinet*)

मन्त्रिपरिषद् के कार्य अत्यन्त व्यापक हैं। वास्तव में राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों का उपभोग मन्त्रिपरिषद् ही करती है। मन्त्रिपरिषद् के कार्यों को अनेक

श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। उसके इन विभिन्न कार्यों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(1) विधि-निर्माण सम्वन्धी कार्य—अधिकतर मन्त्रिपरिषद् द्वारा ही कोई विधेयक संसद में प्रस्तुत किया जाता है और विधि-निर्माण सम्बन्धी कार्यों को वही पूर्ण करती है। यदि कोई गैर-सरकारी सदस्य चाहे तो वह भी लोकसभा अथवा राज्य सभा में कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकता है परन्तु यह विधेयक तव तक पारित नहीं हो सकता जव तक कि उसे वहुमत का समर्थन प्राप्त न हो जाए और कार्य मन्त्रिपरिषद् की इच्छा के विना अत्यन्त दुष्कर होता है।

(2) प्रशासकीय कार्य—समस्त देश के प्रसाशन की कुंजी मंत्रिपरिषद् के हाथ में ही होती है। प्रत्येक को एक या दो विभाग सौंपे जाते हैं और वह अपने विभागों के प्रशासन एवं संचालन के हेतु पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है। इस प्रकार प्रशासन-सम्वन्वी कार्य को अन्तिम रूप देना मन्त्रिपरिषद् का ही कार्य होता है। प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है, इसलिए मन्त्रिपरिषद् के अधिकार एवं उत्तरदायित्व भी वहुत अविक हो जाते हैं। मन्त्रियों को उनके विभागों के अनुसार ही सम्वोधित किया जाता है। समय पड़ने पर विभागों और मन्त्रियों को वढ़ाया या घटाया जा सकता है। गृह, सूचना, कृषि, शिक्षा, वित्त, श्रम, यातायात, रेल, विधि, पेट्रोल एवं रसायन इत्यादि विभागों के मन्त्री होते हैं। संक्षेप में हम मन्त्रिपरिषद् के निम्नलिखित कार्य प्रस्तुत कर सकते हैं।

(अ) शासन के समस्त कार्यों को विभिन्न विभागों में बांट कर उपयुक्त मन्त्री के सुपुर्द प्रस्तुत करना।

(व, सरकार की नीति निर्धारित कर उनको कार्यान्वित करना।

(स) राष्ट्रपति द्वारा पूछे गये प्रश्नों और शासन-सम्वन्वी विषयों की सूचना प्रस्तुत करना।

(द) समय-समय पर सरकारी कर्मचारियों को आदेश देना।

(य) प्रशासन के विभिन्न विभागों में सम्वन्य स्थापित करना। इनके अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् के अनेक अन्य प्रशासकीय कार्य भी हैं।

(3) आर्थिक कार्य—अर्थ-सम्वन्वी समस्त कार्यों को भी मन्त्रिपरिषद् पूरा करती है। वही वार्षिक वजट वनाकर संसद में पेश करती है। कर लगाना, उसकी दर निर्धारित करना अथवा करों को समाप्त करना मन्त्रिपरिषद् का ही कार्य है। धन-विधेयक वित्त-मन्त्री प्रस्तुत करता है। देश की समस्त आर्थिक व्यवस्था की वागडोर मन्त्रिपरिषद् के हाथ में होती है।

(4) महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ—सिद्धान्त रूप में राष्ट्रपति को राज्यपालों,

न्यायाधीशों और राजदूतों इत्यादि महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार है, परन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति यह कार्य प्रधानमन्त्री की सलाह से ही करता है। अतएव इन पदों की नियुक्तियों का भार भी मन्त्रिपरिषद् पर ही होता है।

(5) संसद की व्यवस्था करना—संसद में पेश किए जाने वाले जितने भी मामले होते हैं उनका निश्चय भी मन्त्रिपरिषद् ही करती है। किस मामले के लिए कितना समय निर्धारित किया जायेगा इसका निर्णय भी मन्त्रिपरिषद् करती है।

(6) परराष्ट्र नीतियों का निर्धारण—परराष्ट्र नीतियों का निर्धारण भी मन्त्रिपरिषद् करती है। राष्ट्रपति राजदूतों की नियुक्तियाँ, विदेशों से युद्ध एवं संधि मन्त्रिपरिषद् की सलाह से ही करता है।

(7) संकट-कालीन कार्य—संकट-कालीन स्थिति में मन्त्रिपरिषद् को बहुत विस्तृत अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में वह राज्यों के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकती है। राष्ट्रपति को किसी राज्य के मन्त्रिमण्डल को भंग करने का परामर्श भी मन्त्रिपरिषद् दे सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रिपरिषद् के अधिकार अत्यन्त विस्तृत हैं। वास्तविक दृष्टि से देश की कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद् ही है और राष्ट्रपति के नाम वह समस्त कार्यों को पूरा करती है।

मन्त्रि-परिषद् की कार्य-विधि (Working of the Cabinet)

(1) बैठकें—शासन कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए समय-समय पर मन्त्रिपरिषद् की बैठकें होती हैं। उसकी सप्ताह में एक बैठक अवश्य होती है परन्तु आवश्यकतानुसार एक से अधिक बैठक भी हो सकती है। इन बैठकों में अधिकतर *निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं परन्तु यदि सर्वसम्मति नहीं होती तो बहुमत के* द्वारा निर्णय होता है। मन्त्रिपरिषद् जो निर्णय ले लेती है उसके बाद किसी मन्त्री को उसका विरोध करने का अधिकार नहीं होता। चूँकि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है इसलिए इन बैठकों में जो निर्णय लिए जाते हैं उसका पालन मन्त्रिपरिषद् के प्रत्येक सदस्य को करना होता है।

(2) मन्त्रि-परिषद् की समितियाँ—अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए मन्त्रिपरिषद् विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण करती है। मन्त्रिपरिषद् के सदस्य ही इन समितियों के सदस्य होते हैं। भारत में आर्थिक, संसदीय या कानूनी, *पुनर्संस्थापन, भारी उद्योग प्रतिरक्षा, विदेशी सम्बन्ध व अन्य नियुक्तियों* आदि से सम्बन्धित मामलों के क्षेत्र में मन्त्रिपरिषद् की विभिन्न समितियों का गठन किया गया है। इसके साथ ही वैज्ञानिक मामलों से सम्बन्धित समिति, मानव-शक्ति समिति, और सूचना एवं परराष्ट्र समिति भी गठित की गयी हैं। इन समितियों में

आर्थिक मामलों से सम्बन्धित समितियाँ अपने क्षेत्र में आने वाली सभी महत्वपूर्ण मामलों पर पूरी तरह से विचार करती हैं और तत्पश्चात् मन्त्रिपरिषद् कोई निर्णय लेती है।

(3) मन्त्रि-परिषद् का सचिवालय—केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् का अपना एक अलग सचिवालय होता है। यह सचिवालय मन्त्रिपरिषद् की कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान देता है। सचिवालय प्रधानमन्त्री के निर्देशानुसार मन्त्रिपरिषद् या मन्त्रिमण्डल की बैठकों का एजेण्डा तैयार करता है और बैठक की सूचना प्रसारित करता है। कार्यवाही के हेतु आवश्यक स्मृतिपत्रों एवं अन्य आलेखों को मन्त्रियों में घुमाना इस सचिवालय का ही कार्य है। मन्त्रिपरिषद् या मंत्रिमण्डल द्वारा लिये गये निर्णयों को लेखबद्ध करना इस सचिवालय का ही कार्य है। साथ ही विभिन्न अधिकारियों को मन्त्रिपरिषद् द्वारा लिए गए निर्णयों की सूचना यह सचिवालय ही देता है। विभिन्न समितियों की रिपोर्ट भी यह सचिवालय ही तैयार करता है। इस सचिवालय में एक सचिव, और कई संयुक्त, उप एवं सहायक सचिव होते हैं। इसके साथ ही कुछ आर्थिक और आंकिक परामर्शदाता एवं अन्य कर्मचारी भी इस सचिवालय में कार्य करते हैं।

मन्त्रि-परिषद् का महत्व (Importance of th: C.binet)

भारत में केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का वही महत्व है जो इंगलैंड में वहाँ की मन्त्रि-परिषद् का है। इंगलैंड की मन्त्रिपरिषद् को रेम्जेम्योर ने राज्य रूपी जलयान की पतवार कहा है। वेजहाट ने उसे कार्यपालिका और विधायिका को सम्बन्धित करने वाला बकसुआ माना है। लावेल ने उसे राजनीतिक मेहराब की आधारशिला और मेरियट ने उसे वह चूल (Pivot) माना है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण राजनीतिक यन्त्र घूमता है। भारत में इंगलैण्ड की भाँति ही संसदात्मक व्यवस्था है। जिस प्रकार इंग-लैण्ड में सम्राट को सैद्धान्तिक रूप में अत्यन्त व्यापक अधिकार प्राप्त हैं परन्तु व्यवहार . इन अधिकारों का उपभोग मन्त्रिपरिषद् करती है, उसी प्रकार भारतीय संविधान में यद्यपि राष्ट्रपति को कार्यपालिका का सर्वेसर्वा बनाया है परन्तु वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् के हाथ में ही निहित हैं। मन्त्रिपरिषद् ही राष्ट्रपति के नाम पर उसके सम्पूर्ण संवैधानिक अधिकारों का उपभोग करती है तथा प्रशासन यन्त्र का संचालन करती है। वास्तविक स्थिति यह है कि यदि मन्त्रिपरिषद् को लोकसभा का विश्वास प्राप्त रहे तो मन्त्रिपरिषद् जो चाहे वह कर सकती है, परन्तु शर्त यह है कि उसका कार्य संविधान विरोधी न हो। मन्त्रिपरिषद् को अपरिमित कार्यपालिकीय शक्तियाँ तो प्राप्त हैं ही साथ ही संसद में अपने बहुमत के फलस्वरूप वह विधायन में भी बहुत बड़ा हाथ रखती है। अधिकतर यह देखा जाता है कि वही विधेयक पारित होता है जो मन्त्रिपरिषद् द्वारा रखा जाता है। अन्य सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए विधेयकों एवं

प्रस्तावों का पास होना बहुत कुछ मन्त्रिपरिषद् के इस पर ही निर्भर करता है। वित्तीय मामलों में भी अधिकतर पहल मन्त्रिपरिषद् ही करती है और देश के बजट के निर्माण एवं उसके पारित होने में मन्त्रिपरिषद का बहुत बड़ा हाथ होता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद के परामर्शानुसार ही करता है। संकट-काल में तो मन्त्रिपरिषद के अधिकार और अधिक विस्तृत हो जाते हैं और उनका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। राज्य की सरकारों का भङ्ग करने में भी मन्त्रिपरिषद् का प्रमुख हाथ रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का बहुत अधिक महत्व है। देश का समस्त शासन-यन्त्र केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के इशारे पर नाचता रहता है। भारत में मन्त्रिपरिषद् के महत्व के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि भारत की केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् अत्यधिक शक्तिशाली है परन्तु उसे वह गौरव नहीं प्राप्त है जो इगलैण्ड की मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त है। इगलैण्ड में संसद का निर्णय ही अन्तिम निर्णय होता है परन्तु भारत में संविधान की प्रमुखता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यदि इगलैण्ड की मन्त्रिपरिषद् चाहे तो वह राजा के पद तक को समाप्त कर सकती है परन्तु भारत की मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति के पद को समाप्त नहीं कर सकती। भारत में मन्त्रिपरिषद कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो संविधान विरोधी हो क्योंकि यहाँ के न्यायालय उसके निर्णयों को संविधान विरोधी कहकर अवैध घोषित कर सकते हैं परन्तु इगलैण्ड में मन्त्रिपरिषद् द्वारा लिया गया *निर्णय व्यवहार में अन्तिम निर्णय होता है और संसद में अपने बहुमत के फलस्वरूप* वह जो चाहती है कर लेती है। डा० मुकर्जी ने ठीक ही लिखा है, "भारत की केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् अत्यधिक शक्तिशाली होने पर भी इगलैण्ड की मन्त्रिपरिषद की भाँति सर्वशक्तिमान नहीं है और उसका महत्व इगलैण्ड की मन्त्रिपरिषद् के तुल्य नहीं है।"

मन्त्रिपरिषद् का राष्ट्रपति एवं लोकसभा से सम्बन्ध

(Relations of Cabinet with President and House of Peoples)

प्रश्न—मन्त्रिपरिषद् के राष्ट्रपति और लोकसभा के सम्बन्धों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about relations of the Cabinet with President and House of the Peoples ?)

भारत में संसदीय व्यवस्था की स्थापना की गयी है। संसदीय व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् अत्यधिक शक्तिशाली होती है और वह निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। भारत की मन्त्रिपरिषद् सिद्धान्त रूप में ही राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि वह लोकसभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है।

मन्त्रिपरिषद् का राष्ट्रपति और लोकसभा दोनों से ही सम्बन्ध बना रहता है। हम संक्षेप में मन्त्रिपरिषद् के राष्ट्रपति और लोकसभा के सम्बन्धों की चर्चा कर रहे हैं—

मन्त्रिपरिषद् और राष्ट्रपति (Cabinet and the President)

भारतीय संविधान में केवल दो अनुच्छेद ऐसे हैं जिनमें राष्ट्रपति और मन्त्रिपरिषद् के सम्बन्धों की चर्चा की गयी है। ये अनुच्छेद 74 और 75 हैं। राष्ट्रपति एवं मन्त्रिपरिषद् के सम्बन्धों को इन दोनों ही अनुच्छेदों में स्पष्ट रूप में नहीं लिखा गया है। बहुत सी बातें परम्पराओं आदि पर छोड़ दी गयी हैं। डा० दुर्गादास बसु ने लिखा है, "केवल इनमें उन समस्त सिद्धान्तों को नहीं लिख दिया गया है जिन पर संसदीय शासन आधारित रहता है और कुछ मौलिक बातों के सम्बन्ध में भी संविधान के रचयिताओं को बहुत सी बातों को प्रथाओं और परम्पराओं तथा व्यक्तिगत तत्वों के द्वारा निर्धारित होने के लिए छोड़ देना पड़ा है।"

"All the principles upon which Cabinet Government rests have not been embodied herein, and even on some fundamental points the framers of the Constitution have been obliged to convention and usage and the personal factor."

(Durga Das Basu's Commentary of the Constitution on India., P. 290)

मन्त्रिपरिषद् और राष्ट्रपति के सम्बन्धों के विषय में भी बहुत सी बातें परम्पराओं और प्रथाओं पर छोड़ दी गयी हैं। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 75 (1) में लिखा है, "प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की मन्त्रणा पर करेगा।" इस अनुच्छेद में यह कहीं नहीं लिखा है कि प्रधानमन्त्री के चयन में राष्ट्रपति की शक्ति अत्यन्त सीमित है। इस प्रकार अनुच्छेद 75 (2) में लिखा है, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त मन्त्री अपने पद धारण करेंगे।' परन्तु व्यवहार में स्थिति क्या होगी इस सम्बन्ध में संविधान में कोई भी उल्लेख नहीं है। यहाँ हम मन्त्रिपरिषद् और राष्ट्रपति के वास्तविक सम्बन्धों की चर्चा कर रहे हैं—

भारतीय संविधान के अनुसार कार्यपालिका का सर्वोच्च प्रधान राष्ट्रपति ही है और परामर्श देने के लिए ही मन्त्रिपरिषद् का गठन किया जाता है। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से यह ठीक है कि राष्ट्रपति देश का सर्वेसर्वा होता है परन्तु व्यावहारिक रूप से मन्त्रिपरिषद् के अधिकार अधिक हैं। प्रधानमन्त्री, मन्त्रिपरिषद् के गठन में राष्ट्रपति की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है। मन्त्रिपरिषद् किसी भी विषय में जो

निर्णय करती है उसे राष्ट्रपति को मानना ही होता है। यद्यपि यह ठीक है कि संविधान के अनुसार हमारे देश का शासन राष्ट्रपतिआत्मक होना चाहिए परन्तु व्यावहारिक रूप में वह मन्त्रिमण्डलात्मक ही है और मन्त्रि-मण्डल ही अधिक शक्तिशाली है। राष्ट्रपति के जो भी अधिकार हैं उनका उपयोग मन्त्रि-परिषद् ही करती है। एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "भारतीय संविधान में राष्ट्रपति कार्यकारिणी का अध्यक्ष अवश्य है। परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति उसे अधिकार नहीं प्राप्त हैं। उसकी समता कुछ-कुछ इंगलैण्ड के सम्राट से की जा सकती है जो वैधानिक रूप से राष्ट्र का प्रधान है और जिसमें राज्य की सार्वभौमिक सत्ता निहित है, जिसके नाम से राज्य के सब काम किए जाते हैं, पर वह अपने सरकारी कामों में मन्त्रिपरिषद् के हाथों में बँधा हुआ है और शासन का सब काम प्रधान मन्त्री की राय से करता है।"

राष्ट्रपति अपने अधिकारों के सम्बन्ध में मनमानी नहीं कर सकता। उसे अपने समस्त कार्यों के लिए मन्त्रि-परिषद् से मन्त्रणा करनी ही होगी। मान लीजिए कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि राष्ट्रपति मन्त्रि परिषद् की बात न माने तो यह ठीक है कि मन्त्रि-परिषद् को अपना पद त्याग करना होगा परन्तु उसके बाद के परिणाम राष्ट्रपति के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होंगे। नव निर्वाचन के पश्चात् यदि पुरानी मन्त्रि-परिषद् का नेता ही बहुमत दल का नेता बनकर आता है तो उसे ही प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन करना होगा और तत्पश्चात् वह राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग लगाकर उसे अपने पद से वंचित करवा सकता है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति का मन्त्रि-परिषद् पर कुछ प्रभाव होता ही नहीं यद्यपि वास्तविक स्थिति यह है कि राष्ट्रपति नाम मात्र का प्रधान होता है परन्तु अपने व्यक्तित्व के द्वारा वह मन्त्रि परिषद् की नीतियों को अवश्य ही प्रभावित कर सकता है।

मन्त्रि-परिषद् और लोकसभा (Cabinet and the House of People)

भारत की संसदीय व्यवस्था में मन्त्रि-परिषद् और लोकसभा में भी अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोकसभा के बहुमत दल का नेता ही मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष होता है। मन्त्रि-परिषद् लोकसभा के प्रति ही सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। यदि लोकसभा सम्पूर्ण मन्त्रि-मण्डल अथवा किसी एक मन्त्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करती है तो सम्पूर्ण मन्त्रि मण्डल को इस्तीफा देना होगा। लोकसभा ही वह अंकुश है जो मन्त्रि-परिषद् को मनमानी करने से रोकता है। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग पर कितना व्यय करे इस बात का निर्णय भी संसद ही करती है। संसद किसी मन्त्री का वेतन कम कर सकती है और किसी गैर सरकारी बिल को पारित कर सकती है। लोकसभा को यह अधिकार होता है कि वह निम्नलिखित उपायों को अपनाकर मन्त्रि-परिषद् को अपदस्थ कर दे।

(1) अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके—लोकसभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके मन्त्रि-परिषद् को च्युत कर सकती है।

(2) किसी मंत्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके—यदि लोक सभा किसी मन्त्री विशेष के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करती है तो मन्त्रि-परिषद् को इस्तीफा देना होता है।

(3) कटौती का प्रस्ताव पारित करके—वार्षिक बजट के समय यदि लोक सभा किसी मन्त्री के वेतन में कटौती के प्रस्ताव को पारित कर दे तो मन्त्रि-परिषद् को इस्तीफा देना होता है।

(4) प्रस्ताव को अस्वीकृत करके—मन्त्रि-परिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक को अस्वीकार करके भी लोकसभा मन्त्रि-परिषद् को इस्तीफा देने के लिए बाध्य कर सकती है।

(5) गैरसरकारी प्रस्ताव पारित करके—यदि विरोधी दल के किसी सदस्य का कोई प्रस्ताव लोकसभा पारित कर देती है तो मन्त्रि-परिषद् का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने पद से इस्तीफा दे दे।

यह ठीक है कि लोकसभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उसे त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर सकती है परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि मन्त्रि-परिषद् पर लोकसभा हावी नहीं रहती बल्कि लोकसभा पर मन्त्रि-परिषद् ही हावी रहती है। इसके कई कारण हैं। सबसे पहला कारण यह है कि लोकसभा में मन्त्रि-परिषद् के दल का बहुमत रहता है और फलस्वरूप यह जो कार्य चाहती है लोकसभा से करवा लेती है। इसके साथ ही जहाँ लोकसभा में विभिन्न विचार-धाराओं के विभिन्न दिशाओं में जाने वाले राजनीतिक दलों के सदस्य होते हैं वहीं मन्त्रि-परिषद् में एकता की भावना होती है। इस एकता के फलस्वरूप मन्त्रि-परिषद् लोकसभा पर ही नियन्त्रण रखती है। मन्त्रि-परिषद् का लोकसभा पर प्रभाव रखने का एक अन्य कारण यह है कि मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री केवल अपने दल का ही नेता नहीं होता वरन् सम्पूर्ण लोकसभा का भी नेता होता है। उसे लोकसभा को भंग करने का भी अधिकार होता है। यदि किसी विषम स्थिति में प्रधानमन्त्री लोकसभा को भङ्ग करने की सलाह देता है तो राष्ट्रपति लोकसभा को भङ्ग कर देता है। लोकसभा के भङ्ग किए जाने का डर उसके प्रत्येक सदस्य को रहता है क्योंकि हो सकता है कि पुनः निर्वाचन में वह सदस्य निर्वाचित न हो सके। जेनिंग्स ने ठीक ही लिखा है, "भङ्ग करने की शक्ति सदस्यों के सिर पर सदैव एक बड़ी छड़ी की तरह लटकती रहती है।"

"Th· dissolution can hardly be a threat above the member's head like a big stick."

—Jennings.

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवहार में मन्त्रि-परिषद् लोकसभा द्वारा नियन्त्रित न होकर मन्त्रि-परिषद् ही लोकसभा पर नियन्त्रण बनाए रखती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में मन्त्रि परिषद् की तानाशाही है। जेनिंग का मत है, "बहुमत पर आधारित मन्त्रि मण्डल अस्थायी तानाशाही का निर्माण करता है।" परन्तु भारत के विषय में यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। भारत में अब तक मन्त्रि-परिषद् ने संसद के प्रति सदैव सम्मान व्यक्त किया है और ये दोनों एक दूसरे के सहयोग से ही काम कर रहे हैं। डा० एस० आर० शर्मा ने लिखा है, "भारत में अन्य देशों की अपेक्षा मन्त्रि-परिषद् का व्यवस्थापिका के प्रति व्यवहार अधिक अच्छा है।"

भारत में यह परम्परा तो बन ही गया है कि मन्त्रि-परिषद् सदैव लोकसभा की इच्छा के सम्मुख नतमस्तक होती है। किन्तु भारतीय संविधान में भी इस प्रकार की व्यवस्था है कि यदि कभी मन्त्रि परिषद् स्वेच्छाचारिणी हो जाय तो उस पर अंकुश लगाया जा सकता है और यही यह कहना कि मन्त्रि-परिषद् लोकसभा पर अपना आधिपत्य रखती है उचित नहीं है। ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब कि विरोधी दल के सदस्यों ने मन्त्रि-परिषद् को अपने निर्णयों में परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया है। वास्तव में यह संसदीय परम्परा के उज्ज्वल लक्षण हैं और भारत जैसे देश के भविष्य के लिए यह अत्यन्त हितकारी हैं।

प्रधान-मन्त्री
(The Prim- Minister)

प्रश्न—भारत में प्रधान-मन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार होती है? उसकी महत्वपूर्ण शक्तियों और कार्यों की विवेचना कीजिये तथा उसकी स्थिति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(How is the Prime Minister of India appointed? Discuss his important powers and functions and write a short note on his position)

"प्रधान-मन्त्री मन्त्रि-परिषद् रूपी वृत्तखण्ड (मेहराब) का पत्थर है" (लार्ड मारले)—भारत के प्रधान-मन्त्री की स्थिति को ध्यान में रखकर इस कथन की विवेचना कीजिये।

(The Prime Minister is the key stone of the Cabinet arch (Lord Morley)—Discuss this statement keeping in view the position of the Prime M n ster of India.)

संसदीय व्यवस्था में प्रधान मन्त्री की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। भारतीय संविधान में केवल यही लिखा है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक

मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधान-मन्त्री होगा। "परन्तु संविधान के इन शब्दों से प्रधान-मन्त्री की वास्तविक स्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। भारत का प्रधान-मन्त्री बहुत हद तक इंग्लैंड के प्रधान-मन्त्री के तुल्य ही शक्तिशाली है। इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री के लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। लार्ड मार्ले ने उसे मन्त्रि-परिषद् रूपी वृत्तखण्ड का प्रधान पत्थर बतलाया है। जैनिंग्स उसे संविधान की आधारशिला मानता है। लास्की का मत है, "वह कैबिनेट के निर्माण का केन्द्र, उसके जीवन का केन्द्र और उसकी मृत्यु का आधार है। ग्रीव्स लिखता है, "सरकार देश का मालिक है और प्रधानमन्त्री सरकार का स्वामी है।" भारत के प्रधानमन्त्री के विषय में भी यह बातें कही जा सकती हैं। यहाँ हम भारत के प्रधान-मन्त्री की नियुक्ति और उसके अधिकारों एवं उसकी स्थिति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

प्रधान मन्त्री की नियुक्ति (Appointment of the Prime Minister)

भारतीय संविधान में लिखा है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् का निर्माण किया जायगा जिसका प्रधान प्रधान-मन्त्री होगा। इस प्रकार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है परन्तु उसकी नियुक्ति में राष्ट्रपति स्वतन्त्र नहीं है। राष्ट्रपति, लोकसभा के बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री बनाता है। आमचुनाव के पश्चात् विभिन्न राजनीतिक दल लोकसभा में अपने नेता का चुनाव करते हैं। लोकसभा में जिस दल का बहुमत होता है उसके नेता को ही प्रधानमन्त्री बनाया जाता है। यद्यपि संविधान में यह कहीं भी नहीं लिखा है कि राष्ट्रपति को बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री नियुक्त करना होगा परन्तु व्यावहारिक रूप में बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमन्त्री बनाना होता है क्योंकि ऐसा न करने पर शासन चलना दुष्कर हो जाता है।

प्रधान-मन्त्री के अधिकार एवं कर्तव्य (Rights and the Duties of the Prime Minister)

जैसा कि हमने उल्लेख किया है कि प्रधानमन्त्री को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। यहाँ उसके अधिकारों और कर्तव्यों की चर्चा संक्षेप में की जा रही है :—

(1) मन्त्रि-परिषद् का गठन—प्रधानमन्त्री ही मंत्रि-परिषद् का गठन करता है। राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रि-मण्डल बनाने का आवाहन किये जाने के पश्चात् वह अपने सहयोगी मन्त्रियों की सूची राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है। राष्ट्रपति इस सूची को स्वीकार कर लेता है इस प्रकार मन्त्रि-परिषद् में अपने साथियों को चुनने और उन्हें विभिन्न विभाग सौंपने का अधिकार प्रधानमन्त्री को होता है। प्रधानमन्त्री किसी भी समय मन्त्रि-परिषद् में परिवर्तन कर सकता है। वह उसे विघटित भी कर सकता है। कोई

भी मन्त्री उसकी इच्छा के बिना मंत्री नहीं रह सकता। किसी भी मन्त्री से वह इस्तीफा देने के लिए कह सकता है। यदि वह मंत्री इस्तीफा नहीं देता तो वह सम्पूर्ण मन्त्रि-मण्डल को विघटित करके पुनः नए मंत्रि-मण्डल का निर्माण कर सकता है जिसमें उस मन्त्री को न रखा जाय। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रि-परिषद् का जीवन और मृत्यु प्रधान मन्त्री पर ही निर्भर करती है।

(2) शासन-सम्बन्धी अधिकार—जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि मन्त्रि-परिषद् के जितने भी शासन-सम्बन्धी अधिकार हैं वे सभी प्रधान मन्त्री के कहे जा सकते हैं। प्रधान मन्त्री ही समस्त कार्यों को विभिन्न विभागों में बाँटकर उपयुक्त मन्त्रियों के सुपुर्द करता है। सरकार की नीति का निर्धारण और उसके कार्यान्वयन में उसका प्रमुख हाथ होता है। वह प्रशासन के विविध विभागों में सम्बन्ध स्थापित करता है और समय-समय पर विभिन्न मन्त्रियों और सरकारी कर्मचारियों को आदेश देता है। महत्वपूर्ण नियुक्तियों में भी उसका हाथ रहता है। वह परराष्ट्र-सम्बन्धी नीतियों के निर्धारण में योगदान देता है।

(3) विधि-निर्माण सम्बन्धी कार्य—मन्त्रि-परिषद् को जितने भी विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं उनमें भी दखल देने का अधिकार प्रधान मन्त्री को होता है। उसकी राय के बिना कोई भी विधेयक संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(4) मंत्रि-परिषद् की अध्यक्षता—प्रधान मन्त्री मन्त्रि-परिषद् का चेयरमैन होता है, अतएव वह कैबिनेट की समस्त बैठकों में सभापतित्व का आसन ग्रहण करता है। किसी विषय को मन्त्रि-परिषद् के विचारार्थ रखे जाने की आज्ञा देने का अधिकार प्रधानमन्त्री को ही है। मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों में विरोध उत्पन्न होने पर उनका निर्णय प्रधानमन्त्री ही करता है।

(5) लोक-सभा में सरकार का नतृत्व—प्रधानमन्त्री ही लोकसभा में सरकार का नेतृत्व करता है और अपनी सरकार के मन्त्रियों द्वारा किए गए कार्य के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है। वह शासन की नीति का प्रमुख वक्ता होता है। वह लोकसभा की महत्वपूर्ण बहसों का सूत्रपात करता है। लोकसभा की कार्यवाही के सम्बन्ध में समस्त महत्वपूर्ण घोषणाएँ उसी के द्वारा की जाती हैं।

(6) लोक-सभा का नेतृत्व—प्रधानमन्त्री लोकसभा में केवल बहुमत दल का ही नेता नहीं होता बल्कि वह लोकसभा का भी नेता होता है। वह यदि आवश्यक समझे तो राष्ट्रपति को लोकसभा के विघटन की परामर्श भी दे सकता है और राष्ट्रपति को उसके परामर्श को मानना होता है। लोकसभा का विघटन कराने की शक्ति प्रधानमन्त्री की एक बहुत बड़ी शक्ति है और उसकी इस शक्ति से लोकसभा का प्रत्येक

सदस्य भयभीत रहता है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की इस शक्ति की चर्चा करते हुए डायसी ने जो शब्द लिखे हैं वे भारत के प्रधानमन्त्री के लिए भी पूर्ण सत्य हैं। उसने लिखा है—

"Dissolution has come to be a power in the hands of the Prime Minister—The appeal from the legal to the political sovereign."

(7) वैदेशिक नीति का निर्धारण—प्रधानमन्त्री देश में तो शासन करता ही है परन्तु साथ ही वैदेशिक नीति के निर्धारण में भी उसका प्रमुख हाथ रहता है। विदेशों से आने वाले प्रमुख राजनीतिज्ञों से वही विचार-विमर्श करता है। इसके साथ ही विदेशों के प्रति देश की क्या नीति हो इसका निर्णय भी प्रधानमन्त्री करता है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रधान मन्त्री को बड़े विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। विस्तृत अधिकारों का यह अर्थ नहीं है कि प्रधानमन्त्री तानाशाह हो जाय। उसका यह कर्तव्य होता है कि वह अपने कार्य को बड़ी सूझ-बूझ और चतुरता से करे। प्रो० रा० ना० गुप्त ने लिखा है, "....प्रधानमन्त्री की प्रमुख शक्तियों का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि वह कोई निरंकुश तानाशाह की भाँति कार्य करता है। वह एक प्रजातन्त्र राज्य का सर्वमान्य नेता होता है और अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के विस्तृत हित को आगे बढ़ाने के लिए करता है।"

एक अन्य विद्वान ने कहा है, "प्रधानमन्त्री का कार्य और जिम्मेदारी साधारण नहीं है.......बहुत ही चतुर, क्षमताशील प्रतिभावान और प्रभावशाली व्यक्ति ही उसे पूर्ण कर सकता है।"

इस प्रकार प्रधानमन्त्री का कर्तव्य हो जाता है कि वह शासन के अच्छे ढांचे का निर्माण इस प्रकार से करे कि जनता का हित हो सके। विभिन्न विभागों में सामंजस्य स्थापित करने का जो गुरुतर कार्य प्रधानमन्त्री पर छोड़ा गया है, यदि प्रधान मन्त्री उनको बड़ी सूझ-बूझ से पूर्ण नहीं करेगा तो शासन का समस्त ढांचा हिल जायगा।

प्रधान मन्त्री की स्थिति (Position of the Prime Minister)

ऊपर हमने प्रधानमन्त्री के अधिकारों और कर्तव्यों की विवेचना की है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रधानमन्त्री ही वह धुरी है जिसके चारों ओर अन्य मन्त्री और शासन का चक्र घूमा करता है। प्रधानमन्त्री मन्त्रि-परिषद् का निर्माता, कार्यपालिका का प्रधान, मन्त्रि-परिषद् का चेयरमैन, शासन-व्यापार का प्रधान मैनेजर, मन्त्रि-परिषद् और राष्ट्रपति के बीच की प्रमुख कड़ी और लोकसभा का नेता होता है। समस्त राष्ट्र अपने मार्ग-दर्शन के लिए प्रधानमन्त्री का ही मुँह ताकता है। यदि कोई प्रधान

मन्त्री अपने कार्यों को सुचारु रूप से करता है और जनता के हित को स्वहित समझता है तो वह समस्त देश की जनता के गले का हार बन सकता है, जो स्थान भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू को प्राप्त था। अतएव इंगलैंड के एक भूतपूर्व प्रधान मन्त्री जेनिंग्स का यह कथन पूर्णतया सत्य है, कि "प्रधानमन्त्री अपने पद का महत्व स्वयं बनाता है।"

"The office of the Prime Minister is what its holder wants to make it." —Jennings.

ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की विस्तृत शक्तियों के विषय में विभिन्न विद्वानों ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे भारतीय प्रधानमन्त्री पर भी घटित होते हैं। रैम्जे म्योर लिखता है, "मन्त्रि-परिषद्, राज्य के जलयान का चालक यन्त्र है और प्रधानमन्त्री उसका चालक।"

"The Cabinet is the steering wheel of the ship of the State and the Prime Minister is the Steerman." —Ramsey Muir.

जेनिंग्स ने उसके विषय में लिखा है, "वह बराबर के मन्त्रों में पहला नहीं है, न ही सितारों के बीच में एक चन्द्रमा है बल्कि वह एक सूर्य है जिसके चारों ओर समस्त ग्रह घूमते हैं।"

"He is not merely Primus Interpares (first among equals). He is not even as Harcourt Said. "Interstellas Iunas minores (moon among the stars). He is rather a sun round which planets revolve"" —Jennings.

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रधानमन्त्री की स्थिति को जितना ऊँचा बताया जाय, कम है। वास्तव में वह देश का सर्वप्रमुख व्यक्ति है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्रधानमन्त्री तानाशाह होता है। उसके विषय में श्री ए० सी० कपूर ने सत्य ही लिखा है, "वह सीमाओं में ही सम्पूर्ण है।"



अध्याय | 6

संघीय व्यवस्थापिका
(FEDERAL LEGISLATURE)

संसद की संरचना एवं कार्य
(Composition and Functions of the Parliament)

प्रश्न—संसद की संरचना एवं कार्यों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about the composition and functions of the Parliament ?)

भारतीय संविधान की धारा 79 में लिखा है कि, "संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों को मिलाकर बनेगी जिनके नाम राज्यसभा और लोकसभा (Council of States and House of Peoples) होंगे।" इससे स्पष्ट है कि भारत में व्यवस्थापिका के दो सदन होते हैं, उच्च सदन को राज्यसभा और निम्न सदन को लोकसभा के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ हम इन दोनों ही सदनों की संरचना के विषय में अलग-अगल प्रकाश डाल रहे हैं :—

राज्यसभा की संरचना (Composition of the Council of States)

संसद के दूसरे सदन को राज्यसभा के नाम से पुकारा जाता है। यह उच्च सदन है। राज्यसभा में संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। संविधान में लिखा है कि राज्यसभा में अधिक से अधिक 250 सदस्य होंगे जिनमें अधिक से अधिक 238 सदस्य राज्यों की ओर से निर्वाचित होंगे और 12 को राष्ट्रपति नामजद करेगा। राष्ट्रपति द्वारा नामजद 12 सदस्य साहित्य, विज्ञान, कला अथवा समाज-सेवा आदि के क्षेत्र में प्रख्यात व्यक्ति होंगे। राज्यों के प्रतिनिधि सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होता है। इस निर्वाचन की दृष्टि से भारतीय सङ्घ के राज्य दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं—(1) वे राज्य जिनमें विधान सभाएँ हैं, और (2) वे राज्य जिनमें विधान सभाएँ नहीं हैं, वरन् ये केन्द्र द्वारा शासित हैं। जिन राज्यों में विधान सभाएँ हैं वहाँ विधान सभाओं के सदस्य अपने राज्य के प्रतिनिधियों का चुनाव

करते हैं। यह चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत के द्वारा होता है। वे राज्य जिनमें विधान सभाएँ नहीं हैं उनमें प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का ढंग संसद कानून द्वारा निर्धारित करती है।

राज्यसभा में विभिन्न राज्यों को निम्नलिखित प्रतिनिधित्व दिया गया है।

राज्य	स्थान
(1) आन्ध्र प्रदेश	18
(2) असम	7
(3) बिहार	22
(4) गुजरात	11
(5) केरल	9
(6) मध्य प्रदेश	16
(7) महाराष्ट्र	19
(8) मद्रास	18
(9) मैसूर	12
(10) उड़ीसा	10
(11) पंजाब	11
(12) राजस्थान	10
(13) उत्तर प्रदेश	34
(14) पश्चिमी बंगाल	16
(15) जम्मू तथा कश्मीर	4
(16) नागालैंड	1
(17) हरियाना	13
(18) दिल्ली	3
(19) हिमाचल प्रदेश	2
(20) मणिपुर	1
(21) त्रिपुरा	1
(22) नमित	2
	240

सदस्यों की योग्यता—राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए किसी भी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताओं का होना अनिवार्य है :—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

(3) उसमें वे अन्य योग्यताएँ भी हों जो संसद कानून द्वारा निश्चित करे।

(4) राज्यसभा की सदस्यता के लिए वही अयोग्यताएँ हैं जो लोकसभा की सदस्यता के लिए हैं।

(5) यदि किसी व्यक्ति में राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् वे अयोग्यताएँ उत्पन्न हो जाती हैं तो वह सदस्यता से वंचित कर दिया जायगा।

अवधि—राज्यसभा एक स्थायी सदन है जो कभी भंग नहीं होता। उसके सदस्य 6 वर्ष के लिए चुने जाते हैं और 1/2 सदस्य दो वर्ष पश्चात् सेवा-निवृत्त कर दिए जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्यों का चुनाव होता है।

गणपूर्ति—राज्यसभा की गणपूर्ति या कोरम समस्त संख्या का 10वाँ भाग होता है। किसी भी कार्यवाही के लिए कुल सदस्यों की संख्या का 1/10 भाग सदन में होना आवश्यक है।

राज्यसभा के पदाधिकारी—राज्यसभा की कार्यवाही के संचालन के हेतु एक सभापति (चेयरमैन) तथा एक उपसभापति होता है। भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन राष्ट्रपति होता है। उपसभापति का निर्वाचन राज्यसभा अपने सदस्यों में से करती है और सभापति की अनुपस्थिति में अथवा उसके राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने पर वह सभापति के पद के कर्तव्यों को पूरा करता है। उपसभापति का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। सदस्यों का बहुमत न प्राप्त होने पर उपसभापति को हटाया जा सकता है। परन्तु इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के पूर्व 14 दिन पूर्व सूचना देनी होती है।

राज्यसभा का सभापति सदन की बैठकों का सभापतित्व करता है, सदस्यों को बोलने अथवा बैठ जाने की अनुमति प्रदान करता है, वाद-विवादों की व्यवस्था करता है, औचित्य के प्रश्नों पर निर्णय देता है तथा किसी वाद के उत्पन्न होने पर उस पर अपना निर्णय देता है।

लोकसभा की संरचना (Composition of the House of People)

लोकसभा संसद का निचला सदन है जिसमें सर्व-साधारण के द्वारा निर्वाचित सदस्य आते हैं। संविधान में इस बात का उल्लेख है कि लोकसभा के अधिकतम सदस्यों की संख्या 525 होगी। इनमें से अधिक से अधिक 500 निर्वाचित होंगे और 25 सदस्य केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। लोकसभा के सदस्यों की नियुक्ति भारतीय जनता वयस्क मताधिकार के आधार पर करती है।

लोकसभा में 77 स्थान अनुसूचित जातियों के हेतु और 27 स्थान अनुसूचित आदिम जातियों के हेतु सुरक्षित हैं।

लोकसभा के सदस्यों के निर्वाचन के हेतु प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये हैं। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य कम से कम 3 लाख और अधिक से अधिक 7 1/2 लाख जनता का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार लोकसभा जनता के प्रतिनिधियों का सदन है जिनका चुनाव जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है। वर्तमान समय में लोकसभा में विभिन्न राज्यों के निम्नलिखित सदस्य हैं :—

(1) आन्ध्र प्रदेश	41
(2) आसाम	14
(3) बिहार	53
(4) गुजरात	24
(5) हरियाना	9
(6) जम्मू-कश्मीर	6
(7) केरल	19
(8) मध्य प्रदेश	37
(9) मद्रास	39
(10) महाराष्ट्र	45
(11) मैसूर	27
(12) नागालैंड	1
(13) उड़ीसा	20
(14) पंजाब	13
(15) राजस्थान	23
(16) उत्तर प्रदेश	85
(17) पश्चिमी बंगाल	40
(18) अंडमन निकोबार द्वीप समूह	1
(19) चण्डीगढ़	1
(20) दादरा, नगरहवेली	1
(21) दिल्ली	7
(22) गोवा-डामन-ड्यू	2
(23) हिमाचल प्रदेश	6
(24) लकादीप मिनकाय (अमिन्दी द्वीप समूह)	1
(25) मणिपुर	2
(26) पाण्डिचेरी	1
(27) त्रिपुरा	2
(28) उत्तर-पूर्व सीमान्त प्रदेश	1
(29) ऐंग्लो इण्डियन (नमित)	2
	523

सदस्यों की योग्यताएं—लोकसभा की सदस्यता के लिए उम्मीदवार होने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए :—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

(3) संसद द्वारा निर्धारित अन्य सभी योग्यताएँ रखता हो।

निम्नलिखित व्यक्ति लोकसभा के सदस्य नहीं निर्वाचित हो सकते हैं :—

(1) भारत सरकार द्वारा राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ का पद धारण करने वाले व्यक्ति (भारतीय संघ के मन्त्रियों या किसी अन्य राज्य के मन्त्रियों पर यह प्रतिवन्ध नहीं होता)।

(2) वे व्यक्ति जिन्हें किसी न्यायालय ने पागल करार कर दिया हो या अनुन्मुक्त दिवालिया घोषित कर दिया गया हो।

(3) वे व्यक्ति जिन्होंने अपनी स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर ली हो या उनकी राजभक्ति किसी अन्य देश के प्रति हो अथवा किसी अन्य देश के प्रति उनका लगाव हो।

(4) वे व्यक्ति जिन्हें संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अन्तर्गत अयोग्य ठहरा दिया गया हो।

लोकसभा का कार्य-काल—सामान्यतः लोकसभा का कार्य-काल 5 वर्ष रहता है। इस बीच में राष्ट्रपति लोकसभा भंग कर सकता है, परन्तु वह यह कार्य तभी कर सकेगा जव उसे पूर्ण विश्वास हो जाय कि लोकसभा में जनता के प्रतिनिधियों का अभाव है। इसी प्रकार साधारणतया लोकसभा के कार्य-काल को बढ़ाया नहीं जा सकता परन्तु संकट-कालीन स्थिति की घोषणा किये जाने पर लोकसभा अपने कार्य-काल को एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है। लगातार संकट-कालीन स्थिति बनी रहने पर लोकसभा अपने कार्य-काल को एक-एक वर्ष के लिए तीन वार बढ़ा सकती है।

गणपूर्ति या कोरम—साधारणतया वर्ष में दो वार लोकसभा का अधिवेशन होता है इन अधिवेशनों को आमन्त्रित करने और भंग करने का अधिकार राष्ट्रपति का होता है। लोकसभा की कार्यवाही के हेतु कुल सदस्यों की संख्या का 1/10 भाग सदन में होना आवश्यक है।

लोक-सभा के पदाधिकारी—लोकसभा अपने सदस्यों में से एक को अध्यक्ष तथा एक अन्य को उपाध्यक्ष चुनती है। अध्यक्ष सभी अधिवेशनों का सभापतित्व करता है और सभा के कार्य का सञ्चालन करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में

उपाध्यक्ष उसके कार्यों को पूर्ण करता है। अध्यक्ष की नियुक्ति, योग्यता और कार्यों आदि की चर्चा इसी अध्याय के अन्य प्रश्न में की गई है।

सदस्यों की शपथ—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है संसद से हमारा तात्पर्य लोकसभा और राज्यसभा दोनों से है। लोकसभा अथवा राज्यसभा का सदस्य नियुक्त होने पर किसी व्यक्ति को राष्ट्रपति अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होती है—

"मैं ......अमुक...... जो लोकसभा (अथवा राज्यसभा) का सदस्य निर्वाचित (या नामजद) हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ, (या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ, उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा।"

संसद की सदस्यता-सम्बन्धी मर्यादा—कोई भी व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य एक साथ नहीं होता। यदि वह दोनों में निर्वाचित हो जाता है तो उसे एक सदन की सदस्यता छोड़नी पड़ती है। कोई भी व्यक्ति राज्य के विधानमण्डल और संसद के किसी सदन का सदस्य एक साथ नहीं हो सकता। दोनों में निर्वाचित होने पर उसे एक की सदस्यता छोड़नी ही पड़ेगी। यदि कोई सदस्य सदन की आज्ञा के बिना लगातार 60 दिन तक अनुपस्थित रहता है तो उसे सदन की सदस्यता से वंचित कर दिया जाता है।

यदि किसी व्यक्ति को संसद अपनी सदस्यता से वंचित कर देती है अथवा कोई ऐसा व्यक्ति जो संसद का सदस्य नहीं है, संसद में बैठता और मत देता है तो जितने दिन वह इस प्रकार कार्य करता है उसे 500 रुपया प्रतिदिन के हिसाब से दंड देना पड़ेगा।

संसद के सदस्यों के वेतन एवं विशेषाधिकार—राज्यसभा और लोकसभा दोनों ही सदनों के सदस्यों को संसद के द्वारा बनाये गये कानून के अनुसार वेतन एवं भत्ता प्राप्त होता है। आजकल दोनों सदनों के प्रत्येक सदस्य को 500 रु० प्रतिमाह वेतन मिलता है। इसके साथ ही प्रत्येक बैठक में जिसमें कि वह उपस्थित रहता है 4। रुपये दैनिक भत्ता मिलता है। साथ ही संसद सदस्यों को रेलवे का भी पास भी मिलता है जिससे कि वे देश के किसी भी भाग में भ्रमण कर सकते हैं। संसद के प्रत्येक सदस्य को नियमों और आदेशों का पालन करते हुये संसद में भाषण देने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। संसद अथवा उसकी किसी समिति में कही हुई बात के लिए किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त सदस्यों को अन्य विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं, जो संसद समय-समय पर निश्चित करती है।

इस प्रकार भारतीय संसद के निर्माण एवं संरचना में संविधान के निर्माताओं ने जिस सूझ-बूझ का परिचय दिया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। संविधान-निर्माताओं ने हर पहलू पर पूर्णतया विचार करके ऐसे नियम बनाये हैं जिनसे समस्त कार्यवाही सुचारु रूप से चलती रहती है।

संसद की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of the Parliament)

भारतीय संसद अत्यन्त शक्तिशाली है परन्तु उसकी शक्ति असीमित या मर्यादित सम्प्रभु की नहीं है। संविधान में इस प्रकार के कुछ ऐसे अवरोध और सन्तुलन लगाये गये हैं जिनसे वह अपरिमित शक्ति का उपभोग नहीं कर पाती। यद्यपि ब्रिटिश संसद की भाँति भारतीय संसद सम्प्रभु नहीं है परन्तु उसको अशक्त कहना उचित न होगा। कुछ विशिष्ट मामलों को छोड़कर समस्त मामलों में संसद अत्यन्त शक्तिशाली संस्था है। यहाँ हम संसद के विभिन्न अधिकारों एवं कार्यों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं।

(1) विधायिनी अथवा कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार—जनतंत्रात्मक सरकार में जनता के प्रतिनिधि ही कानून बनाते हैं, अतएव भारतीय संसद को कानून बनाने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान में विधि-निर्माण की दृष्टि से समस्त विषयों को तीन भागों में विभाजित कर दिया गया है। प्रथम कोटि के विषय संघ सूची के अन्तर्गत आते हैं। इसमें 97 विषय हैं। द्वितीय कोटि के विषय राज्य सूची के अन्तर्गत रखे गये हैं जिनकी संख्या 47 है।

(अ) सङ्घ सूची के विषय—भारतीय सुरक्षा, आणविक शक्ति, युद्ध और शान्ति आदि विषय संघ सूची के अन्तर्गत आते हैं। इन विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का संसद को पूर्ण अधिकार है। किसी भी प्रदेश की सरकार इन विषयों के सम्बन्ध में कानून नहीं बना सकती वरन् संसद द्वारा बनाए गए कानून को ही प्रत्येक व्यक्ति को मानना होगा।

(ब) राज्य सूची के विषय—जैसा कि नाम से स्पष्ट है राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों को होता है और अधिकतर राज्यों के विधानमण्डल ही इन पर कानून बनाते हैं। परन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में संसद राज्य सूची के सम्बन्ध में भी कानून बना सकती है। यदि राज्य-सभा (Council of States) अपनी उपस्थिति और मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से यह निश्चित कर दे कि राष्ट्रीय हित में संसद को राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बनाना चाहिये तो संसद उस पर कानून बना सकती है। राष्ट्रपति द्वारा सङ्कटकालीन स्थिति की घोषणा कर दिये जाने पर संसद राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधान-मण्डल यह

निश्चित कर दें कि किसी मामले पर संसद या किसी राज्य सूची के मामले पर कानून बनाना चाहिए तो संसद ऐसा कर सकती है।

(ग) समवर्ती सूची के विषय—समवर्ती सूची के विषयों पर राज्यों के विधान-मण्डल और संसद दोनों ही कानून बना सकते हैं। परन्तु वह कानून जो संसद द्वारा बनाया गया, राज्य द्वारा बनाये गये कानून के विरुद्ध मान्य होगा। हाँ, यदि राज्य द्वारा बनाए गए किसी नियम पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो चुके हैं तो वही नियम मान्य होगा।

(2) प्रशासनीय या शासन-सम्बन्धी अधिकार—संसद का काम यह भी है कि वह देखे कि जिन कानूनों का निर्माण उसने किया है उन कानूनों का यथाविधि पालन हो रहा है अथवा नहीं। कार्यपालिका उसके द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार काम कर रही है अथवा नियमों का उल्लंघन कर रही है। केन्द्रीय कार्यपालिका की शक्ति मन्त्रि-परिषद् में निहित है और मन्त्रि-परिषद् के संगठन में संसद महत्वपूर्ण योगदान देती है। दल में किस दल का बहुमत होगा उसका निर्णय संसद ही कर सकती है क्योंकि संसद के बहुमत दल का नेता ही प्रधानमन्त्री बनाया जाता है।

संसद, मन्त्रि-परिषद् और कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। कार्यपालिका पर अंकुश रखने के लिए विभिन्न तरीके काम में लाए जाते हैं। उनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(क) अविश्वास का प्रस्ताव—यदि संसद यह देखती है कि मन्त्रि-परिषद् उसके द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार कोई काम नहीं कर रही है, अथवा ऐसा कार्य कर रही है जो जनता के हित में नहीं है, तो वह मन्त्रि-परिषद् के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उसके अस्तित्व को समाप्त कर सकती है।

(ख) निन्दा का प्रस्ताव एवं कामरोको प्रस्ताव—यदि संसद मन्त्रि-परिषद् के किसी कार्य से सहमत नहीं होती तो वह उसके प्रति निन्दा का प्रस्ताव पारित कर सकती है। संसद में उठाया गया कामरोको प्रस्ताव भी कार्यपालिका के लिए एक सरदर्द बन जाता है।

(ग) सरकारी कार्यों की छानबीन और आदेश—संसद किसी भी सरकारी काम की छानबीन का आदेश दे सकती है और उसकी जाँच के हेतु किसी कमेटी को नियुक्त कर सकती है।

(घ) बजट की आलोचना—संसद सम्पूर्ण बजट अथवा उसके किसी भी भाग की कड़ी आलोचना करके मन्त्रि-परिषद् को कुछ परिवर्तन के हेतु बाध्य कर सकती है।

(ङ) सरकारी विधेयकों पर वाद-विवाद का अधिकार—सरकार द्वारा

रखे गये किसी विधेयक की आलोचना करके भी संसद मन्त्रि-परिषद् को प्रभावित कर सकती है। यदि संसद चाहे तो उस विधेयक को अस्वीकृत भी कर सकती है।

(च) विरोधी दलों द्वारा अंकुश—संसद में सरकार-विरोधी सदस्य सरकार के कार्यों की तीखी आलोचना करते हैं। यदि उन्हें सरकार की कोई भी गलती दिख जाती है तो वे उस त्रुटि को इतने स्पष्ट रूप में संसद के सामने रखने का प्रयत्न करते हैं कि कभी-कभी बहुत से सरकारी सदस्य उनसे सहमत हो जाते हैं।

(छ) प्रश्न पूछने का अधिकार—प्रश्नोत्तर-काल में विरोधी सदस्य शासन की नीति और कार्य-सम्बन्धी ऐसे प्रश्न प्रस्तुत करते हैं जिनका उत्तर मन्त्रियों को देना दुष्कर हो जाता है। इस प्रकार के प्रश्न कभी-कभी सरकारी सदस्यों द्वारा भी पूछे जाते हैं। ये प्रश्न भी मन्त्रि-परिषद् पर अंकुश का कार्य करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसद कार्यपालिका पर भी अपना अंकुश रखती है और इसी कारण उसे एक शक्तिशाली संस्था कहा गया है।

(3) राजस्व-सम्बन्धी अथवा आर्थिक अधिकार—आर्थिक क्षेत्र में भी संसद को काफी अधिकार प्राप्त हुए हैं। आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि संसद का निचला सदन (लोकसभा) उच्च सदन (राज्यसभा) की अपेक्षा कहीं अधिक बलशाली है। संविधान में लिखा है—"कोई धन विधेयक राज्यसभा में पेश नहीं हो सकता। धन विधेयक केवल लोकसभा में पेश हो सकता है, और लोकसभा जब किसी धन विधेयक को पास कर चुकती है तभी वह राज्यसभा के पास उसकी सिफारिशों के लिए भेजा जाता है। राज्यसभा धन विधेयक को 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती।"

राष्ट्रीय आय-व्यय या बजट को स्वीकृत करने का अधिकार संसद को ही है। संसद बजट को स्वीकार भी कर सकती है और अस्वीकार भी। केन्द्रीय सरकार वित्त-मन्त्री प्रतिवर्ष राष्ट्रपति की सिफारिशों के साथ राष्ट्रीय बजट को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करता है। बजट में आय-व्यय के अनुमान के सम्बन्ध में दो तरह की रकमें दिखलाई जाती हैं—भारत की सञ्चित निधि से सम्बन्धित और अन्य मदों से सम्बन्धित। सञ्चित निधि में राष्ट्रपति, लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश आदि के वेतन, और भत्ते आदि सम्मिलित होते हैं। बजट के इस भाग पर संसद में केवल बहस हो सकती है, मतदान नहीं। इन मदों में संसद को कटौती करने का अधिकार नहीं है। इस सञ्चित निधि के व्यय के अतिरिक्त संसद किसी भी खर्च को रोक सकती है। वह नए कर लगाने जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसद को राजस्व-सम्बन्धी भी पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं।

(4) संविधान में संशोधन करने का अधिकार—विशेष परिस्थितियों में संसद को यह अधिकार भी प्राप्त होता है कि वह संविधान की किसी धारा में संशोधन कर दे। संविधान में इस बात का स्पष्ट आदेश है कि संसद ही संविधान के संशोधन की अधिकारिणी है। संशोधन की दृष्टि से विभिन्न विषयों को तीन कोटियों में बाँटा जा सकता है—प्रथम कोटि में वे विषय हैं जिनमें संसद कोई संशोधन नहीं कर पाती, जैसे कि नागरिकों के मूलाधिकार आदि। हाँ, इन मूलाधिकारों आदि को स्थगित करने का अधिकार अवश्य ही संसद को है। दूसरी कोटि में वे विषय आते हैं जिनमें संशोधन के लिए राज्यों की स्वीकृति अनिवार्य है। तीसरी कोटि के विषयों में संसद अपनी स्वेच्छा से संशोधन कर सकती है। इस कोटि के विषयों में भी संशोधन के हेतु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि संसद के दोनों सदनों की कुल संख्या का बहुमत एवं उपस्थित मतदान देने वाले दो तिहाई सदस्यों का बहुमत जब संविधान की किसी धारा में संशोधन का प्रस्ताव पारित करे तभी वह संशोधन हो सकेगा।

(5) निर्वाचन का अधिकार—राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार भी संसद को है। राष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद एवं राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं। उप-राष्ट्रपति का चुनाव केवल संसद के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है।

(6) अन्य अधिकार—उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त संसद को अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं। राष्ट्रपति पर किए जाने वाले दोषारोपण या महाभियोग की जाँच संसद ही करती है। संसद के एक सदन में राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जाता है और दूसरा सदन उसकी जाँच करता है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों एवं महानियन्त्रक परीक्षक को हटाने का अधिकार भी संसद को है। अधिकारियों एवं सदस्यों आदि की योग्यता, वेतन और भत्ते आदि का निर्धारण भी संसद ही करती है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संसद अत्यन्त शक्तिशाली है। संविधान द्वारा उसे विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं। परन्तु भारतीय संसद के अधिकार ब्रिटेन की संसद की अपेक्षा कम हैं। यही कारण है कि एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "भारतीय संसद को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं परन्तु वह सर्वोच्च नहीं है। इस देश में सर्वोच्च सत्ता संविधान की ही है। ब्रिटेन की संसद की भाँति वह स्वेच्छाचारिणी नहीं है।"

लोकसभा और राज्यसभा की शक्तियों की तुलना

(Comparison of the powers of House of Peoples and Council of States.)

प्रश्न—लोकसभा और राज्यसभा की शक्तियों की तुलना कीजिए।

(Compare and Contrast the powers of House of Peoples and Council of States.)

हमने पहले ही इस बात का उल्लेख किया है कि भारतीय संसद के दो सदन होते हैं—उच्च सदन को राज्यसभा कहते हैं और निम्न सदन को लोकसभा के नाम से पुकारा जाता है। राज्यसभा और लोकसभा को मिलाकर ही संसद के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि राज्यसभा लोकसभा की अपेक्षा कम शक्तिशाली होती है परन्तु बहुत से ऐसे कार्य हैं जो राज्यसभा और लोकसभा को सम्मिलित रूप से करने होते हैं। भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा और लोकसभा दोनों के सदस्य समान रूप से भाग लेते हैं। राष्ट्रपति पर दोनों सदनों में से किसी भी सदन के सदस्य महाभियोग लगा सकते हैं। यदि वह सदन अपने दो तिहाई बहुमत से महाभियोग के प्रस्ताव को पारित कर देता है तो दूसरा सदन उस पर जाँच-पड़ताल करता है। जब जाँच-पड़ताल करने वाला सदन भी उस पर दो तिहाई बहुमत से अपनी स्वीकृति दे देता है तब राष्ट्रपति को पदच्युत किया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रपति को पदच्युत करने के क्षेत्र में राज्यसभा और लोकसभा दोनों को बराबर के अधिकार प्राप्त हैं।

उप-राष्ट्रपति पद के चुनाव में भी लोकसभा और राज्यसभा दोनों के ही सदस्यों को समान रूप से भाग लेने का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए भी दोनों सदनों का दो तिहाई बहुमत होना आवश्यक है। आपातकालीन स्थिति की उद्घोषणा की स्वीकृति भी दोनों सदनों द्वारा की जानी आवश्यक है और इस सम्बन्ध में भी दोनों सदनों को बराबर अधिकार प्राप्त हैं।

यह ठीक है कि कुछ क्षेत्रों में राज्यसभा और लोकसभा के सदस्य बराबर अधिकारों का उपभोग करते हैं परन्तु संविधान में संशोधन, कानून का निर्माण, और प्रशासन पर नियन्त्रण आदि के क्षेत्र में लोकसभा, राज्यसभा से कहीं अधिक विस्तृत अधिकार रखती है।

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि लोकसभा जनता का सदन है अतएव समस्त कार्यों में लोकसभा की प्रमुखता होना स्वाभाविक ही है। संविधान के निर्माताओं की यह इच्छा भी थी कि राज्यसभा लोकसभा की अपेक्षा कमजोर सदन रहे और इस कारण उन्होंने राज्यसभा को उन शक्तियों से विभूषित नहीं किया जिन शक्तियों से

लोकसभा को विभूषित किया। यहाँ हम लोकसभा और राज्यसभा की शक्तियों में अंतर के विषय में संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों की तुलना—ऊपर हमने संसद की शक्तियों की चर्चा करते हुए लिखा है कि भारतीय संसद को संघीय सूची के विषयों में कानून बनाने का अधिकार है। विशिष्ट परिस्थितियों में संसद राज्य सूची के विषयों में भी कानून बना सकती है। संसद के इन कार्यों को वास्तव में लोकसभा ही करती है। राज्यसभा को व्यावहारिक रूप में इस सम्बन्ध में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं होता। राज्यसभा लोकसभा के कार्यों में केवल देर लगा सकती है। जब कोई साधारण विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होकर राज्यसभा के सम्मुख आता है और राज्यसभा उसे अस्वीकार कर देती है या उसे 6 महीने पारित नहीं करती या उसमें कुछ ऐसे संशोधन कर देती है जिनसे लोकसभा सहमत नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों का सम्मिलित अधिवेशन उस विधेयक पर विचार और मतदान करने के हेतु बुलाता है। स्वाभाविक है कि लोकसभा द्वारा पारित किया गया विधेयक इस सम्मिलित अधिवेशन में अवश्य ही स्वीकृत हो जाएगा, क्योंकि लोकसभा के सदस्यों की संख्या राज्यसभा के सदस्यों की संख्या से काफी अधिक होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण विधेयक के सम्बन्ध में राज्यसभा कोई भी निषेधाधिकार नहीं रखती और उसे लोकसभा के सम्मुख झुकना ही पड़ता है। यह अवश्य है कि किसी विधेयक के पारित होने में राज्यसभा कुछ देर लगा सकती है।

वित्तीय विधेयक के सम्बन्ध में तो लोकसभा की शक्तियाँ राज्यसभा की शक्तियों से बहुत अधिक हैं। वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। लोकसभा का सभापति इस बात का निर्णय करता है कि कौन सा विधेयक वित्तीय विधेयक है। लोकसभा जब किसी वित्तीय विधेयक को पारित करके राज्यसभा के पास उसकी सिफारिश के लिए भेजती है तो राज्यसभा को अपनी सिफारिश सहित उस विधेयक को लोकसभा को 14 दिन के अन्दर लौटा देना होता है। यदि राज्यसभा उक्त विधेयक को 14 दिन के अन्दर अपनी सिफारिश सहित लोकसभा को वापस नहीं करती या ऐसी सिफारिश करती है जो लोकसभा को मान्य नहीं है तो लोकसभा की इच्छा ही सर्वोपरि होगी। अनुदान सम्बन्धी माँग या बजट आदि लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और सरकार के व्यय की स्वीकृति का अधिकार केवल लोकसभा को ही होता है। इस सम्बन्ध में राज्य सभा को कोई अधिकार नहीं रहता।

(2) प्रशासकीय अधिकारों की तुलना—यदि हम प्रशासकीय अधिकारों की दृष्टि से भी देखें तो राज्यसभा लोकसभा की अपेक्षा

राज्यसभा के सदस्यों को कार्यपालिका के सदस्यों से प्रश्न पूछने और उनकी आलोचना करने का अधिकार होता है परन्तु वह मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उसे पदच्युत करने का अधिकार नहीं रखती। मन्त्रि-परिषद् को पदच्युत करने का अधिकार केवल लोकसभा को ही है। लोकसभा यदि मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देती है तो अवश्य ही त्याग-पत्र देना होता है। दूसरी ओर यदि राज्यसभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करती है तो मन्त्रि परिषद् को त्याग-पत्र नहीं देना होता है। मन्त्रि-परिषद् केवल लोकसभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है।

(3) संविधान-संशोधन कार्यों की तुलना—राज्यसभा और लोकसभा को संविधान में संशोधन करने का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक दोनों सदनों के उपस्थित सदस्यों के बहुमत और सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए। यदि संविधान में संशोधन करने वाले किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाए तो किस उपाय को अपनाया जाएगा इस सम्बन्ध में संविधान में कुछ भी नहीं लिखा है। परन्तु भारत के उच्चतम न्यायालय ने 'शंकरी प्रसाद बनाम भारत सरकार' वाले मुकदमे में यह फैसला दिया कि यदि कभी संविधान में संशोधन के सम्बन्ध में दोनों सदन में मतभेद हो जाय तो यह मतभेद उसी प्रकार सुलझाया जायगा जिस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 10 के अनुसार सामान्य विधेयक के सम्बन्ध में उत्पन्न विरोध को सुलझाया जाता है। इसका अर्थ यह होगा कि दोनों सदनों का सम्मिलित अधिवेशन होगा। सम्मिलित अधिवेशन होने पर राज्यसभा प्रायः शक्तिहीन हो जाती है क्योंकि उसके सदस्यों की संख्या लोकसभा के सदस्यों की संख्या से बहुत कम होती है और इस प्रकार संविधान में संशोधन के क्षेत्र में भी लोकसभा को राज्यसभा से अधिक अधिकार प्राप्त होंगे।

राज्यसभा शक्तिहीन है और लोकसभा सत्ताधारी—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा अत्यन्त शक्तिहीन है। सत्य तो यह है कि राज्यसभा को वह स्थान भी प्राप्त नहीं है जो अन्य संघीय व्यवस्था वाले देशों में द्वितीय सदन को प्राप्त होता है। संघात्मक शासन-व्यवस्था में उच्च सदन में सभी राज्यों को समान 'प्रतिनिधित्व' जनसंख्या और आकार का विचार किए बिना दिया जाता है। किन्तु राज्यसभा में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं होते। यही नहीं राज्यसभा राज्यों की हित-रक्षिका भी नहीं है। यदि लोकसभा राज्यों के हितों की अवहेलना करे तो राज्य न्यायालय की शरण में ही जाएँगे। राज्यसभा लोकसभा को किसी भी प्रकार राज्यों के हितों की अवहेलना न करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। इससे स्पष्ट है कि लोकसभा सर्वसत्ताधारी है और राज्यसभा अत्यन्त शक्तिहीन है। परन्तु इसका

अर्थ यह है कि भारत में राज्यसभा की स्थिति उतनी ही दयनीय है जितनी कि चतुर्थ फ्रांसीसी गणराज्य के उच्च सदन की थी। यह ठीक है कि राज्यसभा लोकसभा की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर पाती परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि राज्यसभा में कुछ ऐसे सदस्य भी पहुँचते हैं जो अपने विचारों से मन्त्रि-परिषद् को अवश्य ही प्रभावित करते हैं। यह तर्क देना कि राज्यसभा प्रतिक्रिया का गढ़ है और इसको समाप्त कर देना चाहिये, उचित नहीं है। वास्तव में यदि राज्य-सभा को भंग कर दिया जायेगा तो लोकसभा जल्दीबाजी में कुछ ऐसे काम कर सकती है जो राष्ट्र-हित के विरुद्ध हो। राज्यसभा लोकसभा पर अंकुश रखती है और इस कारण उसका महत्व बना हुआ है। इसलिए यह आवश्यक है कि राज्यसभा में वही व्यक्ति पहुँचें जो काफी योग्य और अनुभवी हों चाहें, राजनीतिक दलों में उनका स्थान गौण हो।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकसभा की शक्तियाँ राज्यसभा की शक्तियों को देखते हुए बहुत अधिक हैं, परन्तु फिर भी राज्यसभा का कुछ न कुछ अपना महत्व अवश्य ही है।

संसद की विधि-निर्माण एवं वित्त सम्बन्धी प्रक्रिया

(Legislative and Financial Procedure of the Parliament)

प्रश्न—भारतीय संसद की विधि-निर्माण सम्बन्धी और वित्तीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about the Legislative and Financial Procedure of the Indian Parliament ?)

विधि-निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

भारतीय संविधान में इस बात का विस्तृत उल्लेख नहीं है कि किसी भी विधेयक को पारित करने के लिए दोनों सदनों द्वारा किस प्रकार की प्रक्रिया अपनायी जायगी। संविधान में यह भी कहीं नहीं लिखा है कि कोई सामान्य विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और वह तब तक पारित हुआ नहीं माना जायगा जब तक कि दोनों सदन उस पर अपनी स्वीकृति न दे दें। परन्तु परम्परा यह बन गई है कि कोई भी साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और उसके पारित होने के लिए संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक होती है।

कुछ विषयों से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी सदन में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते, जैसे कि राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने से सम्बन्धित विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होती है। प्रत्येक विधे-

यक के सामान्यता 3 वाचन होते हैं और उसे संसद के प्रत्येक सदन में 5 स्तर पार करने होते हैं तभी वह संसद के किसी सदन द्वारा पारित होता है।

प्रथम वाचन—साधारणतया किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए एक माह की नोटिस देनी होती है। जो सदस्य किसी विधेयक को प्रस्तुत करना चाहता है उसे इस सम्बन्ध में सदन की आज्ञा (Leave of Introduce) लेनी होती है। साधारणतया उसे यह आज्ञा मिल जाती है परन्तु कभी-कभी आज्ञा नहीं भी दी जाती। इस प्रकार की आज्ञा मिल जाने पर विधेयक को प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति उस विधेयक के सम्बन्ध में भाषण भी दे सकता है और इस स्थिति में विधेयक के विरोधी सदस्यों को भी अपना मत व्यक्त करने का अवसर मिलता है। यह स्तर ही विधेयक का प्रथम वाचन कहलाता है और इसके बाद उसे सरकारी गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है। जब कभी अध्यक्ष किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के पूर्व ही उसे गजट में प्रकाशित करने की आज्ञा दे दे तो पुनः इस प्रकार के प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं होती है।

द्वितीय वाचन—तत्पश्चात् किसी निश्चित दिन विधेयक का द्वितीय वाचन प्रारम्भ होता है। विधेयक का प्रस्तावक सदस्य निम्न प्रस्तावों में से कोई भी एक प्रस्ताव रख सकते हैं—

(1) विधेयक पर सदन तुरन्त विचार करे।

(2) विधेयक प्रवर समिति में भेज दिया जाय।

(3) विधेयक को घुमाया जाय और उस पर जनमत संग्रह कराया जाय।

साधारणतया अत्यावश्यक अथवा विवाद रहित विधेयकों को छोड़ कर अन्य विधेयकों पर तुरन्त विचार नहीं होता है। समाज-सुधार सम्बन्धी विधेयक जनमत जानने के हेतु प्रसारित किए जाते हैं परन्तु अधिकतर विधेयक प्रवर समिति में विचार करने के लिए भेजे जाते हैं।

उपर्युक्त प्रस्तावों में से कोई सा प्रस्ताव प्रस्तुत होने पर सदन में विधेयक के मूल सिद्धान्तों पर वाद-विवाद प्रारम्भ होता है। विधेयक का प्रस्तावक प्रस्तावित विधेयक की आवश्यकता और महत्व को स्पष्ट रूप में समझाता है। परन्तु इस समय विधेयक पर न तो विस्तारपूर्वक विचार होता है और न विधेयक के सम्बन्ध में संशोधन ही प्रस्तुत किया जा सकता है। उसकी धारा-प्रतिधारा पर मतदान भी नहीं होता। इस समय तो समूचे विधेयक पर विचार किया जाता है।

समिति स्तर—यदि सदन विधेयक को प्रवर समिति में भेजने से सम्बन्धित प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो उसके हेतु एक समिति नियुक्त कर दी जाती है, इस समिति में अन्य सदस्यों के अतिरिक्त दो सदस्यों का होना आवश्यक है—एक तो

विधेयक का प्रस्तावक और दूसरा विधि-सदस्य भी पदेन प्रवर समिति का सदस्य हो। सदन का अध्यक्ष सदस्यों में से किसी एक को प्रवर समिति का चेयरमैन नियुक्त कर देता है। इस समिति को विधेयक की प्रत्येक धारा पर अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने का अधिकार होता है। यह समिति किसी भी व्यक्ति को अपने सम्मुख बुला सकती है। समिति को आवश्यकतानुसार विधेयक में संशोधन करने का भी अधिकार होता है। प्रवर समिति के लिए यह आवश्यक है कि 3 माह के अन्दर या सदन द्वारा निश्चित कालावधि के अन्दर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।

प्रतिवेदन स्तर—इस स्तर पर प्रवर समिति का प्रतिवेदन सदन के सचिव के आदेश से प्रकाशित कराया जाता है और उसकी मुद्रित प्रतियाँ सभी सदस्यों को दे दी जाती हैं। जब सदन में प्रवर समिति के द्वारा विचार किए गए विधेयक को प्रस्तुत किया जाता है तो विधेयक के प्रस्तावक को यह प्रस्ताव रखने का अधिकार होता है कि प्रवर समिति द्वारा प्रतिनिर्वेदित विधेयक पर विचार किया जाय या उसे पुनः प्रेषित समिति के पास भेजा जाय अथवा उसे प्रतिनिर्वेदित रूप में जनमत संग्रह के लिए प्रेषित कर दिया जाय। यदि सदन प्रतिनिर्वेदित विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो उसके प्रत्येक शब्द पर विचार विमर्श प्रारम्भ हो जाता है। इस स्तर पर संशोधन भी प्रस्तुत किए जाते हैं। पहले संशोधनों पर वाद-विवाद होता है और फिर उस पर मत लिए जाते हैं। यह स्तर अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है और इस स्तर पर ही किसी विधेयक का भविष्य निर्भर करता है। यदि इस स्तर पर विधेयक अस्वीकृत हो जाता है तो वह गिर जाता है। विधेयक के एक-एक अनुच्छेद पर स्वीकृति अथवा अस्वीकृति इस स्तर पर ही दी जाती है। इस स्तर को पार करने के पश्चात् विधेयक पारित हुआ समझा जा सकता है।

तृतीय वाचन—प्रतिवेदन स्तर के विचार-विमर्श के पश्चात् कोई विधेयक तृतीय वाचन के स्तर पर पहुँच जाता है। किसी निश्चित दिन सदन में विचारार्थ यह विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। यह वाचन मुख्यतया औपचारिक ही होता है क्योंकि इस स्तर पर विधेयक में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया जा सकता क्योंकि इस स्तर पर केवल विधेयक के अस्पष्ट शब्दों को स्पष्ट करने के लिए भाषा सम्बन्धी सुधार प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इस स्तर पर विधेयक के सम्बन्ध में पुनः मत लिए जाते हैं। तत्पश्चात् अध्यक्ष द्वारा यह घोषित कर दिए जाने पर कि विधेयक पारित हो गया उसे दूसरे सदन में पारित होने के लिए भेज दिया जाता है।

यदि दूसरे सदन में भी उपर्युक्त रीति से उसे पारित कर दिया जाता तो विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकार भी कर सकता है और अपनी सम्मति से रोक भी सकता है। यदि वह

तो वह उसे संसद को पुनर्विचार के लिए भेज सकता है अथवा वह विधे करने का प्रस्ताव भी रख सकता है। संसद राष्ट्रपति के द्वारा भेजे ग फिर विचार करती है और उसे यह पूर्ण अधिकार होता है कि वह विधे पति के संशोधन सहित अथवा संशोधन रहित पास कर दे। संसद जब उसे पुनः राष्ट्रपति के पास भेज देती है तो राष्ट्रपति को उक्त विधेयक स्वीकार करना होता है।

विवादग्रस्त विधेयक की संयुक्त बैठकें—यदि विधेयक पारित कर दिया जाता है परन्तु दूसरा सदन उसे अस्वीकृत कर देता संशोधनों सहित पारित करता है या उसे 6 महीने तक वापस नहीं लौट पति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है और दोनों सदन मिलक विचार और मतदान करते हैं। संयुक्त बैठक के लिए दोनों सदनों की 10वाँ भाग गणपूर्ति के लिए पर्याप्त है। इस संयुक्त बैठक में लोकस ही अध्यक्ष बनता है। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भी संशोधन सकते हैं, परन्तु इन संशोधनों पर आज्ञा देना भी अध्यक्ष का कार्य दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले स द्वारा विधेयक पारित हो जाता है तो उसे पारित मान लिया जाता है अस्वीकृत हो जाता है तो वह गिर जाता है। जैसे कि हमने पिछले किया है कि लोकसभा जिस विधेयक को चाहती है वह उसे पारित करा सभा के सदस्यों की संख्या राज्यसभा की संख्या से कहीं अधिक होती यदि राज्यसभा लोकसभा द्वारा पारित किए गए किसी विधेयक को अस् है तो दोनों सदनों की सम्मिलित बैठक में वह अवश्य ही पारित हो जा की धारा 108 में दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों का स्पष्ट विवरण दिय धारा को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(धारा 108) किन्हीं अवस्थाओं में दोनों सदनों

(1) यदि किसी विधेयक के एक सदन में पारित पहुँचाए जाने के पश्चात्—

(क) दूसरे सदन द्वारा वह विधेयक अस्वीकृत क

(ख) विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों असहमत हो चुके हैं, अथवा

(ग) विधेयक-प्राप्ति की तारीख से, बिना छः मास से अधिक बीत चुके हैं,

है, तो विधेयक पर पर्यालोचन करने और मत देने के प्रयोजन के लिए संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अभिप्राय की अधिसूचना सदनों को, यदि वे बैठक में हैं तो संदेश द्वारा, अथवा यदि बैठक में नहीं हैं तो लोक-अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति देगा।

परन्तु इस खण्ड में की कोई बात किसी धन विधेयक को लागू न होगी।

(2) ऐसी किसी छः मास की कालावधि की संगणना में, जो कि खण्ड (1) में निर्दिष्ट है किसी ऐसी कालावधि को सम्मिलित किया जायगा जिसमें उक्त खण्ड के उपखण्ड (ग) में निर्दिष्ट सदन सत्रावसित अथवा निरन्तर चार से अधिक दिनों के लिए स्थगित रहता है।

(3) सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशन के लिए आहूत करने के अभिप्राय को जब राष्ट्रपति खण्ड (1) के अधीन अधिसूचित कर चुका हो, तो कोई सदन विधेयक पर आगे कार्यवाही न करेगा, किन्तु राष्ट्रपति अधिसूचना की तारीख के पश्चात् किसी समय सदनों को अधिसूचना में उल्लिखित प्रयोजन के लिए संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत कर सकेगा तथा यदि वह ऐसा करता है तो सदन तदनुसार अधिवेशित होंगे।

(4) यदि सदनों की संयुक्त बैठक में विधेयक ऐसे संशोधनों सहित, यदि कोई हों, जिनको संयुक्त बैठक में स्वीकार कर लिया गया है, दोनों सदनों के उपस्थित तथा मत देने वाले समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो इस संविधान के प्रयोजनों के लिए वह दोनों सदनों से पारित समझा जायगा।

परन्तु संयुक्त बैठक में—

(क) यदि विधेयक एक सदन में पारित होकर दूसरे सदन द्वारा संशोधनों सहित पारित नहीं किया गया है तथा उस सदन को जिसमें वह आरम्भित हुआ था, लौटा नहीं दिया गया है तो ऐसे संशोधनों के सिवाय (यदि कोई हों) जो कि विधेयक के पारण में देरी के कारण आवश्यक हो गए हैं विधेयक पर कोई और संशोधन प्रस्थापित न किया जायगा।

(ख) यदि विधेयक इस प्रकार पारित और लौटाया जा चुका है तो विधेयक पर केवल ऐसे संशोधन जैसे कि ऊपर कथित हैं तथा ऐसे अन्य संशोधन, जो उन विषयों से सुसंगत हैं जिन पर सदनों में सहमति नहीं हुई है प्रस्थापित किया जाएगा और पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय कि इस खण्ड के अधीन कौन से संशोधन ग्राह्य हैं अन्तिम होगा।

(ग) सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अभिप्राय की राष्ट्रपति की अधिसूचना के पश्चात् यद्यपि लोकसभा का विघटन बीच में हो

चुका है तो भी, इस अनुच्छेद के अधीन संयुक्त बैठक हो सकेगी तथा उसमें विधेयक पारित हो सकेगा।

धन विधेयकों के बारे में विशिष्ट प्रक्रिया—धन विधेयकों के सम्बन्ध में एक विशिष्ट प्रक्रिया को अपनाया जाता है। धन विधेयक केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कौन-सा विधेयक धन विधेयक है और कौन सा नहीं, इस पर निर्णय देने का अधिकार लोकसभा के अध्यक्ष को होता है। लोकसभा द्वारा पारित हो जाने पर कोई भी धन विधेयक राज्यसभा के पास उसकी सिफारिशों के लिए जाता है। राज्यसभा को 14 दिन के अन्दर अपनी सिफारिशों सहित उस विधेयक को अवश्य ही लोकसभा को लौटा देना होता है यदि राज्यसभा ऐसा नहीं करती तो उक्त विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ समझा जाता है। यदि राज्यसभा 14 दिन के अन्दर अपनी सिफारिश सहित उस विधेयक को लोकसभा को लौटाती है तो उन सिफारिशों को मानने या न मानने की बात लोकसभा की इच्छा पर ही निर्भर करती है। उसके बाद वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझ लिया जाता है और उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेज दिया जाता है जो उसे देनी ही होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धन-विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा की इच्छा ही सर्वोपरि होती है। न तो राज्यसभा की सिफारिश का प्रभाव ही लोकसभा पर पड़ता है और न राष्ट्रपति को इन विधेयकों के सम्बन्ध में कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। इन विधेयकों पर लोकसभा का निर्णय ही अन्तिम निर्णय होता है।

संविधान की धारा 109 में इस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इस धारा में लिखा है :—

(1) राज्य-परिषद् में धन-विधेयक पुनः स्थापित न किया जायेगा।

(2) लोकसभा से पारित हो जाने के पश्चात्, धन-विधेयक, राज्य-परिषद् को, उसकी सिफारिशों के लिए पहुँचाया जाएगा तथा राज्य-परिषद् विधेयक की अपनी प्राप्ति की तारीख से चौदह दिन की कालावधि के भीतर, विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित लोकसभा को लौटा देगी तथा ऐसा होने पर लोकसभा राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से सबको या किसी को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी।

(3) यदि राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से किसी को लोकसभा स्वीकार कर लेती है तो धन-विधेयक राज्य-परिषद् द्वारा सिफारिश किए तथा लोकसभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायेगा।

(4) यदि राज्य-परिषद् की सिफारिशों में से किसी को लोकसभा स्वीकार कर लेती है तो धन-विधेयक, राज्य परिषद् द्वारा सिफारिश किए गये संशोधनों में से किसी

के बिना, उस रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायेगा जिसमें कि वह लोक-सभा द्वारा पारित किया गया था।

(5) यदि लोकसभा द्वारा पारित तथा राज्य-परिषद् को उसकी सिफारिशों के लिए पहुँचाया गया धन-विधेयक उक्त चौदह दिन की कालावधि के भीतर लोकसभा को लौटाया नहीं जाता तो उक्त कालावधि की समाप्ति पर यह दोनों सदनों द्वारा, उस रूप में पारित समझा जायेगा जिसमें लोकसभा ने उसको पारित किया था।"

वित्तीय प्रक्रिया (Financial Procedure)

भारतीय संसद की वित्तीय ब्रिटिश संसद की वित्तीय प्रक्रिया से बहुत कुछ *मिलती-जुलती है।*

(1) धन विधेयक —इन विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। धन विधेयकों का सम्बन्ध निम्नलिखित विषयों से होता है—

(i) किसी कर को लगाना, परिवर्तन या समाप्ति आदि।

(ii) ऋण अथवा भारत सरकार पर भार डालने वाली अन्य कोई बात।

(iii) भारत की संचित अथवा आकस्मिक निधि की रक्षा अथवा उससे धन का विनियोग।

(iv) भारत की संचित निधि पर किसी प्रकार का व्यय भारित रखना अथवा व्यय के हेतु धन की स्वीकृति।

(v) सरकारी हिसाब से धन खर्च करना, उसमें धन जमा करना या उसकी जाँच करना।

(vi) कुछ अन्य विषय जो धन से सीधा सम्बन्ध रखते हों।

वित्त विधेयक किस प्रकार पारित होते हैं इसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

(2) आय-व्ययक (The Budget)—छोटे-मोटे धन विधेयक समय-समय पर प्रस्तुत होते रहते हैं परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण संघ सरकार का वार्षिक आय-व्ययक होता है। संसद का बजट अधिवेशन प्रतिवर्ष सामान्यतया फरवरी के महीने में होता है जिसमें सम्पूर्ण वर्ष भर का बजट राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। बजट वास्तव में एक धन विधेयक न होकर उनका सामञ्जस्यपूर्ण समूह सा होता है। भारत में बजट को दो भागों में विभाजित करने की प्रथा प्रचलित है। प्रथम भाग में रेलवे बजट होता है और दूसरे में साधारण बजट। रेलवे बजट में केवल रेलवे से सम्बन्धित आय-व्यय की धन-राशियाँ दी जाती हैं और साधारण विधेयक में रेलों को छोड़कर अन्य विभागों से सम्बन्धित आय-व्यय की चर्चा होती है। रेलवे बजट रेल मन्त्री द्वारा और साधारण बजट वित्त-मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

वार्षिक वित्तीय विवरण को लोकसभा में प्रस्तुत करते समय वित्त-मन्त्री उसके सम्बन्ध में भाषण देता है और सम्भावित आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करता है। अनुमानित व्यय में दो प्रकार की रकमें अलग-अलग दिखायी जाती हैं। संचित निधि पर भारित होने वाली रकमों और अन्य रकमों की अलग-अलग चर्चा होती है। राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते एवं अन्य खर्च, संसद के दोनों सदनों के अध्यक्षों एवं उपाध्यक्षों के वेतन भत्ते, भारत सरकार पर भारित कर्ज और उनका ब्याज सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन, भारत के नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक के वेतन एवं भत्ते, सङ्घीय लोकसेवा आयोग का पूरा व्यय, सर्वोच्च न्यायालय के सङ्गठन का पूरा व्यय, रियासतों के राजाओं को प्रिवी पर्स में दी जाने वाली रकम आदि संचित निधि से दी जाती है। इस रकम में लोकसभा किसी भी प्रकार की कमी नहीं कर सकती केवल उस पर वाद-विवाद ही होता है। संचित निधि से किया जाने वाले व्यय के अतिरिक्त अन्य व्ययों के सम्बन्ध में लोकसभा को किसी भी प्रकार की कटौती करने का पूर्ण अधिकार है।

वार्षिक वित्त—विवरण (Annual Budget) को पारित होने के पूर्व उसे पाँच सोपानों में गुजरना होता है—

(1) बजट का लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाना।

(2) सामान्य विवाद।

(3) मांगों की स्वीकृति।

(4) व्यय स्वीकृति विधेयक (Appropriation Bill) अथवा विनियोग विधेयक पर पूर्ण विचार एवं उसका पारित होना और

(5) कर प्रस्ताव एवं वित्त विधेयकों पर विचार और उसका पारित होना।

वार्षिक वित्त विवरण (Budget) प्रस्तुत किए जाने के बाद उस पर संसद में बहस होती है। इस बहस में 2-3 दिन का समय लिया जाता है। इन दिनों वाद-विवाद आय सम्बन्धी प्रस्तावों के मूल सिद्धान्तों और उनकी नीतियों पर ही होता है विस्तार से आय-व्यय पर विचार नहीं होता और न कटौती का प्रस्ताव ही प्रस्तुत किया जाता है। साधारणतया मतदान नहीं होता।

सामान्य वाद-विवाद के पश्चात् लोकसभा विभिन्न मांगों पर अपनी स्वीकृति देने का कार्य प्रारम्भ करती है। भारत की संचित निधि पर प्रभृत व्यय को छोड़कर सभी विषयों में पूर्णरूप से विचार-विमर्श होकर मतदान होता है। लोकसभा को प्रत्येक मांग के सम्बन्ध में यह अधिकार प्राप्त है कि वह उस पर अपनी स्वीकृति दे दे या उसे अस्वीकृत कर दे। मांग की धनराशि को घटाने का अधिकार भी उसे प्राप्त है। मांगों पर मतदान निश्चित दिन समाप्त हो जाना आवश्यक है अन्यथा समापन

(Closure) का डर रहता है। सभी बची हुई माँगों पर इस दिन मतदान अवश्य हो जाता है, चाहे उन पर विवाद हुआ हो अथवा नहीं।

इसके बाद का स्तर विनियोग विधेयक का होता है। मतदान का कार्य समाप्त होने पर उन माँगों को संचित निधि वाले व्ययों के सहित एक विधेयक के रूप में सदन के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है यह विधेयक (The Appropriation Bill) कहलाता है। इस विधेयक के विभिन्न स्तरों को कितना समय दिया जाय इसका निर्णय लोकसभा का अध्यक्ष ही करता है। इस स्तर पर विधेयक की उन मदों पर विचार-विमर्श होता है जिन पर पहले विवाद नहीं हुआ है। प्रस्तावित व्यय को कम करने के हेतु संशोधन भी रखा जा सकता है। जिन अनुदानों को पहले स्वीकार किया जा चुका है उन पर संशोधन नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। अनुदान के लक्ष्य को भी बदला नहीं जा सकता।

लोकसभा द्वारा जब विनियोग विधेयक पारित हो जाता है तो उसे राज्यसभा के पास उसकी सिफारिश के लिए भेजा जाता है। राज्यसभा द्वारा की गयी सिफारिश को स्वीकार करने अथवा न करने का अधिकार लोकसभा को होता है। राष्ट्रपति द्वारा विनियोग विधेयक पर दी जाने वाली स्वीकृति औपचारिक ही होती है क्योंकि राष्ट्रपति किसी भी धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता।

विनियोग विधेयक के पारित होने के बाद लोकसभा बजट के दूसरे भाग आय अथवा कर-सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार करती है। कुछ कर स्थायी होते हैं, जिन पर संसद का प्रतिवर्ष विचार नहीं करना होता। अन्य कर जैसे आयकर, आयात-निर्यात कर, उत्पादन महसूल कर आदि की दरें प्रतिवर्ष संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं। अगले वर्ष के सभी कर-सम्बन्धी प्रस्ताव एक विधेयक के रूप में लोकसभा के समक्ष रखे जाते हैं। वास्तव में यह विधेयक आय विधेयक होता है। इस विधेयक के दोनों सदनों द्वारा पारित होने पर और उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर नये कर सम्बन्धी प्रस्ताव प्रभावी होते हैं। यह वित्तीय विधेयक अप्रैल के अन्त तक अवश्य ही पारित हो जाता है।

(3) प्रत्यानुदान और विशेष अनुदान (Votes on Credit and Special grants)—लोकसभा ऐसे व्ययों के सम्बन्ध में जिनकी धनराशि का पूर्व अनुमान लगाना सम्भव नहीं है, प्रत्यानुदान भी पारित करती है। युद्ध की आशंका के समय एक अनुदानों की आवश्यकता प्रतीत होती है। यदि किसी योजना के लिए किसी विशेष अनुदान की आवश्यकता सहसा उत्पन्न हो जाती है तो राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह आकस्मिक निधि (Contingency Funds) से धन

निकाल कर उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए दे दे। यह धन पेशगी दे दिया जाता है और बाद में इनकी स्वीकृति संसद से ली जाती है।

(4) अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grants)—वार्षिक बजट के पारित हो जाने के बाद वित्तीय वर्ष के बीच में यदि यह जान पड़े कि किसी मद के हेतु स्वीकृत अनुदान अपर्याप्त है या किसी नये विषय में अन्य व्यय होना अनिवार्य है अथवा किसी मद में स्वीकृत राशि से अधिक व्यय हो गया है तो ऐसी स्थिति में लोकसभा में एक अनुपूरक वित्तीय विवरण (Supplementary Financial Statement) प्रस्तुत किया जाता है। यह भी अन्य विधेयकों की भांति ही पारित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संसद राष्ट्र की समस्त वित्तीय व्यवस्था पर भी नियन्त्रण रखती है। वित्त की व्यवस्था को सुचारु रूप से देखने के लिए एक नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक (Controller and Auditor General) की भी नियुक्ति की जाती है, जिसके कन्धों पर बड़ा गुरुतर भार होता है।

संसद की समिति व्यवस्था
(Committee System of the Parliament)

प्रश्न—भारतीय संसद की समिति व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं ? विभिन्न समितियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(What do you know about the Committee System of the Indian Parliament ? Give brief account of the various Committees.)

आधुनिक युग में व्यवस्थापिका का कार्य बहुत अधिक बढ़ गया है और संसद के सदस्यों के लिए एक साथ समस्त कार्य पूरा करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि संसद में विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया जाता है। ब्रिटेन में संसद के गठन के साथ ही इस बात का अनुभव होने लगा था कि संसद जैसी विचारशील संस्था अपने समस्त कार्यों को सुचारु रूप से नहीं कर सकती, अतएव वहाँ समिति नियुक्ति की प्रथा का प्रारम्भ हुआ और संसद की ये समितियाँ ही विभिन्न कार्यों को अधिक विस्तार और सुचारु रूप से करने लगीं। ज्यों-ज्यों संसद का कार्य बढ़ता रहा त्यों-त्यों समितियों की संख्या भी बढ़ती गई।

भारत में ऐसी समितियों का इतिहास सन् 1854 ई० से प्रारम्भ होता है। फरवरी, सन् 1956 ई० में 'Bureau of Parliament Studies' के तत्वावधान में संसदीय शासन पर जो विचार सम्मेलन आयोजित किया गया था उसमें भाषण देते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने यह मत व्यक्त किया था कि संसद के अधिक से अधिक

इससे संसद के समय की बचत होती है। समितियों पर नियन्त्रण संसद के सदस्यों का ही होता है। समितियाँ किसी विषय पर विस्तार से विचार करती हैं और विभिन्न प्रकार के गवाह और रिकार्ड अपने सम्मुख मँगवा सकती हैं। यहाँ हम संसद की विभिन्न प्रकार की समितियों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) प्रवर-समितियाँ (Select Committees)—विभिन्न विधेयकों पर छानबीन करने के हेतु प्रवर समितियों का गठन किया जाता है। प्रवर समिति विधेयक के प्रत्येक पहलू पर भलीभाँति विचार करती है और इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी कर सकती है। प्रवर समिति के सदस्य सदन से ही नियुक्त होते हैं। या तो उनका सदन द्वारा चुनाव होता है या स्पीकर द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इन सदस्यों में से किसी एक को इस समिति का अध्यक्ष और किसी दूसरे को उपाध्यक्ष बना दिया जाता है। समिति की बैठक में गणपूर्ति के लिए सदस्यों का एक तिहाई भाग होना आवश्यक है और यह समिति बहुमत द्वारा ही निर्णय लेती है। प्रवर समिति को अपनी उप समिति भी बनाने का अधिकार रहता है। समिति गवाही देने के लिए किसी भी व्यक्ति को बुला सकती है और किसी भी आवश्यक कागज की जाँच कर सकती है। सदन के अध्यक्ष को भी समिति की प्रक्रिया-व्यवस्था में निर्देश देने का अधिकार प्राप्त होता है।

(2) संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)—कभी-कभी दोहरी कार्यवाही से बचने के लिए कोई विधेयक दोनों सदनों द्वारा बनाई गई संयुक्त समिति को भी सौंप दिया जाता है। ऐसा करने से एक तो समय की बचत होती है और दूसरे दोनों सदनों के सदस्यों के मध्य सद्भावना और सहयोग की वृद्धि होती है। संयुक्त समिति में लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों का अनुपात 2:1 होता है।

(3) लोक लेखा समिति (Public Accounts Committees)—इस समिति में संसद के 22 सदस्य होते हैं जिनमें से 15 लोकसभा के और 7 राज्यसभा के होते हैं। सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार होता है और कोई भी मन्त्री उसका सदस्य नहीं बन सकता। लोकसभा के स्पीकर द्वारा चुना गया कोई वरिष्ठ गैर सरकारी सदस्य ही इस समिति का अध्यक्ष होता है।

इस समिति का कार्य भारत-सरकार के व्यय के लिए लोकसभा द्वारा अनुदत्त राशियों के विनियोग दिखाने वाले लेखा, भारत-सरकार के वार्षिक वित्त लेखों, और नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करना होता है। यह समिति यह देखती है कि लेखों में जो धन दिखाया गया है वह वैध रूप में व्यय हुआ है या नहीं और अधिकारी ने वह व्यय उचित किया है अथवा नहीं। समिति यह भी देखती है कि वह व्यय निर्मित नियमों के अनुसार ही पुनर्विनियोग (Re-appropriation)

किया गया अथवा नहीं। समिति राज्य निगमों (State Corporations), स्वायत्तशासी और अर्द्धस्वायत्तशासी संस्थाओं आदि के आय व्यय का परीक्षण भी करती है। यह समिति भी संसद के सम्मुख अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। उसकी रिपोर्ट में राष्ट्रीय व्यय में हुई अनियमितताओं का उल्लेख होता है। यद्यपि उनमें कोई सुधार नहीं हो पाता क्योंकि यह सब बातें व्यय हो चुकने के बाद होती हैं परन्तु भविष्य के लिए सरकारी विभागों को चेतावनी अवश्य मिल जाती है। इस प्रकार जनता के धन के ऊपर संसद का नियन्त्रण रखने के लिए यह समिति भी अत्यन्त सशक्त साधन है।

(4) प्रावकलन समिति (Estimate Committee)—लोकसभा की प्रावकलन समिति में 30 सदस्य होते हैं। इन सदस्यों का चुनाव एक वर्ष के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के द्वारा होता है। इस समिति की नियुक्ति प्रतिवर्ष प्रथम सत्र के प्रारम्भ होते ही कर दी जाती है। लोकसभा का उपाध्यक्ष इस समिति का चेयरमैन होता है। यह समिति वर्ष के आय-व्ययक प्रावकलनों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करती है और व्यय में कमी करने के सुझाव प्रस्तुत करती है। संगठन में सुधार लाने और कार्य-क्षमता को बढ़ाने का सुझाव भी यह समिति रखती है। समिति इस सम्बन्ध में भी सुझाव देती है कि प्रावकलन किस रूप में संसद के समक्ष रखा जाना चाहिये। प्रावकलन समिति केवल उपसमितियों के द्वारा अपना कार्य पूर्ण करती है। एक या एक से अधिक विभागों के लिए एक उपसमिति का गठन किया जाता है। समिति अपनी रिपोर्ट सदन और सरकार दोनों को देती है। बजट के पारित हो जाने पर ही इस समिति का कार्य समाप्त नहीं होता बल्कि यह समिति वर्ष भर कार्य किया करती है और आवश्यकतानुसार विभिन्न विभागों पर कड़ी नजर रखती है।

(5) अन्य-समितियाँ—उपर्युक्त समितियों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण समितियाँ भी होती हैं। इन समितियों की चर्चा हम यहाँ संक्षेप में कर रहे हैं—

(अ) नियम-समिति—सदन की प्रक्रिया और कार्य-संचालन के हेतु और उनके नियमों में संशोधन आदि करने के हेतु एक नियम-समिति होती है। लोकसभा की इस नियम-समिति में 15 सदस्य होते हैं। संयुक्त-राज्य अमेरिका में भी इस प्रकार की नियम-समिति है।

(ब) कार्य मंत्रणा समिति—लोकसभा में इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 से अधिक नहीं होती है। इस समिति का अध्यक्ष लोकसभा का अध्यक्ष होता है। समिति का कार्य विधेयकों को परामर्श समिति को सौंपे जाने का निर्देश देना, विभिन्न सरकारी कार्यों के पूरे होने का समय निर्धारित करना और लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा सौंपे गए अन्य कार्यों को पूरा करना है।

(स) गैरसरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों से सम्बन्धित

समिति—इस समिति को भी अध्यक्ष ही नामजद करता है। लोकसभा की इस समिति में 15 से अधिक सदस्य नहीं हो सकते। इस समिति के सदस्य भी एक वर्ष तक अपना पद ग्रहण करते हैं। गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों के विषय में सीमा निर्धारित करना इस समिति का कार्य होता है।

(द) सरकारी आश्वासन सम्बन्धी समिति—मन्त्रियों द्वारा सदन को दिये गये आश्वासनों, वचनों, और प्रतिज्ञाओं की छानबीन के हेतु भी एक समिति का गठन किया जाता है। लोकसभा की इस समिति में भी 15 से अधिक सदस्य नहीं होते। इन सदस्यों का भी अध्यक्ष एक वर्ष के लिए नामजद करता है। इस समिति का मुख्य *कार्य यह देखना होता है कि मन्त्रियों ने जो आश्वासन और वचन सदन को दिये* हैं उनका पालन किया गया है या नहीं।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में संसद की समिति-व्यवस्था समस्त कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। ऊपर हमने जितनी समितियों का वर्णन किया है उनमें प्रवर समितियों को छोड़कर सभी समितियाँ ब्रिटेन की तत्कालीन समितियों के तुल्य होती हैं। इस समिति व्यवस्था के विषय में यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यद्यपि भारत में संसदात्मक पद्धति को अपनाया गया है परन्तु अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति भारत की लोकसभा में स्थायी समितियों का गठन नहीं किया गया है। संसद की समितियों और शक्तियों के विषय में इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि संयुक्त राज्य अमरिका की समितियों की अपेक्षा भारत की समितियों की शक्तियाँ बहुत कम हैं। अमरिका में समितियाँ प्रतिवर्ष हजारों विधेयकों का अन्त कर देती हैं परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। शक्तियों की दृष्टि से भारत की समितियाँ ब्रिटेन की समितियों से मिलती-जुलती हैं परन्तु ब्रिटेन में लोक-लेखा-समिति का अध्यक्ष विरोधी दल का नेता होता है जब कि भारत में ऐसा नहीं है।

लोकसभा का अध्यक्ष

(Speaker o the House o th P o l s)

प्रश्न—लोकसभा के अध्यक्ष के चुनाव, कार्यों और महत्त्व के विषय में आप क्या जानते हैं ? लोकसभा के अध्यक्ष की स्थिति की तुलना इङ्गलैंड की कामन्स सभा के अध्यक्ष से कीजिए।

(What do you know about the electi n, f nctions and importance of the speaker of the House o P p s in India ? Compare the position of the Speaker of the Ho se of P pl s in India with that of Speaker of House of the Commons of Engl nd)

संसदीय व्यवस्था में प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। भारत और इंग्लैण्ड आदि देशों में अध्यक्ष के पद को बहुत गरिमा प्रदान की गई है। अध्यक्ष लोकसभा का अधिष्ठाता होता है। यहाँ हम भारत की लोकसभा के अध्यक्ष के चुनाव, निष्कासन एवं उसकी स्थिति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

अध्यक्ष का चुनाव (Election of the Speaker)

आमचुनाव के तुरन्त बाद जब लोकसभा के सदस्य शपथ ग्रहण कर लेते हैं तो वे अपने में से ही दो सदस्यों को अध्यक्ष (Speaker) तथा उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) पदों पर चुनते हैं। इंग्लैण्ड में यह प्रथा है कि कामन्स सभा के अध्यक्ष के विरुद्ध कोई भी दल चुनाव में अपना प्रत्याशी नहीं खड़ा करता और इस प्रकार कामन्स सभा का अध्यक्ष निर्विरोध पुनः निर्वाचित कर लिया जाता है और वही कामन्स सभा का अध्यक्ष पुनः बन जाता है। भारत में यह प्रथा नहीं है। यहाँ आमचुनाव में लोकसभा के अध्यक्ष के विरुद्ध भी प्रत्याशी खड़े होते हैं परन्तु यह अवश्य देखा गया है कि यदि अध्यक्ष आमचुनाव में जीतकर लोकसभा में आ जाता है तो उसे ही अध्यक्ष बनाया जाता है। परन्तु यह कोई नियम नहीं है। लोकसभा का कोई भी सदस्य अध्यक्ष पद का प्रत्याशी हो सकता है। यद्यपि अध्यक्ष पद के लिए चुनाव की व्यवस्था है परन्तु विभिन्न राजनीतिक दल यही चाहते हैं कि सर्वसम्मति से कोई व्यक्ति अध्यक्ष निर्वाचित हो जाय। ऐसा न होने पर चुनाव होता है और जिस सदस्य को बहुमत प्राप्त हो जाता है वह लोकसभा का अध्यक्ष निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।

लोकसभा के पूर्ववर्ती अध्यक्ष का कार्यकाल नयी लोकसभा की बैठक के ठीक पहले ही समाप्त होता है। लोकसभा के अध्यक्ष को उसके पद से हटाया भी जा सकता है। परन्तु इसके लिए आवश्यक होता है कि उसको हटाने का प्रस्ताव पेश करने के लिए 14 दिन की पूर्व अधिसूचना दी जाय। यदि बहुमत अध्यक्ष के विरुद्ध अपना मत प्रकट करता है तो अध्यक्ष को अपने पद से हटना होता है। जिस समय अध्यक्ष को हटाने की कार्यवाही हो रही होती है उस समय कोई ऐसा सदस्य अध्यक्ष पद पर कार्य करता है जो राष्ट्रपति द्वारा नामांकित कर लिया गया हो। जब अध्यक्ष के विरुद्ध मतदान हो रहा होता है तो अध्यक्ष को उसमें भाग लेने का अधिकार नहीं होता।

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि अध्यक्ष के साथ ही लोकसभा का एक उपाध्यक्ष भी होता है जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसका स्थान ग्रहण करता है। उसका चुनाव भी अध्यक्ष की ही भाँति होता है। यदि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों ही अनुपस्थित हों तो अध्यक्षीय नामों की नामावली में से कोई सदस्य लोकसभा की अध्यक्षता करता है। लोकसभा के आरम्भ में ही अध्यक्ष 6 अध्यक्षीय नामों की एक

नामावली तैयार करता है और अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में इन्हीं लोगों में से कोई एक व्यक्ति अध्यक्ष का पद ग्रहण करता है।

अध्यक्ष के कार्य एवं शक्तियाँ (Functions and the Powers of the Speaker)

ब्रिटेन की कामन्स सभा में स्पीकर का जो कार्य है लगभग वही कार्य भारत की लोकसभा का अध्यक्ष भी सम्पन्न करता है। अध्यक्ष को किसी भी विषय में निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। वह सदस्य के विशेषाधिकारों का रक्षक है। सदन के नियमों पर वही प्रकाश डालता है। कोई विधेयक धन-विधेयक है या नहीं इसका निर्णय भी अध्यक्ष ही करता है। लोकसभा और राज्यसभा की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता भी लोकसभा का अध्यक्ष ही करता है। यहाँ हम अध्यक्ष की शक्तियों और उसके कार्यों के विषय में संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) अध्यक्ष सदन के नेता से परामर्श करके विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में वाद-विवाद का समय निश्चित करता है। वह राष्ट्रपति के उद्घाटन भाषण के उत्तर में दिए जाने वाले संशोधनों के रूप को निर्धारित करता है। इस प्रकार के भाषणों की काल-सीमा भी वही निर्धारित करता है।

2) सदन के नेता से परामर्श करके सदन का कार्यक्रम निश्चित करने का कार्य अध्यक्ष ही सम्पन्न करता है।

(3) उसे किसी प्रश्न को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होता है। जिस प्रश्न को वह नियम-विरुद्ध समझता है उसे स्वीकार नहीं करता।

(4) किसी भी सार्वजनिक महत्व के मामले पर विचार करने के हेतु कामरोको प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए उसकी अनुमति आवश्यक होती है और वही इस प्रकार के प्रस्ता पर दिए जाने वाले भाषणों के समय का निर्धारण करता है।

(5) लोकसभा के अध्यक्ष की आज्ञा से यदि कोई विधेयक गजट में प्रकाशित हो जाता है तो उसे सदन में पेश करने के हेतु किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं रहती।

(6) प्रवर समितियों के सभापतियों की नियुक्ति का कार्य भी अध्यक्ष ही संपन्न करता है।

(7) किसी भी विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित करने का प्रस्ताव उसकी ही अनुमति से प्रस्तुत किया जाता है।

(8) किसी भी प्रस्ताव के ग्राह्य अथवा अग्राह्य होने का निर्णय भी अध्यक्ष करता है।

(9) बजट-सम्बन्धी भाषणों के लिए समय निर्धारित करने का कार्य भी अध्यक्ष ही करता है और वह इस प्रकार की प्रत्येक कार्यवाही कर सकता है जिससे वित्त-सम्बन्धी कार्य निश्चित समय में पूर्ण हो जाय।

(10) संसद और राष्ट्रपति के मध्य जो भी पत्र-व्यवहार होता है वह अध्यक्ष द्वारा ही किया जाता है।

(11) सदन के सदस्यों को भाषण देने की अनुमति भी अध्यक्ष ही प्रदान करता है और भाषणों का क्रम निर्धारित करने का कार्य भी उसी का होता है।

(12) प्रक्रिया-सम्बन्धी विवादास्पद प्रश्नों (Point of orders) पर भी उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(13) सदन में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाए रखने का कार्य भी अध्यक्ष का ही है और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसे बहुत अधिक अधिकार प्राप्त हैं।

(14) विभिन्न विषयों पर मतदान भी अध्यक्ष ही कराता है और वही परिणाम भी घोषित करता है।

(15) अध्यक्ष यदि यह देखता है कि किसी व्यक्ति के आचरण से अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है तो वह उस सदस्य से सदन से, बाहर चले जाने के लिए कह सकता है। किसी भी सदस्य को निलम्बित करने का अधिकार भी उसको प्राप्त है।

(16) यदि किसी समय सदन में बहुत अधिक अव्यवस्था और अशांति उत्पन्न हो जाती है तो वह सदन को स्थगित या निलम्बित कर सकता है।

(17) सदन की दर्शक-दीर्घा में बैठे हुए लोगों पर भी उसका नियन्त्रण होता है। दर्शक-दीर्घा में बैठे लोगों से वह किसी भी समय सदन से बाहर जाने के लिए कह सकता है और उन लोगों को ऐसा अवश्य ही करना होता है।

(18) सदन की कार्यवाही में किसी भी शब्द या वाक्य को हटाने के आदेश भी अध्यक्ष दे सकता है।

(19) जिस समय अध्यक्ष कुछ बोलने के लिए खड़ा होता है उस समय न तो कोई सदस्य खड़ा रह सकता है और जब तक वह बोलता रहता है कोई भी सदस्य सदन के बाहर नहीं जा सकता।

अध्यक्ष का महत्व (Importance of the Speaker)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष लोकसभा की कार्यवाही के सञ्चालन के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी है और इसलिए उसका महत्व बहुत अधिक है। लोकसभा में अध्यक्ष ही एक ऐसा व्यक्ति होता है जो विभिन्न विरोधी विचारधारा वाले लोगों को एक साथ बनाए रखता है। सत्य तो यह है कि यदि लोकसभा का अध्यक्ष अपने पद एवं शक्तियों का पूर्ण रूप से उपयोग न करे तो सदन की कार्यवाही चलना ही मुश्किल हो जाता है। अध्यक्ष के निर्णयों का आदर सभी सदस्यों को करना ही होता है। सत्य तो यह है कि लोकसभा का अध्यक्ष सदन का बिना मुकुट का

सम्राट होता है और वह लोकसभा को शासन के अतिक्रमणों से ही नहीं बचाता बल्कि इस बात का पूर्ण प्रयास करता है कि लोकसभा में जनता की आवाज ठीक प्रकार से पहुँच सके।

लोकसभा के अध्यक्ष को इतना अधिक महत्व इसलिए प्रदान किया गया है कि यह समझा जाता है कि अध्यक्ष पूर्णरूप से निष्पक्ष और संसदीय जनतन्त्र का रक्षक होता है। इसलिए लोकसभा के अध्यक्ष का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने आचरण से इस बात का पूर्ण परिचय दे कि उसे जो भी गौरव प्रदान किया गया है उसे बनाए रखने में वह सक्षम है। लोकसभा के अध्यक्ष को डा० राधाकृष्णन् की इस युक्ति का अक्षरशः पालन करना चाहिए, "मैं किसी दल का नहीं हूँ। मेरा प्रयास संसदीय जनतन्त्र की उच्च परम्पराओं का निर्वाह करना और प्रत्येक दल के प्रति न्याय और निष्पक्षता बरतनी होगी जिसमें किसी के प्रति दुर्भाव न हो और सभी के प्रति सद्भाव रहे।"

एक विद्वान ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "अध्यक्ष और विधान-मण्डल के सचिवालय की स्वतन्त्रता वास्तविक प्रजातान्त्रिक निकायों के रूप में विधान-मण्डलों के अस्तित्व के लिए अत्यधिक आवश्यक है।"

"The independence of the Speaker and the Legislative Secretariat is therefore a matter very vital and essential for the proper discussion, freedom of speech and free expression of opinion, but for the very existence of legislatures as really democratic bodies and not really handmaids to the executive."

यह देश के प्रत्येक राजनीतिक-दल का कर्तव्य है कि वह अध्यक्ष पद की इस स्वतन्त्रता को बनाए रखने में अपना योगदान दे जिससे संसदीय प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था घनीभूत होती रहे।

भारत की लोकसभा और इङ्गलैंड की कामन्स सभा के अध्यक्षों की स्थिति की तुलना (The Comparison of the Positions of the Speaker of House of Peoples of India and House of Commons of England.)

ऊपर हमने इस तथ्य का विवेचन किया है कि भारत में इंग्लैण्ड के अनुकरण पर ही संसदीय प्रथा को अपनाया गया है और लोकसभा के कार्यों आदि का निर्धारण भी उसी के अनुसार किया गया है। भारत की लोकसभा का अध्यक्ष लगभग वही कार्य सम्पन्न करता है जो कि इङ्गलैंड की कामन्स सभा का अध्यक्ष सम्पन्न करता है। दोनों की स्थिति, कार्यों की दृष्टि से बराबर है, परन्तु यदि दोनों के गौरव पर हम किंचित गहनता से विचार करें तो प्रतीत होगा कि इंग्लैण्ड की कामन्स सभा के अध्यक्ष का गौरव भारत के लोकसभा के अध्यक्ष से कहीं अधिक है। इंग्लैण्ड में कामन्स सभा के

अध्यक्ष के विरुद्ध कोई भी राजनीतिक दल अपना प्रत्याशी नहीं खड़ा करता और वह निर्विरोध निर्वाचित हो जाता है परन्तु भारत में अभी यह परम्परा विकसित नहीं हुई है। सत्य तो यह है कि भारत की लोकसभा का अध्यक्ष राजनीतिक दलबन्दी से अलग नहीं हो सका है। भारतीय लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष श्री जी० वी० मावलंकर ने कहा था कि, "भारत का स्पीकर इस समय उस प्रकार राजनीति से दूर नहीं रह सकता जिस प्रकार से ब्रिटिश लोकसभा का स्पीकर राजनीति से संन्यास ले सकता है। फिलहाल भारत का स्पीकर राजनीति में भाग लेता रहेगा यद्यपि राजनीतिक क्रिया-कलापों में उसको सोच-समझ कर ही मर्यादित भाग लेना चाहिए। वह अपने दल का सदस्य बना रह सकता है किन्तु दल के विभिन्न क्रिया-कलापों से हाथ खींच लेना चाहिए, विशेष कर ऐसे मामलों में उसे विशेष रुचि नहीं लेनी चाहिए जो संसद में आने हों। संक्षेप में उसे ऐसे किसी प्रचार कार्य में रत नहीं होना चाहिए या अपने विचार इस प्रकार प्रकट नहीं करना चाहिए जिससे ऐसा आभास मिले कि स्पीकर किसी दल विशेष का व्यक्ति है। माना कि स्पीकर किसी दल विशेष के कार्यक्रम में विश्वास न करता हो फिर भी वह किसी एक दल में निष्ठा तो रखता ही है, और जहाँ कोई व्यक्ति एक दल विशेष से सम्बन्धित हुआ कि उसके विचारों में पक्षपात आ जाता है।" किसी एक दल विशेष से सम्बन्धित होने के फलस्वरूप भारत की लोकसभा के अध्यक्ष को वह सर्वदलीय आदर प्राप्त नहीं हो सकता जो इङ्गलैंड के स्पीकर को प्राप्त है। इंगलैंड में यह परम्परा है कि अध्यक्ष पद पर निर्वाचित होने पर कोई भी व्यक्ति राजनीति से पूर्णतया अलग हो जाता है। ऑग ने स्पष्ट किया है, "सभा-भवन के अन्दर ही नहीं अपितु बाहर भी अँग्रेजी स्पीकर दलबन्दी की छायामात्र से अलग रहता है। वह सार्वजनिक रूप से दलगत प्रश्नों पर अपना मत कभी नहीं व्यक्त करता, वह अपने दल की सभाओं में कभी नहीं जाता। उसे दल के पत्रों से कोई सम्पर्क नहीं, वह राजनीतिक क्षेत्रों में कभी पाँव तक नहीं रखता, वह अपने पुनर्निर्वाचन के लिए भी अभियान नहीं करता।" ब्राइस का मत है कि ब्रिटेन की कामन्स सभा का अध्यक्ष पूर्णरूप से निष्पक्ष होता है। उसने लिखा है—

"From the moment the man occupies the chair of the speaker he is expected to shake off and leave behind all parties. Once invested with the wig and gown of office, he has no longer any political opinions and must administer exactly the same treatment to his political friends and opponents." —Bryce.

यह ठीक है कि भारत में अभी तक अध्यक्ष को ब्रिटेन के समान गौरव प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उत्तर प्रदेश की विधान-सभा के भू० पू० अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष श्री मावलङ्कर आदि महान विभूतियों ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि किसी विशिष्ट राजनीतिक दल से सम्बन्ध होने के बाद भी अध्यक्ष पूर्णरूप से निष्पक्ष रह सकता है। अच्छा हो कि भारत में भी अध्यक्ष के लिए उसी प्रकार की परम्पराओं का विकास हो जाय जिस प्रकार की इंगलैण्ड में विद्यमान हैं।

अध्याय 7

राज्य की कार्यपालिका
(THE STATE EXECUTIVE)

राज्यपाल
(The Governor)

प्रश्न—राज्य की नियुक्ति और वेतन आदि के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उसकी शक्तियों और कार्यों का वर्णन कीजिए। राज्यपाल की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालिए।

(Give a brief account of the appointment and the salary etc. of the Governor. Describe his powers and furcuons. Throw light on his real position.)

राज्यपाल की नियुक्ति (Appointment of the Governor)

राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। कोई भी योग्य व्यक्ति राष्ट्रपति द्वारा इस पद पर नियुक्त किया जा सकता है, परन्तु उसमें निम्नलिखित योग्यताएँ होना अनिवार्य है—

(1) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।

(2) उसकी आयु 35 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

(3) उसे संसद अथवा किसी राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जो संसद अथवा विधानमण्डल का सदस्य है, राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाता है, तो उसे संसद अथवा विधानमण्डल से त्यागपत्र देना पड़ता है।

(4) उसे किसी वैतनिक सरकारी पद पर नहीं होना चाहिए।

वेतन एवं भत्ते आदि—सामान्यतः प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को 5,500 रुपए मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उसे रहने के लिए सरकारी भवन एवं अन्य सुविधाएँ और भत्ते दिए जाते हैं। उसके कार्य काल में उसके वेतन और भत्ता आदि को कम नहीं किया जा सकता।

कार्यकाल—साधारणतः राज्यपाल का कार्य-काल 5 वर्ष का होता है, परन्तु

इस अवधि से पूर्व भी वह अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। उसे पदच्युत करने का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को नहीं है बल्कि उसका पद राष्ट्रपति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। राष्ट्रपति की मर्जी के बिना वह एक क्षण भी अपने पद पर नहीं रह सकता।

शपथ—राज्यपाल नियुक्त होने के पश्चात् किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख अपने पद एवं कार्यों के प्रति सत्यनिष्ठा की शपथ लेनी होती है। वह यह शपथ लेता है कि वह संविधान की रक्षा करेगा, और राज्य के कार्यों का न्यायपूर्ण ढंग से संचालन करेगा।

राज्यपाल के अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions of the Governor)

राज्यपाल को भारतीय संविधान द्वारा अनेक अधिकार प्रदान किए गये हैं। इन अधिकारों का प्रयोग वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा करता है। राज्य की कार्यपालिका के समस्त कार्य राज्यपाल के नाम से ही किये जाते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए उसके अधिकारों को चार कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) शासन-सम्बन्धी अधिकार।

(2) विधायिनी या कानून-सम्बन्धी अधिकार।

(3) वित्त-सम्बन्धी या आर्थिक अधिकार।

(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार।

(1) शासन-सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को शासन-सम्बन्धी अनेक अधिकार दिए गये हैं जिनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(क) अधिकारियों की नियुक्ति—राज्यपाल ही राज्य के मुख्य मन्त्री एवं अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। लोक-सेवा आयोग के सदस्य और राज्य का महाधिवक्ता (Advocate General) भी उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों का छठा भाग भी उसके द्वारा मनोनीत किया जाता है।

(ख) मन्त्रियों का कार्यविभाजन—राज्यपाल मुख्य मन्त्री की परामर्श से मन्त्रियों के विभागों का विभाजन करता है। लोक-सेवा-आयोग के नियमों का निर्माण भी राज्यपाल का कार्य है।

(ग) कार्यपालिका का संचालन—राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष राज्यपाल ही है। अतः कार्यपालिका का सञ्चालन भी उसका कार्य है। राज्य-सूची और समवर्ती सूची में आने वाले समस्त विषयों पर वह अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

(घ) विशेषाधिकार—राज्यपाल के कुछ विशेषाधिकार भी हैं जिनका प्रयोग वह अपनी स्वेच्छा से करता है। कोई भी समस्या उत्पन्न होने पर वह अपने विवेक और बुद्धि से उस समस्या का समाधान करता है।

(2) विधायिनी अधिकार—राज्यपाल को विधि निर्माण सम्बन्धी अधिकार भी प्रदान किये गए हैं। वह राज्य के विधान-मण्डल पर पूर्ण नियन्त्रण रख सकता है।

(क) विधान-मण्डल को आमन्त्रित एवं भंग करने का अधिकार—विधान-मण्डल को आमन्त्रित करने का अधिकार राज्यपाल को प्राप्त है। वह अपनी इच्छानुसार विधान-मण्डल के अधिवेशन को बुला सकता है और विधान सभा को भंग करने की सिफारिश राष्ट्रपति से कर सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह राज्य के विधान-मण्डल के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन भी बुला सकता है और उसमें भाषण दे सकता है। वह किसी भी सदन को अपना सन्देश भेज सकता है।

(ख) विधान-मण्डल के सदस्यों की नियुक्ति—राज्यपाल विधान परिषद् के कुल सदस्यों के 1/6 भाग को मनोनीत करता है। उत्तर प्रदेश का राज्यपाल विधान सभा में ऐंग्लो इण्डियन समुदाय के एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

(ग) विधेयक को पारित करने का अधिकार—वित्त विधेयक के अतिरिक्त राज्यपाल किसी विधयक पर अपनी स्वीकृति दे या न दे यह उसकी स्वेच्छा पर ही निर्भर करता है। वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति के पास विचारार्थ भेज सकता है। किसी विधेयक का वह विधान-मण्डल के पास पुनः वापस कर सकता है, यदि विधान-मण्डल अपने बहुमत से उस विधेयक को पुनः पारित कर देता है तो राज्यपाल को उस पर स्वीकृति देनी ही होती है। राज्यपाल की स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता।

(घ) वित्त-विधेयक सम्बन्धी अधिकार—कोई भी वित्त-विधेयक राज्यपाल के द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस नहीं भेजा जा सकता। उस पर राज्यपाल को अपनी स्वीकृति देनी ही होती है। परन्तु किसी वित्त-विधेयक को विधान-मण्डल में प्रस्तुत करने के पूर्व उस पर राज्यपाल की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

(ङ) अध्यादेश जारी करने का अधिकार—जब राज्य के विधान-मण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो तो राज्यपाल कोई अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है। यह अध्यादेश विधान-मण्डल की बैठक होने पर उसमें प्रस्तुत किया जाता है। यदि विधान-मण्डल उस पर अपनी स्वीकृति दे देता है तो वह कानून का रूप धारण कर लेता है। कोई भी अध्यादेश विधान-मण्डल के अधिवेशन प्रारम्भ होने के अधिक से अधिक 6 सप्ताह तक लागू रह सकता है।

(3) वित्त-सम्बन्धी या आर्थिक अधिकार—राज्यपाल को कुछ आर्थिक अधिकार भी प्रदान किये गये हैं जिनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है।

(क) वार्षिक बजट प्रस्तुत करने का अधिकार—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में राज्यपाल उस वर्ष का विवरण विधान-मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत कराता है। यह कार्य वह अपने वित्त मन्त्री से कराता है।

(ख) वित्त-विधेयक से सम्बन्धित अधिकार—प्रत्येक वित्त-विधेयक को विधान-मण्डल में प्रस्तुत करने के पूर्व राज्यपाल की स्वीकृति अनिवार्य है। उसकी स्वीकृति के बिना कोई भी वित्त-विधेयक विधान-मण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(ग) आकस्मिक व्यय-सम्बन्धी अधिकार—प्रत्येक राज्य के पास एक आकस्मिक निधि होती है। यदि कोई विशेष आवश्यकता पड़ती है तो राज्यपाल उस आकस्मिक निधि में से भी व्यय कर सकता है।

(4) न्याय-सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को राज्य के किसी न्यायालय द्वारा दिये गये दण्ड को कम करने, रद्द करने अथवा कुछ समय के लिए स्थगित करने का अधिकार है। परन्तु यदि यह दंड संघ सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों के सम्बन्ध में दिया गया है अथवा मृत्यु-दण्ड दिया गया है तो राज्यपाल उसके विषय में केवल राष्ट्रपति को अपनी संस्तुति दे सकता है। केवल राज्य के कानून तोड़ने वालों के दण्ड को वह क्षमा कर सकता है।

राज्यपाल की वास्तविक स्थिति (Real Position of the Governor)

ऊपर हमने राज्यपाल के अधिकारों का जो वर्णन किया है उससे यह प्रतीत होता है कि राज्यपाल को राज्य के प्रशासन-क्षेत्र में अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु जहाँ तक इन अधिकारों के उपभोग का प्रश्न है राज्यपाल इन अधिकारों का वास्तविक उपभोग नहीं करता। सैद्धान्तिक रूप से तो वह राज्य का वास्तविक अधिकारी है परन्तु व्यवहार में वह मन्त्रि-परिषद् के निश्चय के अनुसार ही कार्य करता है। प्रो० एम० पी० शर्मा ने लिखा है, "राज्यपाल राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष है। अतः, सामान्यतः उसे राज्य मन्त्रि-मण्डल के परामर्शों के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। इस दृष्टि से उसकी और राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति में बड़ी समानता है। राज्यपाल का पद शक्ति का नहीं किन्तु सम्मान का है जो वैधानिक शक्तियाँ उसे दी गई हैं उनमें से अधिकांश का प्रयोग वस्तुतः मन्त्रि-मण्डल द्वारा किया जाता है क्योंकि राज्यपाल साधारणतया मन्त्रियों की सलाह के अनुसार ही कार्य करता है..............।"

मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल डा० पट्टाभि सीतारमय्या ने इस तथ्य को

बड़े स्पष्ट शब्दों में अंकित किया था जब उन्होंने कहा था कि राज्यपाल का मुख्य कार्य आगन्तुकों का स्वागत करना और उनके लिए चाय, खाने, आदि की व्यवस्था करना है।

"..........the duties of a Governor lay more in getting visitors and providing them tea, lunches, and dinners than anything else."

—Dr. Pattabhisitaramaiya.

महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए जिन शब्दों को कहा था वह राज्यपाल की स्थिति के स्पष्ट परिचायक हैं। उन्होंने कहा था—

'I am fully assured that I will have nothing to do but to act as a constitutional Governor singing on the dotted lines."

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यपाल का पद व्यर्थ है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राज्यपाल के पद को समाप्त कर देना चाहिये। परन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं है। वास्तव में यदि राज्यपाल अपने दायित्व का निर्वाह सुचारु रूप से करता है तो वह राज्य की बहुत अधिक सेवा कर सकता है। डा० अम्बेदकर ने राज्यपाल के कार्यों के सम्बन्ध में कहा था—"भारत में राज्यपाल के दो प्रमुख कार्य हैं—पहला वह कब और किस समय मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध अप्रसन्नता प्रकट करे। राज्यपाल का यह काम है कि वह देखे कि राज्य का प्रशासन ठीक प्रकार से चल रहा है। उसका दूसरा काम मन्त्रियों को सलाह देना, उन्हें चेतावनी देना, और सरकार के सम्मुख आई हुई समस्याओं पर पूरी तौर से पुनर्विचार करना और वैकल्पिक तथ्य उपस्थित करना है।"

यदि राज्यपाल उच्च व्यक्तित्व का है तो वह शासन को अवश्य ही प्रभावित कर सकता है। पी० के० सेन ने ठीक ही लिखा है।

"If the Governor were an active and good Governor, he could by means of getting in touch the opponents of the party in power, reconcile them to a good number of measures and generally make the administration run smoothly"......"The functions of the Governor shall be to lubricate the machinery of Government, to see that all the wheels are going well by reason not of his interference, but of his friendly intervention.

—P. K. Sen.

प्रसिद्ध विद्वान पाइली का मत है कि यदि राज्यपाल सूझबूझ वाला मन्त्रिमंडल का परामर्शदाता है तो वह अशान्त राजनीति में शान्त वातावरण उत्पन्न कर सकता है।

"A sagacious councillor and advisor to the Ministry, one who can throw oil on the troubled waters of the state politics."

—M. V. Pylee.

यह ठीक है कि राज्यपाल को मन्त्रि-परिषद् की इच्छानुसार ही कार्य करना होता है परन्तु मुख्य मन्त्री की नियुक्ति में उसे उस समय अवश्य ही अपने विवेक का परिचय देना होता है जब विधान सभा में किसी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता। आपातकालीन स्थिति में तो राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष बन जाता है और वह इस स्थिति में राष्ट्रपति के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है। यही कारण है कि पायली ने लिखा है, "राज्यपाल न तो केवल नाममात्र का अध्यक्ष है और न एक रबड़ की मोहर वरन् वह एक ऐसा अधिकारी बनाया गया है जो राज्य के प्रशासन में महत्वपूर्ण भाग लेता है।"

"Governor is neither a figurehead nor a rubber-stamp but a functionary designed to pay a vital role in the administration of the affairs of the State."

—M. V. Pylee.

राज्य की मन्त्रि-परिषद्
(The States Cabinet)

प्रश्न—राज्य की मन्त्रि-परिषद् के संगठन और उसके कार्यों की विवेचना कीजिये। मुख्य मन्त्री की राज्य की मन्त्रि-परिषद् में क्या स्थिति है ?

(Discuss the formation and functions of the Cabinet in the States. What is the position of the Chief Minister in the State's Ministry ?)

राज्य के मन्त्रि-परिषद् के कार्यों की चर्चा संक्षेप में कीजिए और मन्त्रि-परिषद् के राज्यपाल तथा विधान-मण्डल के सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।

(Describe briefly the functions of the State Cabinet and discuss the relations of the Cabinet with the Governor and the Legislative Assembly.)

भूमिका (Introduction)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 161 में यह लिखा है कि राज्यपाल को प्रशासन में सहायता देने के हेतु एक मन्त्रि-परिषद् होगी, जिसका अध्यक्ष मुख्य मन्त्री होगा। संविधान के शब्द इस प्रकार हैं :—

"There shall be a Council of Ministers with the Chief Minister at the head to aid and advise the Governor in the exercise of his functions, except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion."

संरचना (Composition)

आम चुनाव के पश्चात् राज्यपाल राज्य की विधान सभा के बहुमत दल के नेता को मन्त्रि-परिषद् के निर्माण हेतु आमन्त्रित करता है। यह आवश्यक नहीं है कि मुख्य मन्त्री पद के लिए विधान सभा के ही किसी व्यक्ति को निमन्त्रित किया जाय। यदि बहुमत दल विधान परिषद् के किसी व्यक्ति को अपना नेता चुनता है तो उसे ही राज्यपाल मन्त्रि-मण्डल के संगठन हेतु आमन्त्रित करता है।

मुख्य मन्त्री राज्यपाल के समक्ष मन्त्रियों और उनके विभागों की सूची प्रस्तुत करता है और राज्यपाल उसे स्वीकार कर लेता है। यदि किसी दल को विधान-मण्डल में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो संयुक्त मन्त्रि-परिषद् का भी निर्माण किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई व्यक्ति जिसे मन्त्री नियुक्त किया गया हो, विधान मण्डल का सदस्य हो। किसी भी व्यक्ति को मन्त्री पद प्रदान किया जा सकता है परन्तु उसे 6 मास के अन्दर विधान मण्डल की सदस्यता अवश्य प्राप्त कर लेनी होगी। मन्त्रियों की संख्या भी निश्चित नहीं है। आवश्यकतानुसार उनकी संख्या कम या अधिक हो सकती है। राज्य में कई प्रकार के मन्त्री होते हैं। इनमें कुछ मन्त्री मन्त्रि-परिषद् के सदस्य होते हैं शेष या तो राज्य मन्त्री होते हैं या उप मन्त्री। प्रमुख विभागों के मन्त्रियों को ही मन्त्रि-परिषद् में स्थान दिया जाता है।

शपथ—नियुक्ति के पश्चात् प्रत्येक मन्त्री को राज्यपाल के सम्मुख यह शपथ लेनी होती है कि वह निर्भय और पक्षपात रहित होकर अपने कार्य को सम्पन्न करेगा और मन्त्रि-परिषद् की समस्त बातों को गुप्त रखेगा।

वेतन और भत्ते—भारतीय संविधान में मन्त्रियों के वेतन और भत्ते निर्धारित करने का अधिकार विधान सभा को प्रदान किया गया है। विधान सभा द्वारा एक बार निश्चित किया गया किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल में घटाया नहीं जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मन्त्रियों को भत्ते और रहने के लिए मकान भी मिलता है।

कार्य-काल—मन्त्रियों का कोई भी कार्य-काल निश्चित नहीं किया गया है। साधारणतः विधान सभा की अवधि 5 वर्ष ही उनका कार्य-काल होता है। परन्तु इस बीच में वे अपना त्याग-पत्र दे सकते हैं। यदि विधान सभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देती है तो मन्त्रि-परिषद् को इस्तीफा देना होता है।

मुख्य मन्त्री की स्थिति (Position of the Chief Minister)

मुख्य मन्त्री मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष होता है। राज्य के मन्त्रि-मण्डल में मुख्य मन्त्री का वही स्थान होता है जो कि केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल में प्रधान मन्त्री का होता है। विभिन्न मन्त्रियों की नियुक्ति, उनमें विभागों का बँटवारा, मन्त्रि-परिषद की बैठकों का सभापतित्व आदि उसके प्रमुख कार्य हैं। वह ही नीति और प्रशासन-सम्बन्धी बातों से राज्यपाल को अवगत कराता है और व्यावहारिक रूप में कोई भी मन्त्री उसकी इच्छा तक ही अपने पद पर बना रह सकता है। मुख्य मन्त्री के पद त्याग करने पर सम्पूर्ण मन्त्रि-मण्डल को त्याग-पत्र दे देना होता है।

मुख्य मन्त्री ही मन्त्रि-मण्डल के विभिन्न मन्त्रियों के विभागों और कार्यों की निगरानी भी करता ही है, साथ ही यदि कभी दो या अधिक मन्त्रियों में मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो उस मतभेद को दूर करने का कार्य भी मुख्य मन्त्री ही करता है।

मुख्य मन्त्री विधान सभा के बहुमत दल का नेता होने के फलस्वरूप विधान सभा का भी नेता होता है। वह राज्यपाल को विधान सभा विघटित करने का परामर्श भी दे सकता है। वास्तविक स्थिति यह है कि वह राज्य विधान मण्डल से अपने क्षेत्र के अन्तर्गत कोई भी विधेयक पारित करा सकता है, किसी भी धनराशि को व्यय के लिए स्वीकृत करा सकता है और कोई भी कर लगा सकता है। वह जो कुछ भी कहता है और जो भी आश्वासन देता है वे प्रमाणित माने जाते हैं। संवैधानिक दृष्टि से महाधिवक्ता (Advocate General), राज्य-लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों आदि की नियुक्ति का जो अधिकार राज्यपाल को प्राप्त है उसका वास्तविक उपभोग मुख्य मन्त्री ही करता है। वही राज्यपाल को यह बतलाता है कि इन पदों पर किन व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मुख्य मन्त्री राज्य मन्त्रि-मण्डल और राज्यपाल के बीच के सम्पर्क की कड़ी तो है ही साथ ही राज्यपाल को जो विभिन्न अधिकार प्राप्त होते हैं उनका व्यावहारिक प्रयोग मुख्य मन्त्री ही करता है।

मन्त्रि-परिषद् के कार्य (Functions of the Cabinet)

राज्य के प्रशासन के संचालन का गुरुतर कार्य मन्त्रि-परिषद् का ही है। संक्षेप में हम उसके महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं —

(1) प्रशासकीय कार्य—विभिन्न विभागों का कार्य-भार मन्त्रि-परिषद् के विभिन्न सदस्य सम्भालते हैं और उन विभागों का सामूहिक उत्तरदायित्व मन्त्रि-परिषद् पर ही होता है। व्यावहारिक रूप में मन्त्रि-परिषद् विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है और विधान-मण्डल का कोई भी सदस्य मन्त्रियों से किसी भी तरह का प्रश्न

प्रदान करता है। मन्त्री अपने-अपने विभागों से सम्बन्धित प्रशासकीय कार्य की देखभाल करते हैं।

(2) नीति-निर्धारण—राज्य की नीति निर्धारित करना, उसे क्रियान्वित करने हेतु योजना एवं कार्य-क्रम बनाना आदि मन्त्रि-परिषद् का ही कार्य है।

(3) कानून बनाना—राज्य के लिए आवश्यक कानूनों को प्रस्तावित करना और विधान-मण्डल द्वारा उनको स्वीकृत कराना भी मन्त्रि-परिषद् का कार्य है।

(4) बजट तैयार कराना और पास कराना—राज्य की आमदनी और व्यय का वार्षिक विवरण मन्त्रि-परिषद् ही तैयार कराती है और यह बजट विधान सभा के सम्मुख पारित किये जाने के हेतु रखा जाता है। अधिकतर इस कार्य को वित्त मन्त्री ही करता है।

(5) सरकार की नीति का जनता में प्रचार करना—मन्त्रि-परिषद् के विभिन्न सदस्य जनता के बीच में घूमकर सरकार की नीतियों का प्रचार करते हैं जिससे कि उसमें चेतना उत्पन्न हो सके और वह सरकार की सहायता प्रदान करे।

मन्त्रि-परिषद् और राज्यपाल का सम्बन्ध (Relations between the Cabinet and the Governor)

भारतीय संविधान के अनुसार राज्यपाल अपने को सलाह देने के लिए मन्त्रि-परिषद् का निर्माण करता है। जिस प्रकार केन्द्र की सम्पूर्ण कार्यपालिकीय शक्ति राष्ट्रपति में सन्निहित होती है उसी प्रकार राज्य की कार्यपालिका की शक्ति राज्यपाल में सन्निहित होती है। मन्त्रि-परिषद् का कार्य राज्यपाल को मन्त्रणा देना ही है। परन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि मन्त्रि-परिषद् जो निर्णय ले लेती है राज्यपाल उस पर अपनी स्वीकृति अवश्य प्रदान कर देता है। किन्तु संविधान में यह कहीं नहीं लिखा है कि राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् की मन्त्रणा मानने के हेतु बाध्य होगा। वास्तव में यह राज्यपाल की विवेक बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह मन्त्रि-परिषद् की सलाह माने या न माने। ऐसा कई राज्यों में हुआ है कि राज्यपाल ने मन्त्रि-परिषद् की सलाह को न माना हो।

वास्तव में यह सोचना भ्रामक होगा कि जैसे केन्द्र की मन्त्रि-परिषद् का राष्ट्रपति पर दबाव होता है वैसा ही दबाव राज्य की मन्त्रि-परिषद् का राज्यपाल पर होता है। राष्ट्रपति और राज्यपाल की स्थिति पूर्णतया भिन्न है। यदि राष्ट्रपति मन्त्रि परिषद् की सलाह नहीं मानता तो मन्त्रि-परिषद् संसद में उस पर महाभियोग लगा सकती है। परन्तु राज्य का मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल के विरुद्ध इस प्रकार का कार्य नहीं कर सकती। सत्य तो यह है कि चूँकि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और उसी के प्रति उत्तरदायी होता है अतः व्यवहार में वह राज्य में केन्द्रीय सरकार

के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल किसी भी समय राष्ट्रपति से यह सिफारिश कर सकता है कि वह आपात उपबन्धों (Emergency Provisions) के अनुसार राज्य के शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में ले ले। यह ठीक है कि यदि मन्त्रि-परिषद् सुचारु रूप से कार्य करती है और वह अत्यन्त सुदृढ़ है तो यह परम्परा बन गई है कि राज्यपाल उस पर अपनी इच्छा लादता नहीं है, परन्तु संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि राज्यपाल अपनी इच्छा को मन्त्रि-परिषद् पर लाद नहीं सकता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मन्त्रि-परिषद् और राज्यपाल के पारस्परिक सम्बन्धों को केवल संविधान के आधार पर पूर्णतया परिभाषित नहीं किया जा सकता। संविधान लागू होने के पश्चात् इन सम्बन्ध में जो परम्पराएं बन गई हैं वही आगे चलकर कार्य करती रहेंगी। अधिकतर यह देखा गया है कि राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् पर अपनी कोई इच्छा लादता नहीं है परन्तु ऐसे भी उदाहरण मिल जाते हैं जबकि राज्यपाल ने मन्त्रि-परिषद् की सलाह को ठुकरा दिया है। उदाहरण के लिए चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् पश्चिमी बंगाल के गवर्नर श्री धर्मवीर ने अपने मुख्य मन्त्री श्री अजय मुखर्जी की इस सलाह को नहीं माना था कि विधानसभा के अधिवेशन को स्थगित कर दिया जाय और मन्त्रि-परिषद् को भंग करके अन्य दल के नेता को मन्त्रि-मण्डल बनाने के हेतु आमन्त्रित कर लिया जाय।

मन्त्रि-परिषद् और विधान सभा का सम्बन्ध (Relations between the Cabinet and the Legislative Assembly)

राज्य का मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से राज्य की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि विधान सभा को मन्त्रि-परिषद् अपने प्रत्येक कार्य की सूचना देती है। विधान सभा के निर्णय के विरुद्ध मन्त्रि-परिषद् कोई भी कार्य नहीं कर सकती। कोई भी मन्त्रि-परिषद् तभी तक अपने पद पर आसीन रहती है जब तक कि विधान सभा में उसे बहुमत प्राप्त होता है। विधान सभा किसी भी समय मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उसे त्यागपत्र देने के लिए विवश कर सकती है। मन्त्रि-परिषद् द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई भी महत्वपूर्ण विधेयक यदि विधान सभा में पारित नहीं हो पाता तब भी मन्त्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देना होता है। यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध भी अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाता है तो भी सम्पूर्ण मंत्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्य की विधान सभा के विरुद्ध मन्त्रि-परिषद् कुछ नहीं कर सकती।

यह ठीक है कि मन्त्रि-परिषद् विधान सभा की इच्छा के बिना कोई भी कार्य

नहीं करती परन्तु बहुधा यह देखा जाता है कि विधान सभा में अपना बहुमत रखने के फलस्वरूप मन्त्रि-परिषद् जो चाहते हैं करते रहते हैं। इसके साथ ही मुख्य मन्त्री के पास राज्यपाल को विधान सभा को विघटित करने की सलाह देने की शक्ति इतनी महत्वपूर्ण शक्ति है कि विधान सभा के सभी सदस्य उसका लोहा मानते हैं और व्यावहारिक स्थिति यह हो जाती है कि विधान सभा मन्त्रि-परिषद् पर नियन्त्रण न रख-कर उसके द्वारा नियन्त्रित होती है।

चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् यह देखने में मिला है कि दल बदलने की प्रथा का प्रचलन भी तेजी से हो गया है। इसके फलस्वरूप विभिन्न राज्य की मन्त्रि-परिषदों को समय-समय पर त्याग-पत्र देना पड़ा है। जब कभी किसी बहुमत दल के सदस्य जिसकी कि मन्त्रि-परिषद् है उस दल से अपना समर्थन वापस लेकर विरोधी दल के साथ मिल जाते हैं तो मन्त्रि-परिषद् को विधान सभा में अपने कम सदस्य होने के फल-स्वरूप तुरन्त त्यागपत्र देना पड़ता है। दल बदलने की यह प्रथा मन्त्रि-परिषद् के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई है।

अध्याय | 8

राज्य-विधानमण्डल
(THE STATE LEGISLATURE)

विधानमण्डल का संगठन और कार्य
(Composition and Function of Legislature)

प्रश्न—राज्य विधानमण्डल के संगठन और कार्य-काल आदि के विषय में आप क्या जानते हैं ? विधानमण्डल की शक्तियों और कार्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

(What do you know about the composition and tenure etc. of the State Legislature ? Give a brief account of the powers and functions of the State Legislature)

भूमिका (Introduction)

भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक विधानमण्डल का प्रावधान किया गया है। किसी राज्य में एक सदन और किसी में दो का प्रावधान है। आन्ध्र, मद्रास, उत्तर प्रदेश, मैसूर, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, मध्य प्रदेश और जम्मू तथा काश्मीर में दो सदनों का प्रावधान है। शेष राज्यों में एक ही सदन है। दो सदन वाले विधानमण्डल का उच्च सदन विधान परिषद् और निम्न सदन विधान सभा कहलाता है। जैसे केन्द्र में लोकसभा का महत्व राज्यसभा से अधिक है, वैसे ही प्रान्त में विधान सभा का महत्व विधान परिषद् से अधिक है। भारतीय संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह विधि-निर्माण करके किसी भी राज्य की विधान परिषद् को समाप्त कर सकती है, अथवा जिस राज्य में विधान परिषद् नहीं है उसमें उसका निर्माण कर सकती है।

विधान सभा (Legislative Assembly)

संगठन (Composition)—राज्यों की विधान सभाओं का निर्वाचन मताधिकार द्वारा होता है। विधान सभा के सदस्यों की संख्या प्रत्येक राज्य के लिए भिन्न-भिन्न है। साधारणतया 75,000 व्यक्तियों पर एक प्रतिनिधि विधान सभा में जाता

है, परन्तु कुछ राज्यों में इससे कम जनसंख्या का प्रतिनिधि विधान सभा में जाता है। *राज्य की आबादी का निश्चय पूर्ववर्ती जनगणना के आधार पर किया जाता है।* अनुसूचित जन-जातियों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। उत्तर प्रदेश की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या इस समय 430 है।

सदस्यों की योग्यता—कोई भी भारतीय नागरिक, जिसका नाम मतदाता सूची में हो और वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्य की विधान सभा का चुनाव लड़ सकता है। परन्तु उसे पागल या दिवालिया नहीं होना चाहिए और राज्य या केन्द्र सरकार के किसी लाभदायक पद पर (कर्मचारी) नहीं होना चाहिये।

विधान सभा की कालावधि—भारतीय संविधान के अनुसार विधान सभा की अवधि 5 वर्ष नियत की गई है। 5 वर्ष पश्चात् पुनः आमचुनाव होता है। राज्य के राज्यपाल को यह *अधिकार प्राप्त है कि वह किसी असाधारण स्थिति में राष्ट्रपति* को विधान सभा के विघटन की सलाह दे दे और विधान सभा का विघटन कर दिया जाय। भारतीय संसद को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह आपातकाल में विधान सभा के जीवनकाल को एक समय में एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है, परन्तु आपात-कालीन स्थिति की समाप्ति के पश्चात् 6 महीने के अन्दर उसका विघटन अवश्य हो जाना चाहिये।

विधान सभा का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—विधान सभा के कार्य को भली प्रकार से संचालित करने के लिए एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष का प्रावधान संविधान में है। विधान सभा का स्पीकर या अध्यक्ष विधान सभा के निर्माण के पश्चात् होने वाले उसके प्रथम सत्र में ही सदस्यों द्वारा चुना जाता है। अध्यक्ष के अतिरिक्त विधान सभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव भी करते हैं। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष का कार्यभार संभालता है।

विधान सभा का अध्यक्ष लगभग वही कार्य विधान सभा में करता है जो कार्य लोकसभा का अध्यक्ष लोकसभा में करता है। उसके कार्यों में मुख्य हैं—(1) सदन में अनुशासन बनाये रखना, (2) सदन की कार्यवाही को सुचारु रूप से संचालित करना, (3) सदस्यों को बोलने की अनुमति प्रदान करना, (4) पक्ष और विपक्ष में समान मत आने पर निर्णायक मत प्रदान करना, आदि।

अधिवेशन, मतदान और गणपूर्ति—राज्य की विधान सभा के वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य होने चाहिये। इस प्रकार का नियम रखा गया है कि प्रथम सत्र के अन्तिम अधिवेशन की तिथि और दूसरे सत्र की प्रथम तिथि में 6 मास से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिये परन्तु इन नियमों का पालन न करना कानून का उल्लंघन नहीं है। राज्य के राज्यपाल को विधान सभा का अधिवेशन

बुलाने का अधिकार होता है और वह यह कार्य मुख्य मन्त्री की सलाह से करता है।

विधान सभा में कोई भी निर्णय सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जाता है। गणपूर्ति के लिए कुल सदस्यों का 1/10 भाग सदन में होना आवश्यक है।

विधान परिषद् (Legislative Council)

संगठन (Composition)—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि कुछ राज्यों में विधान परिषद् है और कुछ में नहीं। विधान परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। उनमें विभिन्न संस्थाओं और वर्गों का प्रतिनिधित्व होता है। उत्तर प्रदेश में विधान परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन निम्नलिखित रीति से होता है—

(1) पूरी संख्या के 1/3 सदस्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा और 1/3 विधान सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं।

(2) सम्पूर्ण संख्या के 1/12 सदस्य विश्वविद्यालय के स्नातकों द्वारा और अध्यापकों द्वारा चुने जाते हैं। शिक्षकों के निर्वाचन क्षेत्र में उन्हीं शिक्षकों को मत देने का अधिकार होता है जो सेकेन्डरी या उनसे ऊँची संस्थाओं में कम से कम 3 वर्ष से अधिक अध्यापन कार्य कर रहे हों।

(3) सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या के 1/6 सदस्य राज्यपाल द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

कालावधि—विधान परिषद् एक स्थायी सदन है। इसका कभी भी विघटन नहीं होता। प्रति 2 वर्ष बाद उनके एक तिहाई सदस्य हटते जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्यों का चुनाव होता है।

सदस्यों की योग्यता—प्रत्येक नागरिक जो 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और संसद द्वारा विधान परिषद् के निर्वाचन के सम्बन्ध में बनाए गए नियमों का पालन करता हो, विधान परिषद् का सदस्य बन सकता है।

पदाधिकारी—विधान परिषद् की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक सभापति और एक उपसभापति निर्वाचित किया जाता है। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति सभापति का कार्यभार सँभालता है। विधान परिषद् का सभापति लगभग वह सभी कार्य पूर्ण करता है जो विधान सभा का अध्यक्ष विधान सभा में करता है।

मतदान एवं गणपूर्ति—विधान परिषद् में भी किसी बात पर निर्णय, मत देने वाले सदस्यों के बहुमत के आधार पर लिया जाता है। इस सदन की कार्यवाही चलाने के लिए भी सदस्यों की कुल संख्या का दसवां भाग सदन में होना आवश्यक है।

विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियां—विधान परिषद् के सदस्यों को भी वही

विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त हैं जो विधान सभा के सदस्यों को है। उन्हें भी मासिक वेतन और भ्रमण की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। उनके रहने की भी राजधानी में व्यवस्था की जाती है। सदन में उनके द्वारा कही गई बात पर उन पर किसी भी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसे केन्द्र में संसद का संगठन होता है वैसे ही प्रान्तों में विधान मण्डलों का संगठन किया जाता है।

व्यवस्थापिका की शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions of the Legislature)

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि भारतीय संविधान में तीन प्रकार की सूचियाँ दी गई हैं—(1) केन्द्रीय सूची, (2) राज्य सूची और (2) समवर्ती सूची।

राज्य सूची में आए हुए सभी विषयों पर विधान मण्डल को अधिकार प्राप्त है और समवर्ती सूची के सम्बन्ध में भी उसे कुछ अधिकार प्राप्त हैं। राज्य विधान मण्डल के अधिकारों एवं कार्यों को मुख्यत चार कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) विधि-निर्माण-सम्बन्धी अधिकार।

(2) वित्त-सम्बन्धी अधिकार।

(3) नीति निर्धारित करने का अधिकार।

(4) कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने का अधिकार।

इन कार्यों के अतिरिक्त विधान मण्डल कुछ अन्य कार्य भी करता है। संक्षेप में यहाँ विधान मण्डल के विभिन्न अधिकारों की चर्चा की जा रही है—

(1) विधि-निर्माण-सम्बन्धी अधिकार—जिस तरह संघीय सूची में आए हुए समस्त विषयों पर संसद कानून बनाती है वैसे ही राज्य सूची में आए हुए समस्त विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य के विधान मण्डल को है। समवर्ती सूची के समस्त विषयों पर भी विधान मण्डल कानून बना सकता है। परन्तु यदि इस सम्बन्ध में संसद भी कानून बनाती है तो संसद का कानून वैध समझा जायगा। इस सूची में आए हुए किसी विषय पर यदि विधान मण्डल कोई ऐसा कानून बनाता है जो संसद के कानून के विरुद्ध हो तो विधान मण्डल द्वारा बनाया गया कानून अवैध समझा जायगा। संकटकालीन स्थिति में राज्य के विधान मण्डल की समस्त विधायिनी शक्तियाँ राष्ट्रपति या केन्द्रीय सरकार के हाथ में चली जाती हैं।

(2) वित्त-सम्बन्धी अधिकार—प्रत्येक वर्ष राज्यपाल राज्य के आय-व्यय का सम्पूर्ण विवरण अपने मन्त्रियों के द्वारा विधानसभा के सम्मुख पेश करवाता है। धन-सम्बन्धी कोई विधेयक विधान परिषद् में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। विधान

विशेष या कुछ प्रश्नों पर ध्यान आकर्षित करने के हेतु कार्य-स्थगन का प्रस्ताव सदन में प्रस्तुत कर सकता है। यदि यह स्वीकृत हो जाता है तो समस्त कार्यों को छोड़कर उसी पर बहस होती है।

(ग) आदेश—विधानमण्डल निर्धारित नीति के अनुसार काम करने के लिए कार्यपालिका को आदेश भी दे सकता है।

(घ) कटौती या प्रस्ताव—विधान सभा बजट की किसी मद में कटौती का प्रस्ताव पारित कर सकती है। यह किसी मंत्री विशेष के वेतन आदि में भी कटौती का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(ङ) कार्यों की जाँच—यदि विधानमण्डल सरकार के किसी कार्य से असन्तुष्ट है तो वह इस सम्बन्ध में जाँच कराने का अधिकार भी रखता है।

(च) सरकारी विधेयकों की अस्वीकृति—विधान सभा किसी भी सरकारी विधेयक को अस्वीकृत करके मन्त्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य कर सकती है।

(5) अन्य कार्य—ऊपर दिये गये चार प्रकार के कार्यों के अतिरिक्त विधान मण्डल के कुछ अन्य कार्य और अधिकार भी हैं। विधान सभा के सदस्यों को राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार है। प्रत्येक राज्य की विधान सभा राज्य सभा के लिए कुछ सदस्यों का चुनाव करती है। जिन राज्यों में विधान परिषद् है वहाँ उसके कुछ सदस्यों का चुनाव भी विधान सभा करती है। राज्यों के विधानमण्डलों को, संविधान की संघीय व्यवस्था से सम्बन्धित अनुच्छेदों के संशोधन में भाग लेने का अधिकार है और यह संशोधन बहुत कुछ उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

विधान सभा और विधान परिषद् की शक्तियों की तुलना

(Comparison between the Powers of Legislative Assembly and Legislative Council)

प्रश्न—विधान सभा और विधान परिषद् की शक्तियों की तुलना कीजिए।

(Compare and contrast the Powers of Legislative Assembly and Legislative Council.)

साधारणतया विधान सभा और विधान परिषद् के दृश्य एक ही प्रकार के हैं परन्तु फिर भी विधान सभा की शक्तियाँ कुछ मात्रा में विधान परिषद् से अधिक हैं। कोई भी अवित्तीय विधेयक राज्य के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु इन विधेयकों के सम्बन्ध में विधान सभा की शक्तियाँ विधान परिषद् से अधिक होती हैं। यदि कोई विधेयक विधान परिषद् द्वारा पारित करके विधान सभा के पास

स्थगन प्रस्ताव पारित कर दे या बजट के किसी मद में कटौती का प्रस्ताव पारित कर दे तो मन्त्रि-परिषद् को त्याग-पत्र नहीं देना होता है। दूसरी ओर यदि विधान सभा चाहे तो मन्त्रि-परिषद् को अवश्य ही त्याग-पत्र देना होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ विधान सभा का कार्यपालिका पर पूर्ण नियन्त्रण होता है वहाँ विधान परिषद् का कार्यपालिका पर कोई भी नियन्त्रण नहीं होता है।

नीति निर्धारित करने के क्षेत्र में भी विधान सभा का स्थान विधान परिषद् की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचा है। राज्य की विभिन्न योजनाएँ किस प्रकार बनाई जायें और राज्य सरकार विभिन्न क्षेत्रों में किस नीति का अनुसरण करे, इस पर अन्तिम निर्णय देने का अधिकार विधान सभा को ही है। यद्यपि विधान परिषद् के योग्य सदस्य इस सम्बन्ध में अपनी राय अवश्य देते हैं और उनके सुझावों का आदर होता है परन्तु कार्यपालिका उनकी बात मानने को बाध्य नहीं है। दूसरी ओर विधान सभा के बहुमत की राय कार्यपालिका को अवश्य ही माननी होगी। यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो मन्त्रि-परिषद् का अस्तित्व ही समाप्त होने का भय उत्पन्न हो जायगा।

उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त विधान सभा अन्य क्षेत्रों में भी विधान परिषद् की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण शक्तियाँ रखती है। विधान सभा के सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में मत देने का अधिकार रखते हैं। विधान परिषद् के सदस्यों को इस प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विधान सभा की शक्तियाँ और महत्व विधान परिषद् की अपेक्षा अधिक हैं। विधान परिषद् का क्या महत्व है, यह इस बात से ही स्पष्ट हो जायगा कि देश के विभिन्न कोनों से यह आवाज अक्सर आया करती है कि विधान परिषदों को तोड़ देना चाहिए। कुछ राज्यों में द्विसदनात्मक व्यवस्था है ही नहीं। एक ही सदन समस्त कार्यों का सम्पादन करता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वहाँ विधान परिषद् की कोई आवश्यकता ही नहीं महसूस की गई है। यह ठीक है कि विधान सभा की शक्तियाँ विधान परिषद् की शक्तियों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि विधान परिषदों को समाप्त कर दिया जाय। विधान परिषद् में कुछ ऐसे विद्वान व्यक्ति पहुँचते हैं जो अपने विचारों से अवश्य ही कार्यपालिका को प्रभावित करते हैं। विधान सभा जनता का सदन होता है, वहाँ विशिष्ट वर्ग के लोगों को स्थान नहीं दिया जाता। भारतवर्ष की जनता अभी इतनी शिक्षित नहीं है कि वह सदैव योग्य व्यक्तियों का ही चुनाव करे। दूसरी ओर विधान परिषद् में जो सदस्य होते हैं वे योग्य, अनुभवी और ख्याति प्राप्त होते हैं। उनके विचारों का प्रभाव कार्यपालिका पर पड़ना स्वाभाविक ही है। इसलिए एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है "विधान परिषद् की शक्तियाँ विधान सभा की अपेक्षा कुछ कितनी

कम क्यों न हों और विधान परिषद चाहे कितनी शक्तिहीन ही क्यों न हो परन्तु 20 वर्ष तक विधान परिषदों को तोड़ने की बात करना उचित नहीं है।"

व्यवस्थापिका की विधायी और वित्तीय प्रक्रिया

(Legislative and Financial Procedure of the Legislature)

प्रश्न—राज्यों की व्यवस्थापिका की विधायी और वित्तीय प्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(Give a short account of Legislative and Financial Procedures of State Legislatures.)

विधायी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 196 से लेकर 201 तक में राज्य के विधान मण्डलों की विधायी प्रक्रिया का उल्लेख है। प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार वित्त विधेयक को छोड़कर कोई भी विधेयक राज्य के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। जिन राज्यों में दो सदन हैं वहाँ उसे दोनों सदनों के द्वारा पारित होना पड़ता है परन्तु जिन राज्यों में एक ही सदन है वहाँ उस सदन द्वारा पारित होने पर वह विधेयक स्वीकृत हो जाता है। यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में विधान सभा और विधान परिषद् में मतभेद हो जाता है तो दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का प्रबन्ध नहीं किया गया है। मतभेद होने पर विधान सभा की राय ही अन्तिम होती है। यदि विधान सभा द्वारा पारित किए गये किसी विधेयक को विधान परिषद् स्वीकार नहीं करती तो विधान सभा उस पर पुनर्विचार करती है। यदि उसके बाद भी विधान सभा उसे पारित कर देती है तो वह विधेयक पारित हुआ मान लिया जाता है। विधान सभा द्वारा पारित किए गये किसी विधेयक में यदि विधान परिषद् कुछ संशोधन कर देती है तो विधान सभा उन संशोधनों पर पुनर्विचार करती है। विधान सभा यदि उन संशोधनों को मान लेती है तो ठीक है परन्तु यदि विधान सभा उनको नहीं मानती तो भी विधेयक ज्यों का त्यों पारित हो जाता है। विधान सभा द्वारा पारित किए गये किसी साधारण विधेयक को विधान परिषद् केवल तीन महीने के लिए रोक सकती है। यदि तीन महीने तक उस पर विचार करके विधान परिषद् विधान सभा को उस विधेयक वापस नहीं करती तो वह विधेयक सीधे राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है और राज्य-पाल के हस्ताक्षर हो जाने पर वह कानून बन जाता है।

जब उपर्युक्त रीति से कोई विधेयक राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित हो चुकता है तो उसे राज्यपाल के पास उसकी अनुमति के हेतु भेजा जाता है। राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह उक्त विधेयक पर अपनी अनुमति दे या अनुमति न दे

अथवा उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर ले। राज्यपाल यदि किसी विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता या उसमें किसी सम्बन्ध में संशोधन चाहता है तो वह अपने विचार सहित उक्त विधेयक को विधानमण्डल को लौटा देता है। उसके बाद भी विधानमण्डल को यह अधिकार होता है कि वह राज्यपाल की सिफारिशों को माने अथवा न माने। यदि विधानमण्डल राज्यपाल के सिफारिशों को नहीं भी स्वीकार करता और उस ज्यों का त्यों राज्यपाल के समक्ष रख देता है तो राज्यपाल को उस पर अपनी अनुमति देनी ही होगी। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि जिन राज्यों में द्विसदनात्मक व्यवस्था है वहाँ भी विधान सभा को ही किसी विधेयक पर अन्तिम राय देने का अधिकार होता है। विधान परिषद् की राय का कोई भी महत्व नहीं होता है।

वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में कुछ दूसरे ही प्रकार की प्रक्रिया अपनाई जाती है। वित्त विधेयक केवल विधान सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। जब कोई वित्त विधेयक विधान सभा द्वारा पारित हो जाता है तो उसे विधान परिषद् के पास भेजा जाता है। विधान परिषद् को 14 दिन के अन्दर अपनी सिफारिशों सहित उसे अवश्य ही विधान सभा को भेज देना होता है। यदि विधान परिषद् ऐसा नहीं करती तो विधेयक सीधे राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है और राज्यपाल के हस्ताक्षर हो जाने पर वह अधिनियम का रूप धारण कर लेता है। यदि विधान परिषद् अपनी सिफारिशों के साथ 14 दिन के अन्दर उक्त विधेयक को विधान सभा के पास वापस कर देती है तो उसकी सिफारिशों को मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार विधान सभा का होता है। विधान सभा विधान परिषद् की सिफारिशों को मानकर अथवा उन्हें न मानकर भी उक्त विधेयक को राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत करती है और राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो जाने पर वह अधिनियम का रूप धारण कर लेता है।

वित्तीय प्रक्रिया (Financial Procedure)

राज्यों के विधानमण्डलों में वित्तीय विषयों में जिस प्रक्रिया को अपनाया जाता है उसमें ठीक वही सिद्धान्त काम करता है जो संसद की वित्तीय प्रक्रिया में कार्य करता है। पहली बात तो यह है कि वित्त विधेयक केवल शासन की ओर से ही प्रस्तुत किये जाते हैं और समस्त व्यय राशियाँ अनुदान माँगों के रूप में विधान सभा के सम्मुख रखी जाती हैं। विधान सभा को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह किसी अनुदान माँग को स्वीकार करे अथवा न करे। विधान सभा की स्वीकृति के बिना राज्य सरकार कोई ऋण भी नहीं ले सकती और न उसकी इच्छा के बिना कोई कर ही लगाया जा सकता है।

प्रतिवर्ष राज्यपाल की सिफारिश पर विधान सभा के सम्मुख वार्षिक वित्त विवरण रखा जाता है। इस वार्षिक विवरण में उस वर्ष के आय-व्यय का अनुमान रहता है। वार्षिक वित्त विवरण में यह दो बातें अलग से दिखाई जाती हैं कि कौन सा व्यय राज्य की संचित निधि से होगा और कौन सा व्यय राज्य की संचित निधि से नहीं होगा। राज्य की संचित निधि से राज्यपाल का वेतन, उसके भत्ते, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों एवं कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा लोक सेवा आयोग के सदस्यों और कर्मचारियों पर व्यय होने वाली धनराशि आदि दी जाती है। संचित निधि पर भारित जो व्यय होता है उस पर राज्यों के विधानमण्डलों में मतदान नहीं हो सकता। विधानमण्डल में संचित निधि से होने वाले व्यय के सम्बन्ध में वाद-विवाद हो सकता है; परन्तु उक्त विषयों में खर्च होने वाले धन में विधानमण्डल किसी प्रकार की कटौती नहीं कर सकता। वे व्यय जो राज्य की संचित निधि से नहीं होते उनमें कटौती करने या उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार विधान सभा को होता है।

जब विधान सभा उक्त बजट को पारित कर देती है तो उसे विधान परिषद् के पास भेजा जाता है। विधान परिषद् द्वारा किए गये संशोधनों को मानने या न मानने का अधिकार विधान सभा को ही है। वार्षिक बजट के सम्बन्ध में यह जान लेना भी आवश्यक है कि सभी खर्चों को पहले विधान सभा के सामने अनुदानों की माँग (Demands for Grant) के रूप में रखा जाता है और विधान सभा उनमें से प्रत्येक माँग को मतदान द्वारा स्वीकार करती है। जब माँगें स्वीकृत हो जाती हैं तो उन सभी को एक विधेयक के रूप में विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इस स्थिति में रकमों के सम्बन्धों में कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। यह विधेयक पारित होने पर विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) कहलाता है। इसी की धाराओं के आधार पर संचित निधि से व्यय के हेतु धन निकाला जाता है। आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल विधान सभा के सम्मुख पूरक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करवाता है और अनुपूरक या अधिक अनुदान स्वीकार करने का अधिकार भी विधानसभा को होता है। राज्य की विधानसभा पेशगी अनुदान (Vote on account) भी दे सकती है। इन सभी माँगों के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रक्रिया को अपनाना होता है। कर-सम्बन्धी प्रस्ताव एक वित्त विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और वित्त अधिनियम के पारित होने के बाद ही राज्य सरकार किसी कर को लगाने अथवा वसूल करने का अधिकार प्राप्त करती है।

उपर्युक्त सभी विधेयकों को राज्यपाल की अनुमति के लिए भेजा जाता है; परन्तु राज्यपाल इन सब पर अपनी अनुमति दे देता है; क्योंकि वे उसी की सिफारिश पर विधानमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं।

अध्याय | 9

भारतीय न्यायपालिका
(INDIAN JUDICIARY)

भारतीय न्यायपालिका की विशेषताएँ
(Features of the Indian Judiciary)

प्रश्न—भारतीय न्यायपालिका की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में रिचय दीजिये।

(Give a brief account of the salient features of the Indian udiciary.)

किसी भी देश की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में वहाँ की न्याय-ालिका का प्रमुख हाथ होता है। न्यायपालिका के संगठन के अनुसार ही इस बात का ता चलता है कि उस देश में जनता को कितनी अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। भारत न्यायपालिका का संगठन इंगलैण्ड की न्यायपालिका की भाँति किया गया है, परन्तु सके साथ ही अन्य प्रमुख देशों की अच्छी बातों को भी यहाँ अपनाया गया है। यहाँ म भारतीय न्यायपालिका की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

(1) स्वतन्त्र न्यायपालिका—भारत एक प्रजातन्त्रात्मक देश है। प्रजा-त्रात्मक देश में स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत की ायपालिका, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त है। यह च है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा की जाती है, परन्तु क बार नियुक्त होने के पश्चात् न्यायाधीश बिना महाभियोग लगाये अपने पद से टाये नहीं जा सकते। उनके कार्यकाल में उनका वेतन भी कम नहीं किया जा सकता ौर इस प्रकार वे व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हते हैं।

(2) संगठित न्यायपालिका—भारत की न्यायपालिका अत्यन्त सुसंगठित । ऊपर से लेकर नीचे तक के न्यायालय एक दूसरे से पूर्णतया सम्बन्धित हैं। ुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका के दो पृथक अंग हैं अर्थात् वहाँ न्यायालयों को

दोहरी व्यवस्था के दर्शन होते हैं । अमेरिका में संघीय कानूनों को लागू करने के लिए संघीय न्यायालय होते हैं और राज्यों के कानूनों को लागू करने के लिए राज्यों के अलग न्यायालय होते हैं । संघीय न्यायालयों में चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय होता है और उसके नीचे अन्य प्रादेशिक एवं जिला न्यायालय भी होते हैं । राज्यों के अपने पृथक न्यायालय भी होते हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका के योग्य वकील यह जानते हैं कि कौन सा मुकदमा संघीय न्यायालय में निर्णीत होगा और कौन सा राज्य के न्यायालय में । भारत भी संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति एक संघात्मक राज्य है; परन्तु यहां दोहरी न्याय-व्यवस्था को न अपनाकर इकहरी न्याय-व्यवस्था को अपनाया गया है । यहाँ चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय है । इसके नीचे प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय है तथा उसके नीचे अनेक जिला एवं अधीन न्यायालय हैं । देश के सभी न्यायालय एक लड़ की कड़िया हैं और सभी न्यायालयों को संघीय एवं राज्य विधान-मण्डलों द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार न्याय-कार्य सम्पन्न करना होता है । भारतीय न्यायपालिका के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान डी० एन० बनर्जी ने लिखा है, "हमारी न्याय-प्रणाली की एक प्रमुख विशेपता उसका इकहरा और सुसंगठित रूप है । यद्यपि हमारा संविधान अर्द्धसंघीय है; परन्तु हमारे न्यायालयों की प्रणाली उत्तराधिकारी ढंग से संगठित है । एक न्यायालय के ऊपर दूसरा न्यायालय है और सबसे चोटी पर भारत का सर्वोच्च न्यायालय है ।"

"One of the striking features of our judicial system is its single, unified and integrated character. Although........our Constitution is quasi-federal, our system is, generally speaking, hierarchically organized one upon another with the Supreme Court of India at its apex."

—D. N. Banerjee.

श्री डी० के० सेन ने इस इस तथ्य को और अधिक सुन्दर शब्दों में स्पष्ट है । उन्होंने लिखा है, "यद्यपि भारतीय गणतंत्र का राजनीतिक संगठन मुख्य रूप से संघात्मक है; उसका न्यायिक संगठन शुद्ध रूप से एकात्मक है । दूसरे शब्दों में भारतीय संविधान न्यायपालिका की दोहरी व्यवस्था को मान्यता नहीं प्रदान करता है ।"

"While the political organization of the Indian Republic is primarily federal in character its judicial organization is purely unitary. In other words, the Indian Constitution does not recognize the qualiy of judicial machinery." —D. K. Sen.

(3) ब्रिटेन से मिलती-जुलती न्याय-व्यवस्था—भारत की संघीय व्यवस्था ब्रिटेन से बहुत हद तक मिलती-जुलती है। हमारे देश में एक ही प्रकार के कानून और एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। इस दृष्टि से देखें तो भारत में भी इंग्लैण्ड की भाँति "विधि के शासन" (Rule of Law) को मान्यता प्रदान की गई है। भारत की यह पद्धति फ्रान्स की पद्धति से पूर्णतया भिन्न है। फ्रान्स में प्रशासन अधिकारियों के लिए अलग कानून और न्यायालय है; परन्तु भारत में प्रधानमन्त्री से लेकर साधारण व्यक्ति तक के लिए एक ही प्रकार के कानून और न्यायालय हैं। एक ही प्रकार के कानून का उल्लंघन करने वाले किसी बड़े से बड़े अफसर और साधारण व्यक्ति दोनों को ही समान दण्ड मिलेगा।

(4) प्रमुख रूप से दो प्रकार के न्यायालय—भारतीय न्याय-व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ विभिन्न प्रकार के न्यायालयों के अलग-अलग दर्जे नहीं होते। यहाँ प्रमुख रूप से दो प्रकार के न्यायालय हैं—दीवानी और फौजदारी (Civil and Criminal)। इसके अतिरिक्त भूमि-कर से सम्बन्धित मामलों के लिए माल न्यायालयों (Revenue Courts) की व्यवस्था अवश्य ही अलग की गई है। कुछ अन्य देशों की भाँति हमारे देश में विशिष्ट न्यायालयों; जैसे सैनिक, तलाक, वसीयत, नाविक सेवा आदि का अभाव है।

(5) न्यायपालिका की सर्वोच्चता—भारत में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी का अपना अलग-अलग महत्व है परन्तु कुछ क्षेत्रों में न्याय-पालिका अन्य दो की अपेक्षा विशिष्ट महत्व रखता है। भारत में संविधान को ही सर्वोपरि माना गया है। संविधान के उल्लंघन का अधिकार किसी को भी नहीं है। यहाँ की न्यायपालिका ही संविधान की संरक्षक है। न्यायालय व्यवस्थापिका द्वारा पारित किए गए किसी भी कानून को संविधान विरोधी कहकर अवैध घोषित कर सकते हैं। इस प्रकार व्यवस्थापिका या कार्यपालिका न्यायपालिका की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं कर सकती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में न्यायपालिका को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान देकर नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा का ध्यान रखा गया है। संविधान ने न्यायपालिका को कार्यपालिका के प्रभाव से पूर्णतः स्वतन्त्र रखा है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि भारत के नीचे के न्यायालय अब भी कार्यपालिका के प्रभाव में रहते हैं, यद्यपि इस बात को दूर करने का प्रयास सर्वत्र हो रहा है।

उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court)

प्रश्न—भारत के उच्चतम न्यायालय की संरचना, शक्तियों, कार्य-प्रणाली और स्वतन्त्रता का वर्णन कीजिए।

दोहरी व्यवस्था के दर्शन होते हैं। अमेरिका में संघीय कानूनों को लागू करने के लिए संघीय न्यायालय होते हैं और राज्यों के कानूनों को लागू करने के लिए राज्यों के अलग न्यायालय होते हैं। संघीय न्यायालयों में चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय होता है और उसके नीचे अन्य प्रादेशिक एवं जिला न्यायालय भी होते हैं। राज्यों के अपने पृथक न्यायालय भी होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के योग्य वकील यह जानते हैं कि कौन सा मुकदमा संघीय न्यायालय में निर्णीत होगा और कौन सा राज्य के न्यायालय में। भारत भी संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति एक संघात्मक राज्य है; परन्तु यहाँ दोहरी न्याय-व्यवस्था को न अपनाकर इकहरी न्याय-व्यवस्था को अपनाया गया है। यहाँ चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय है। इसके नीचे प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय है तथा उसके नीचे अनेक जिला एवं अधीन न्यायालय हैं। देश के सभी न्यायालय एक लड़ की कड़ियां हैं और सभी न्यायालयों को संघीय एवं राज्य विधान-मण्डलों द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार न्याय-कार्य सम्पन्न करना होता है। भारतीय न्यायपालिका के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान डी० एन० बनर्जी ने लिखा है, "हमारी न्याय-प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता उसका इकहरा और सुसंगठित रूप है। यद्यपि हमारा संविधान अर्द्धसंघीय है; परन्तु हमारे न्यायालयों की प्रणाली उत्तराधिकारी ढंग से संगठित है। एक न्यायालय के ऊपर दूसरा न्यायालय है और सबसे चोटी पर भारत का सर्वोच्च न्यायालय है।"

"One of the striking features of our judicial system is its single, unified and integrated character. Although........our Constitution is quasi-federal, our system is, generally speaking, hierarchically organized one upon another with the Supreme Court of India at its apex."

—D. N. Banerjee.

श्री डी० के० सेन ने इस इस तथ्य को और अधिक सुन्दर शब्दों में स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है, "यद्यपि भारतीय गणतंत्र का राजनीतिक संगठन मुख्य रूप से संघात्मक है; उसका न्यायिक संगठन शुद्ध रूप से एकात्मक है। दूसरे शब्दों में भारतीय संविधान न्यायपालिका की दोहरी व्यवस्था को मान्यता नहीं प्रदान करता है।"

"While the political organization of the Indian Republic is primarily federal in character its judicial organization is purely unitary. In other words, the Indian Constitution does not recognize the qualiy of judicial machinery." —D. K. Sen.

(3) ब्रिटेन से मिलती-जुलती न्याय-व्यवस्था—भारत की न्याय व्यवस्था ब्रिटेन से बहुत हद तक मिलती-जुलती है। हमारे देश में एक ही प्रकार के कानून और एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। इस दृष्टि से देखें तो भारत में भी इंग्लैण्ड की भाँति "विधि के शासन" (Rule of Law) को मान्यता प्रदान की गई है। भारत की यह पद्धति फ्रान्स की पद्धति से पूर्णतया भिन्न है। फ्रान्स में प्रशासन अधिकारियों के लिए अलग कानून और न्यायालय है, परन्तु भारत में प्रधानमन्त्री से लेकर साधारण व्यक्ति तक के लिए एक ही प्रकार के कानून और न्यायालय हैं। एक ही प्रकार के कानून का उल्लंघन करने वाले किसी बड़े से बड़े अफसर और साधारण व्यक्ति दोनों को ही समान दण्ड मिलेगा।

(4) प्रमुख रूप से दो प्रकार के न्यायालय—भारतीय न्याय-व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ विभिन्न प्रकार के न्यायालयों के अलग-अलग दर्शन नहीं होते। यहाँ प्रमुख रूप से दो प्रकार के न्यायालय हैं—दीवानी और फौजदारी (Civil and Criminal)। इसके अतिरिक्त भूमि-कर से सम्बन्धित मामलों के लिए माल न्यायालयों (Revenue Courts) की व्यवस्था अवश्य ही अलग की गई है। कुछ अन्य देशों की भाँति हमारे देश में विशिष्ट न्यायालयों, जैसे सैनिक, सरकार, वाणिज्य, नाविक सेवा आदि का अभाव है।

(5) न्यायपालिका की सर्वोच्चता—भारत में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी का अपना अलग-अलग महत्व है परन्तु कुछ क्षेत्रों में न्यायपालिका अन्य दो की अपेक्षा विशिष्ट महत्व रखती है। भारत में संविधान को ही सर्वोपरि माना गया है। संविधान के उल्लंघन का अधिकार किसी को भी नहीं है। यहाँ की न्यायपालिका ही संविधान की संरक्षक है। न्यायालय व्यवस्थापिका द्वारा पारित किए गए किसी भी कानून को संविधान विरोधी कहकर अवैध घोषित कर सकते हैं। इस प्रकार व्यवस्थापिका या कार्यपालिका न्यायपालिका की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं कर सकती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में न्यायपालिका को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान देकर नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा का ध्यान रखा गया है। संविधान ने न्यायपालिका को कार्यपालिका के प्रभाव से पूर्णतः स्वतन्त्र रखा है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि भारत के नीचे के न्यायालय अब भी कार्यपालिका के प्रभाव में रहते हैं, यद्यपि इस बात को दूर करने का प्रयास सर्वत्र हो रहा है।

उच्चतम न्यायालय
(Supreme Court)

प्रश्न—भारत के उच्चतम न्यायालय की संरचना, शक्तियों, कार्य-प्रणाली और स्वतन्त्रता का वर्णन कीजिए।

(Describe the composition, powers, working and the indepen ndence of the Supreme Court of India.)

भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के विषय में आप क्या जानते हैं ? भारत और अमेरिका के उच्चतम न्यायालयों की तुलना कीजिए।

(What do you know about the jurisdiction of the Supreme Court ? Compare the Indian Supreme Court and the American Supreme Court.)

संघात्मक संविधान में संघ और इकाई राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन होता है और संघ एवं राज्यों की अलग-अलग सरकारें होती हैं। यदि इन दोनों के मध्य किसी प्रकार का गत्यवरोध उत्पन्न हो जाता है तो उसे दूर करने का कार्य एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायालय ही करता है, इसलिए संघीय देश में स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत में भी एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की भांति ही एक उच्चतम संघीय न्यायालय (Highest Federal Court) है। वह संविधान का संरक्षक है और उसका सर्वप्रमुख कार्य यह है कि वह संघ एवं राज्यों को संविधान का अतिक्रमण न करने दे। इस न्यायालय को इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि उसके नीचे के न्यायालय संविधान के अनुसार ही कार्य करें। भारत के उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में श्री एस० सी० सीतलवाद का मत है कि इस न्यायालय की शक्ति और अधिकार-क्षेत्र राष्ट्रमण्डल के किसी भी देश के सर्वोच्च न्यायालय तथा अमेरिका के उच्चतम न्यायालय से अधिक श्रेष्ठ है।

उच्चतम न्यायालय की संरचना (Composition of the Supreme Court)

संविधान के अनुच्छेद 124 (1) के अनुसार भारत के उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात सहायक न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई है। संसद विधि द्वारा न्यायाधीशों की उपर्युक्त संख्या में वृद्धि कर सकती है। न्यायाधिपति और न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को ही है। इस कार्य के हेतु वह उच्चतम न्यायालय और राज्यों के मुख्य न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों का, जिन्हें वह योग्य समझता है, परामर्श लेता है। मुख्य न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेता है।

न्यायाधीशों की योग्यता—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनने के हेतु किसी भी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए :—

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) कम से कम पाँच वर्ष तक वह किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर कार्य कर चुका हो, अथवा कम से कम 10 वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में वकालत कर चुका हो, अथवा राष्ट्रपति के मत से वह कानून का प्रसिद्ध ज्ञाता हो।

वेतन एवं भत्ते—सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधिपति को 5,000 रु० और अन्य न्यायाधीशों को 4,000 रु० मासिक वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य भत्ते भी दिये जाते हैं। उनको नि:शुल्क निवास-स्थान तथा यात्रा संबंधी सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं। न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते आदि के सम्बन्ध में संसद कानून बनाकर परिवर्तन कर सकती है, परन्तु किसी भी न्यायाधीश की कार्यावधि में उसके वेतन को घटाया नहीं जा सकता।

न्यायाधीशों की शपथ—सेवा-भार सम्हालने के पूर्व किसी भी न्यायाधीश को राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा भेजे गये किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख संविधान के प्रति निष्ठा एवं भक्ति की शपथ लेनी होती है। यह शपथ इस प्रकार की होती है, "मैं ......(नाम)........ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या गम्भीरतापूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूँगा और अपनी पूरी योग्यता, जानकारी एवं विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को धैर्य या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूँगा, और संविधान एवं विधियों की मर्यादा बनाए रखूँगा।"

न्यायाधीशों की कार्यावधि—उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष की अवस्था तक अपने पद पर कार्य करता है और 65 वर्ष की आयु के पश्चात् उसको सेवा-निवृत्त करके पेन्शन दे दी जाती है। इस अवस्था के पूर्व भी कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति के पास अपना लिखित त्यागपत्र भेजकर पद छोड़ सकता है। न्यायाधीशों को हटाया भी जा सकता है, परन्तु इसके लिए एक विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है। यदि किसी न्यायाधीश को हटाने के हेतु संसद के दोनों सदनों का बहुमत एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो तिहाई बहुमत प्रस्ताव पारित कर दे और राष्ट्रपति उस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दे तो वह न्यायाधीश अपने पद से च्युत समझा जायगा। न्यायाधीशों को पदच्युत करने की यह विशिष्ट व्यवस्था इसलिए की गई है कि न्यायाधीश बिना किसी भय अथवा हिचक के कार्य कर सके। वह व्यक्ति, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, किसी भी अदालत में वकालत अथवा अन्य कार्य नहीं कर सकता।

उच्चतम न्यायालय के अधिकार (Rights or the Jurisdiction of the Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय भारत का सर्वोच्च न्यायालय है अतएव उसे अत्यधिक

विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं। उच्चतम न्यायालय के अधिकारों को तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Orgin 1 Jurisdiction),

(2) अपीलीय क्षेत्रधिकार (Appell te Jurisdiction),

(3) अन्य अधिकार।

(1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार—प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में वे अधिकार आते हैं जो उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त किसी भी अन्य न्यायालय को प्राप्त नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय कुछ उन विवादों पर विचार करता है जिन पर अन्य न्यायालय विचार नहीं कर सकते। यह विवाद निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :—

(1) भारत सरकार के एक या एक से अधिक राज्यों के बीच के विवाद।

(2) एक ओर भारत सरकार तथा कोई राज्य अथवा राज्यों और दूसरी ओर एक या एक से अधिक राज्यों के बीच के विवाद।

(3) अपीलीय क्षेत्राधिकार—इन अधिकारों के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनता है। यह अपीलें संवैधानिक, दीवानी और फौजदारी तीनों ही हो सकती हैं।

(क) संवैधानिक अपीलें—भारत का उच्चतम न्यायालय ही संविधान का सर्वोत्तम व्याख्याता है यही कारण है कि यदि कोई उच्च न्यायालय के किसी मुकदमे में यह प्रमाण-पत्र दे दे कि उसमें संविधान की किसी धारा के सही अर्थ के बारे में शंका है तो यह मुकदमा उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए जा सकता है। जहाँ उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाण-पत्र न दिया हो वहाँ उच्चतम न्यायालय स्वयं भी इन मुकदमों की अपील की आज्ञा प्रदान कर सकता है।

(ख) फौजदारी की अपीलें—फौजदारी के मामले में भी उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील सुन सकता है, परन्तु यह अपील निम्नलिखित दशाओं में ही की जा सकती है :—

(1) जब कोई उच्च न्यायालय आधीन न्यायालय के निर्णय को रद्द करके अभियुक्त को मृत्यु-दण्ड दे।

(2) जब कोई उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे दे कि विवाद उच्चतम न्यायालय के सम्मुख पेश किए जाने के योग्य है।

(3) जब किसी उच्च न्यायालय ने किसी मामले को अधीनस्थ न्यायालय से मँगाकर अभियुक्त को मृत्यु-दण्ड दिया हो।

(ग) दीवानी की अपीलें—उच्चतम न्यायालय को दीवानी की अपीलें

सुनने का अधिकार है। परन्तु यह अपीलें निम्नलिखित दशाओं में सुनी जा सकती हैं :—

(1) यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे दे कि उस मुकदमे का सम्बन्ध ऐसे विषय से है जिस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए।

(2) यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाण-पत्र दे दे कि उस मामले की धनराशि का मूल्य 20,000 रु० से कम नहीं है।

(3) अन्य अधिकार—उपर्युक्त दो कार्यों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय के कुछ अन्य अधिकार एवं कार्य भी हैं। इनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(i) राष्ट्रपति को परामर्श देने का कार्य—जब राष्ट्रपति किसी प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की सलाह माँगता है तो उच्चतम न्यायालय को उसे मंत्रणा देनी होती है; परन्तु राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय की मंत्रणा को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

(ii) अधीनस्थ न्यायालयों की जाँच—उच्चतम न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों की जाँच करने का अधिकार भी प्राप्त है।

(iii) नागरिकों के मूलाधिकारों की रक्षा—उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मूलाधिकारों का रक्षक है। यह इन अधिकारों की रक्षा के हेतु बन्दी-प्रत्यक्षीकरण तथा परमादेश जारी कर सकता है।

(iv) संसद द्वारा पारित विधि को अवैध घोषित करना—उच्चतम न्यायालय संसद द्वारा पारित किसी विधि को अवैध घोषित कर सकता है, यदि उस विधि से संविधान की किसी धारा का उल्लंघन हो रहा हो।

(v) न्यायालयों की कार्यवाही-सचालन के हेतु नियम बनाना—उच्चतम न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने के हेतु नियम बनाने का अधिकार है, परन्तु उन नियमों पर राष्ट्रपति की स्वीकृति अनिवार्य है।

ऊपर हमने सर्वोच्च न्यायालय के जिन कार्यों का वर्णन किया है उनमें उसका सर्वप्रमुख कार्य संविधान की रक्षा करना ही है। इस सम्बन्ध में श्री डी० के० सेन ने लिखा है, यह न्यायालय भारत के सभी न्यायालयों के न्यायिक निरीक्षण की शक्तियाँ रखता है और यही संविधान का वास्तविक व्याख्याता और संरक्षक है। उसका यह कर्तव्य होता है कि वह यह देखे कि उसके प्रावधानों को उचित रूप में माना जा रहा है और जहाँ कहीं आवश्यक होता है वहाँ वह उसके प्रावधानों को स्पष्ट करता है।

"……… this court has general powers of judicial superintendence over all courts in India and it is the ultimate interpreter

and guardian of the Constitution. It has a duty to see that its provisions are faithfully observed and, where necessary to expound them."

—D. K. Sen.

यद्यपि यह ठीक है कि सर्वोच्च न्यायालय संविधान का व्याख्याता है; परन्तु उसे संविधान के निर्माता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रो० ऐलेक्जेन्ड्रोविल ने ठीक ही लिखा है कि, "भारतीय न्यायपालिका अतिरिक्त संविधान की निर्माता नहीं है यह केवल कानून की व्याख्याता है।"

"The Indian Judiciary is not concerned as additional Constitution maker, but as a body to express law."

उच्चतम न्यायालय की प्रक्रिया (Working of the Supreme Court)

उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्य-प्रणाली को निश्चित करने के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। जिन मुकदमों में कोई संविधान की व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न रहता है उनकी सुनवाई कम से कम पांच न्यायाधीशों की एक बेंच द्वारा की जाती है। अन्य प्रकार के मामलों की सुनवाई एक ही न्यायाधीश या एक से अधिक न्यायाधीश, जैसा कि न्यायालय के नियमों द्वारा निर्दिष्ट किया जाय, करते हैं। सभी मामलों पर निर्णय न्यायाधीशों के बहुमत से लिये जाते हैं; परन्तु इसके साथ ही यदि कोई न्यायाधीश बहुमत के निर्णय से सहमत न हो तो उसे अपना पृथक निर्णय (Dissenting Judgment) लिखने का अधिकार होता है। सभी निर्णयों और सम्मतियों को खुले न्यायालयों में देने की व्यवस्था है।

सन् 1950 ई० में प्रकाशित उच्चतम न्यायालय के नियमों के अनुसार सामान्यतः वह मुकदमे और अपीलें जो कि संवैधानिक होती हैं, उनकी सुनवाई न्यायाधीशों के एक मण्डल, जिसमें कम से कम तीन सदस्य होते हैं, के द्वारा की जाती है। इन सदस्यों को नामांकित करने का अधिकार मुख्य न्यायाधीश को होता है। यदि न्यायाधीश मण्डल यह समझता है कि किसी विशिष्ट मुकदमे में तीन से अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता है तो वह मुख्य न्यायाधीश को तुरन्त सूचना देता है और मुख्य न्यायाधीश तुरन्त कार्यवाही के हेतु आदेश देता है। संवैधानिक प्रश्नों से युक्त मुकदमों की सुनवाई 5 या उससे अधिक न्यायाधीशों की एक बेंच द्वारा की जाती है।

उच्चतम न्यायालय की स्वतन्त्रता (Independence of Supreme Court)

भारत का उच्चतम न्यायालय पूर्णतः स्वतन्त्र और निष्पक्ष है। उसकी स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता बनाये रखने के हेतु न्यायाधीशों की पदावधि निश्चित रखी गई है। न्यायाधीशों के कार्य-काल में, वित्तीय संकट को छोड़कर अन्य किसी स्थिति में

उनके वेतन को कम नहीं किया जा सकता। न्यायाधीशों को वेतन एवं भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जाते हैं। उनकी पदच्युति के लिए भी एक विशिष्ट प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है जिसकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। पदग्रहण करते समय न्यायाधीशों को निष्पक्षता एवं कर्तव्यनिष्ठा की शपथ लेनी होती है। न्यायाधीशों के कार्यकाल में उनकी नौकरी की शर्तों में उनके प्रतिकूल कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को पूर्णतया स्वतन्त्र और निष्पक्ष बनाया गया है और उस पर व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका का प्रभाव नहीं पड़ता। सर्वोच्च न्यायालय की यह निष्पक्षता ही नागरिकों की स्वतन्त्रता और उनके अधिकारों की रक्षक है।

भारत और अमेरिका के उच्चतम न्यायालयों की तुलना (Comparison between the Supreme Court of India and America)

भारत और अमेरिका दोनों ही देशों में संघीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं, परन्तु फिर भी दोनों देशों के सर्वोच्च न्यायालयों की स्थिति और शक्तियों में पर्याप्त अन्तर है। यहाँ हम इस अन्तर को संक्षेप में स्पष्ट कर रहे हैं।

(1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार-सम्बन्धी अन्तर—भारतीय उच्चतम न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार संघ और उसमें सम्मिलित इकाइयों के विधि-विहित अधिकार विषयक विवादों तक ही सीमित है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत का उच्चतम न्यायालय केवल उन्हीं मुकदमों की प्रारम्भिक सुनवाई करता है जो संघ और किसी राज्य या राज्यों में हों, अथवा जिसमें संघ या एक या एक से अधिक राज्य एक तरफ हों और एक या एक से अधिक राज्य दूसरी ओर हों, अथवा वह ऐसे मुकदमों की प्रारम्भिक सुनवाई करता है जो दो या उनसे अधिक राज्यों के मध्य हों। इनके अतिरिक्त अन्य मुकदमों की सुनवाई का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार भारत के उच्चतम न्यायालय को नहीं है। दूसरी ओर अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार अत्यन्त विस्तृत हैं। वहाँ का उच्चतम न्यायालय केवल संघ और उनकी इकाइयों के मध्य विवादों पर निर्णय ही नहीं करता, बल्कि राजदूतों, व्यापारिक दूतों, मन्त्रियों, नवसेना, तथा समुद्री यातायात से सम्बन्धित मामले भी उसके सम्मुख प्रारम्भिक रूप में आ सकते हैं। इस प्रकार हम यह सकते हैं कि प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के अधिकार भारत के उच्चतम न्यायालय से कहीं अधिक विस्तृत हैं।

(2) अपीलीय क्षेत्राधिकार सम्बन्धी अन्तर—अपीलीय क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार अमेरिका ही नहीं संसार के समस्त देशों के उच्चतम न्यायालयों से अधिक व्यापक हैं। भारत का उच्चतम न्याया-

लय सैन्य न्यायालयों के निर्णयों की अपीलों को छोड़कर किसी भी न्यायालय की दीवानी और फौजदारी दोनों की अपीलों को सुनने का अधिकार रखता है। उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को भारतीय संसद ने और अधिक व्यापक बना दिया है। अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार केवल उन संवैधानिक विवादों तक ही सीमित हैं जिनमें—(1) किसी राज्य के उच्च न्यायालय ने संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी विधि या सन्धि की वैधता के विरुद्ध अपना निर्णय दिया हो अथवा किसी ऐसे राज्य-विधि को वैध स्वीकार किया हो जो संयुक्त राज्य के संविधान या उसके किसी विधि के प्रतिकूल हो, (2) किसी दौरा न्यायालय (Circuit Cour.s) ने किसी राज्य के विधि को संघीय संविधान, संघीय विधि या संघ के प्रतिकूल घोषित कर दिया हो।

इस प्रकार अमेरिका के उच्चतम न्यायालय को केवल संवैधानिक महत्व की अपीलें सुनने का अधिकार है जब कि भारत का उच्चतम न्यायालय किसी भी प्रकार की कोई भी अपील सुन सकता है।

(3) संविधान के संरक्षण के सम्बन्ध में अन्तर—अमेरिका और भारत दोनों ही देशों में न्यायालय संविधान के संरक्षक हैं। यद्यपि कानूनों की असंवैधानिकता घोषित करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय को न तो अमरीकी संविधान के द्वारा प्राप्त हुआ है और न भारतीय संविधान के द्वारा, परन्तु वास्तव में संघीय व्यवस्था की आवश्यकताएँ एवं मूलाधिकारों की रक्षा के कारण दोनों ही देशों के न्यायालय इस अधिकार का उपभोग करते हैं। इस क्षेत्र में यदि हम किंचित गहनता से विचार करें तो अमरीकी उच्चतम न्यायालय को भारतीय उच्चतम न्यायालय से अधिक अधिकार प्राप्त हैं। अमरीकी उच्चतम न्यायालय किसी कानून को संवैधानिकता और असंवैधानिकता की दो कसौटियों पर कसता है—(1) जिस विधानमण्डल (संघ या राज्य) ने इस कानून को बनाया वह उसको बनाने की विधायिनी शक्ति रखता था या नहीं, और (2) वह कानून विधि की उचित प्रक्रिया (Duc Process of Law) की शर्तों को पूर्ण करता है अथवा नहीं। यदि वह कानून विधि की उचित प्रक्रिया के विरुद्ध है तो अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। विधि की प्रक्रिया का अर्थ है—स्वाभाविक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों या मानदण्डों के अनुसार होना। जो विधि इन सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं होती उसे विधि की उचित प्रक्रिया के अन्तर्गत नहीं माना जाता है और उसे असंवैधानिक घोषित करने का उच्चतम न्यायालय को पूर्ण अधिकार है। भारतीय संविधान में 'विधि की उचित प्रक्रिया' शब्दों का प्रयोग न करके 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' शब्दों को स्थान दिया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि भारत के उच्चतम न्यायालय को, किसी

ऐसे कानून को जिसका निर्माण भारतीय संसद या किसी राज्य विधानमण्डल ने अपनी विधायनी शक्तियों के अन्तर्गत किया है और इससे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं हो रहा है, असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार नहीं है। यहाँ सामान्य न्याय (Natural Justice) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान नहीं की गई है।

(4) परामर्श-सम्बन्धी अधिकार में अन्तर—भारत का उच्चतम न्यायालय परामर्श-सम्बन्धी अधिकार भी रखता है। अमेरिका का उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका को कानूनी परामर्श देने के लिए बाध्य नहीं है, परन्तु भारत में यदि कार्यपालिका कोई कानूनी परामर्श माँगती है तो उस उच्चतम न्यायालय को अवश्य ही देना होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत और अमरिका के उच्चतम न्यायालय की स्थापना यद्यपि लगभग एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई है, परन्तु फिर भी दोनों के कार्यों में पर्याप्त अन्तर है। भारत और अमरिका के उच्च न्यायालयों में कौन अधिक शक्तिशाली है इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि दोनों ही देशों में वहाँ के उच्चतम न्यायालयों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

राज्यों में उच्च न्यायालय
(*High Courts in the States*)

प्रश्न—भारत के राज्यों के उच्च न्यायालयों के संगठन, अधिकारों एवं कार्य-क्षेत्र की विवेचना कीजिए। राज्य के उच्च न्यायालयों की स्थिति के विषय में आप क्या जानते हैं?

(Discuss the Organization, Rights and Jurisdiction of the High Courts of Indian States. What do you know about their independence?)

उच्च न्यायालय का संगठन (Organization of High Court)

भारतीय संविधान में यह प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा। इस न्यायालय के अधीन राज्य के अन्य न्यायालय होते हैं और यह न्यायालय अन्य न्यायालयों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। उच्च न्यायालय में दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई होती है। प्रत्येक न्यायालय में एक न्यायाधिपति और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या भिन्न-भिन्न है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। इस न्यायालय का न्यायाधीश बनने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होना अनिवार्य है —

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह भारत के किसी न्यायालय में कम से कम 10 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो, अथवा किसी उच्च न्यायालय में 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रहा हो। राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपति एवं राज्यपाल से परामर्श करता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के हेतु वह राज्य के मुख्य न्यायाधिपति से भी सलाह करता है।

शपथ—नियुक्ति के पश्चात् प्रत्येक न्यायाधीश को एक शपथ लेनी होती है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन पूर्ण निष्ठा, योग्यता, और निष्पक्षता से करेगा। न्यायाधीश को अपने कार्य-काल में अपनी न्यायप्रियता और निष्ठा का परिचय देना होता है।

वेतन एवं भत्ते—भारतीय संविधान में न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों की भी चर्चा है। संविधान के अनुसार उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 4,000 रुपये और अन्य न्यायाधीशों को 3, 500 रुपये मासिक वेतन प्रदान किया जाता है। न्यायाधीशों के कार्य में उसके वेतन को घटाया नहीं जा सकता है। वेतन के अतिरिक्त उन्हें अन्य भत्ते भी प्रदान किए जाते हैं। अवकाश ग्रहण करने पर उन्हें अवकाश वृत्ति (Pension) दी जाती है जिसकी धनराशि का निर्णय करने का अधिकार भारतीय संसद को है। अवकाश वृत्ति के पश्चात् उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता।

कार्य-काल—उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर कार्य कर सकता है। परन्तु इससे पूर्व भी कोई न्यायाधीश अपना त्याग-पत्र दे सकता है अथवा उस पर दुराचरण या कार्यक्षमता की कमी का आरोप लगाकर उसे अपने पद से हटाया भी जा सकता है। उसे पदच्युत करने का निर्णय भारतीय संसद लेती है। किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने का निर्णय संसद के दोनों सदन कुल सदस्यों के बहुमत और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से लेते हैं। इसके बाद राष्ट्रपति उसे उसके पद से मुक्त कर सकता है। भारत का राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का स्थानांतरण एक राज्य से दूसरे राज्य में कर सकता है। उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश भारत के राष्ट्रपति से किसी अवकाशप्राप्त न्यायाधीश को पुनः न्यायाधीश बनाने की प्रार्थना कर सकता है और राष्ट्रपति द्वारा पुनः न्यायाधीश बनाये जाने पर उसे वही वेतन प्राप्त होता है जो वेतन अन्य न्यायाधीशों को मिलता है।

उच्च न्यायालय के अधिकार एवं कार्य-क्षेत्र (Rights and Jurisdiction of the High Court)

किसी भी राज्य का सम्पूर्ण भू-भाग उस राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के न्याय क्षेत्र में आता है। भारतीय संसद को यह अधिकार है कि वह किसी राज्य के उच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र उसके समीपवर्ती राज्य में भी बढ़ा दे। उच्च न्यायालय के विभिन्न अधिकारों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(1) संविधान सम्बन्धी मुकदमों पर निर्णय का अधिकार—भारत का संविधान एक लिखित संविधान है। उसकी विभिन्न धाराओं की व्याख्या समय-समय पर आवश्यक हो जाती है। उच्च न्यायालय दिन-प्रतिदिन ऐसे मुकदमों का निर्णय करता है जिनमें संविधान की किसी धारा की व्याख्या या स्पष्टीकरण करना होता है। संविधान से सम्बन्धित मामलों पर अपना निर्णय देने का इस न्यायालय को पूर्ण अधिकार है। बहुत अधिक जटिल मामलों को यह उच्चतम न्यायालय के पास भेज देता है। उच्च न्यायालय राज्य सरकार द्वारा पारित किसी ऐसे विधि को जो संविधान की किसी धारा का उल्लंघन करता हो, अवैध घोषित करता है। संवैधानिक विवाद से सम्बन्धित मामलों को उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों से मंगवा भी सकता है।

(2) मूलाधिकारों का संरक्षण—भारतीय संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों की विस्तृत चर्चा की गई है। इन मूलाधिकारों का संरक्षण उच्च न्यायालय करता है। उच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), अधिकार-पृच्छा (Quo-Warranto), तथा उत्प्रेषण (Certiorary) लेख (Writs) निकालने का अधिकार है। यह लेख नागरिकों के मूलाधिकारों के संरक्षण हेतु निकाले जाते हैं।

(2) अभिलेख न्यायालय—उच्च न्यायालय को अभिलेख न्यायालय के अधिकार भी प्राप्त हैं। यह न्यायालय अपनी मानहानि के मुकदमों को स्वयं सुनता है और उन पर निर्णय देता है।

उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के विरुद्ध अपीलें सुनता है। ये अपीलें दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। विल्स, तलाक, इनकम टैक्स तथा अन्य सम्बन्धों से सम्बन्धित अपीलें भी उच्च न्यायालय सुन सकता है। लघुवाद के न्यायालयों (Small Causes Courts) के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें उच्च न्यायालय में नहीं सुनी जातीं।

(4) प्रारम्भिक सुनवाई का अधिकार—अधिकतर राज्यों के उच्च न्यायालय दीवानी और फौजदारी सम्बन्धित अपीलें ही सुनते हैं, परन्तु कलकत्ता, बम्बई

और मद्रास के उच्च न्यायालय इस प्रकार के मुकदमों की प्रारम्भिक सुनवाई भी करते हैं। कोई भी मुकदमा अधीनस्थ न्यायालय में पेश किया किया जाय इसके लिए किसी व्यक्ति को वाध्य नहीं किया जा सकता।

(5) राज्यों की न्यायपालिका का प्रवन्ध—राज्य की न्यायपालिका का पूर्ण प्रवन्ध करने का कार्य भी उच्च न्यायालय का है। वह राज्य के विभिन्न न्यायालयों के कार्यों और गतिविधियों को देखता है और समुचित व्यवस्था करता है। इन अधिकारों का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(अ) अधीनस्थ न्यायालयों की जाँच—उच्च न्यायालय को यह पूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधीनस्थ न्यायालयों की जाँच करे और उनके कागजों का भली भाँति अवलोकन करे।

(ब) नियम निर्माण—अधीनस्थ न्यायालयों के भलीभाँति संचालन के हेतु उच्च न्यायालय ही नियम बनाता है और छोटे न्यायालयों को उन नियमों के अनुसार ही कार्य करना होता है।

(स) विभिन्न नियुक्तियाँ—न्यायपालिका से सम्बन्धित विभिन्न नियुक्तियाँ करने का अधिकार भी उच्च न्यायालय को है। साथ ही प्रदेश के राज्यपाल को भी इस संबंध में कुछ अधिकार दिए गये हैं।

(द) मुकदमों का हस्तान्तरण—उच्च न्यायालय को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह किसी भी अधीनस्थ न्यायालय के किसी भी मुकदमे को एक न्यायालय से हटाकर दूसरे न्यायालय में भेज दे।

(य) वकीलों एवं बैरिस्टरों आदि की फीस आदि का निर्धारण—वकीलों और बैरिस्टरों आदि की फीस भी उच्च न्यायालय निर्धारित करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्यों के उच्च न्यायालयों को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं।

उच्च न्यायालय की स्वतन्त्रता (Independence of the High Court)

भारतीय संविधान में इस बात की पूर्ण व्यवस्था की गई है कि हमारे न्यायालय निष्पक्ष रूप से कार्य कर सकें और उन पर कार्यपालिका का दवाव न हो। उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता के सम्बंध में भारतीय संविधान ने कुछ व्यवस्था की है, यथा—

(1) उच्च न्यायालय का प्रशासन, व्यय, राज्य की संचित निधि (Consolidated fund of the State) पर भारित रहेगा।

(2) वित्तीय आपातकालीन स्थिति को छोड़कर न्यायाधीशों के वेतन को उनके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता।

(3) न्यायाधीशों को दुराचरण और अयोग्यता का दोष लगाकर हटाया जा सकता है, परन्तु यह कार्य तभी सम्भव होगा जब कि भारत की संसद अपने दो तिहाई बहुमत से इन पर यह दोष लगाए और राष्ट्रपति भी उस पर अपनी सहमति प्रकट कर दे।

(4) किसी भी विधानमण्डल में न्यायाधीशों के कार्यों पर वाद-विवाद नहीं हो सकता।

(5) किसी राज्य का विधानमण्डल राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कोई ऐसा कानून नहीं बना सकता जिसका सीधा सम्बन्ध उच्च न्यायालय से हो।

(6) पद-निवृत्ति के पश्चात् कोई भी न्यायाधीश उसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उच्च न्यायालय को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की गई है और उसके कार्यों में हस्तक्षेप का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को छोड़कर अन्य किसी को नहीं है।

राज्यों की न्याय-व्यवस्था और हमारी न्याय-प्रणाली के दोष

(The Judiciary in States and the Defects of our Judicial System)

प्रश्न—राज्यों की न्याय-व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं? हमारी न्याय-व्यवस्था के दोषों का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

(What do you know about the judicial system of States ? Give a brief account of the defects of our judicial system ?)

प्रत्येक राज्य की न्याय-व्यवस्था ऊपर से नीचे तक जुड़ी रहती है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान किया गया है कि न्यायपालिका को कार्यपालिका के हस्तक्षेप से अधिक से अधिक दूर रखा जाय। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों की सरकारों ने ऐसे कदम उठाए हैं कि अधिकतम रूप से कार्यपालिका का न्यायपालिका पर जो भी नियन्त्रण रहता हो उसे समाप्त कर दिया जाय। यहाँ हम प्रदेश की सम्पूर्ण न्याय-व्यवस्था की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं —

(1) उच्च न्यायालय—भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। यह न्यायालय राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय है। इस न्यायालय के अधिकारों और कार्यों की चर्चा हम पिछले प्रश्न में विस्तार से कर चुके हैं।

(2) जिला न्यायालय—शासन की सुविधा के लिए प्रत्येक राज्य को जिलों में बाँटा गया है और प्रत्येक जिले में एक जिला न्यायालय स्थापित किया गया है। जिलों के न्यायालयों को हम निम्नलिखित कोटियों में विभाजित कर सकते हैं :—

(क) फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts),

(ख) दीवानी न्यायालय (Civil Court),
(ग) राजस्व न्यायालय (Revenue Court)।

(क) फौजदारी न्यायालय—जिले में उच्च न्यायालय की अधीनता में फौजदारी न्यायालय स्थापित किया जाता है जिसका प्रधान न्यायाधीश जिला या सेशन जज कहलाता है। जिला या सेशन जज को फौजदारी मुकदमों के साथ दीवानी के मुकदमों पर निर्णय देने का अधिकार होता है। जब वह फौजदारी के मुकदमों का निर्णय देता है तब उसका न्यायालय सेशन न्यायालय कहलाता है और जब यह दीवानी के मुकदमों का निर्णय देता है तब उसके न्यायालय को जिला न्यायालय (District Court) कहा जाता है।

फौजदारी के न्यायालयों में मारपीट, चोरी, डकैती, बलवा, झूठ, गाली-गलौज, अपहरण आदि मुकदमों का निर्णय होता है। इन मुकदमों के निर्णयों के हेतु सेशन जज के नीचे अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सम्मति से करता है। जिले के सेशन न्यायालय में अधीनस्थ जजों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनी जाती है। सेशन न्यायालय को किसी व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड देने का अधिकार है, परन्तु इस प्रकार के दण्ड देने के पूर्व उसे उच्च न्यायालय से स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। सहायक न्यायाधीश अधिक से अधिक केवल सात वर्ष की सजा दे सकता है। सेशन जज के नीचे कार्य करने वाले जजों की तीन श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट को 2 वर्ष की सजा और 1,000 रु० जुर्माना करने का अधिकार है। द्वितीय श्रेणी का मैजिस्ट्रेट 6 माह की सजा और 200 रु० जुर्माना और तृतीय श्रेणी का मैजिस्ट्रेट एक माह की कैद और 50 रु० जुर्माना कर सकता है।

द्वितीय और तृतीय श्रेणी के जजों के निर्णयों के विरुद्ध प्रथम श्रेणी के जज के न्यायालय में अपील हो सकती है और प्रथम श्रेणी के जज के निर्णय के विरुद्ध सेशन में अपील की जाती है। सेशन के निर्णयों के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में की जाती है।

(ख) दीवानी न्यायालय—प्रत्येक जिले में एक जिला दीवानी न्यायालय की व्यवस्था की गई है, जिसका प्रधान न्यायाधीश जिला जज होता है। सेशन और जिला जज एक ही व्यक्ति होता है। जिला जज 5,000 रु० तक के मुकदमों का निर्णय करता है। दीवानी की अदालतों में साझा, बँटवारा हक-सफा, कर्ज लेन-देन और उत्तराधिकार से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णय होता है।

जिला जज की सहायता के हेतु जिले में एक सिविल जज नियुक्त किया जाता है जो जिला जज के समान अधिकार वाला व्यक्ति होता है। उसके नीचे मुन्सिफ भी होते हैं। मुन्सिफ को 2,000 रु० तक की मालियत के मुकदमों का फैसला करने का अधिकार होता है। विशेष परिस्थितियों में यह 5,000 रु० तक की मालियत के मुकदमों का भी निर्णय कर सकता है। मुन्सिफ के अधीन खफीफा की अदालत होती

है। विशेष परिस्थितियों में सरीफा 1,000 रुपये तक की मालियत के मुकदमों के निर्णय कर सकता है।

(ग) राजस्व न्यायालय—भारतीय संविधान के लागू होने के पूर्व राजस्व सम्बन्धी मामलों की सबसे बड़ी इकाई "बोर्ड आफ रेवेन्यू" थी, परन्तु अब उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में राजस्व सम्बन्धी मामले भी आ गये हैं। "बोर्ड आफ रेवेन्यू" के नीचे कमिश्नर, तथा नायब तहसीलदार की अदालतें होती हैं जो मालगुजारी, लगान, सिंचाई आदि से सम्बन्धित मामलों का निर्णय करती हैं।

( ) पंचायती न्यायालय—भारत में पंचायतों का महत्व प्राचीन काल से रहा है। इस व्यवस्था को आधुनिक भारत में भी अपनाया गया है। गाँवों में छोटे-छोटे दीवानी तथा फौजदारी मुकदमें पंचायतें ही करती हैं। यह पंचायतें 100 रु० तक का जुर्माना कर सकती हैं और 100 रु० के मुकदमों का निर्णय कर सकती हैं। शान्ति व्यवस्था के हेतु यह किसी को 100 रु० का मुचलका भरने का आदेश दे सकती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रदेश की न्याय-व्यवस्था में एक तारतम्य बना रहता है और प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होता है कि यदि वह एक न्यायालय के निर्णय से सन्तुष्ट नहीं है तो वह दूसरे न्यायालय में (छोटे मुकदमों को छोड़कर) अपील कर सकता है। जिस की सम्पूर्ण न्याय-व्यवस्था की तालिका यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

फौजदारी न्यायालय (Cumii al Courts)	दीवानी न्यायालय (Civil Courts)	माली या राजस्व न्यायालय (Revenue Courts)
(1) उच्च न्यायालय	(1) उच्च न्यायालय	(1) उच्च न्यायालय
(2) सेशन जज का न्यायालय (Session's Court)	(2) जिला जज का न्यायालय	(2) बोर्ड आफ रेवेन्यू (Board of Revenue)
(3) प्रथम श्रेणी का मैजिस्ट्रेट	(3) सिविल जज का न्यायालय	(3) कमिश्नर का न्यायालय
(4) द्वितीय श्रेणी का मैजिस्ट्रेट	(4) मुन्सिफ का न्यायालय	(4) कलक्टर का न्यायालय
(5) तृतीय श्रेणी का मैजिस्ट्रेट	(5) सरीफा जज का न्यायालय (Small Causes Court)	(5) डिप्टी कलक्टर का न्यायालय
(6) पंचायती अदालत	(6) पंचायती अदालत	(6) तहसीलदार का न्यायालय
		(7) नायब तहसीलदार का न्यायालय
		(8) पंचायती अदालत

हमारी न्याय-व्यवस्था के दोष (Defects of our Judicial System)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि हमारी न्याय-प्रणाली अत्यन्त संगठित है; परन्तु इसके साथ ही इस न्याय-व्यवस्था में कुछ दोष भी हैं। इन दोषों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(1) अत्यधिक खर्चीली—हमारी न्याय-प्रणाली अत्यधिक खर्चीली है। यही कारण है कि सामान्य जनता न्याय से वंचित रह जाती है। कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि न्यायालय मत जाओ। न्याय के सम्बन्ध में कानूनी खर्चे तो होते ही हैं साथ ही न्यायालयों में गैर-कानूनी खर्चे आदि खुले आम हो रहे हैं। इस समस्या का समाधान अत्यन्त आवश्यक है।

(2) न्याय में विलम्ब —भारतीय न्याय-व्यवस्था का एक दोष यह भी है कि यहाँ न्याय अत्यन्त विलम्ब से मिलता है। कभी-कभी तो लोग जवानी में मुकदमा दायर कर देते हैं और बुढ़ापे तक उन्हें न्याय नहीं मिल पाता। अदालतों की संख्या मुकदमों को देखते हुए बहुत कम है। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरण रखना होगा कि मुकदमेबाजी, ग्रामीण जनता का मुख्य शौक रहा है। बहुत से व्यर्थ के मुकदमे अदालतों में आते हैं जिन पर भी उन्हें निर्णय देना होता है। आवश्यकता इस बात की है कि तुरन्त न्याय की व्यवस्था की जाय। कहा जाता है कि विलम्ब से प्राप्त हुआ न्याय, न्याय नहीं है (Justice delayed is Justice denied)। अतएव इस समस्या का समाधान भी अत्यन्त आवश्यक है।

(3) पक्षपात एवं भ्रष्टाचार—यद्यपि भारतीय संविधान में यह प्रावधान है कि कानून की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति समान होगा और प्रत्येक को निष्पक्ष रूप से न्याय मिलेगा, परन्तु भारत में व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न है। न्यायालयों में पक्षपात, सिफारिश, घूस और भ्रष्टाचार आदि का बोलबाला है। कुछ न्यायालय तो ऐसे बन गये हैं कि वहाँ बिना रिश्वत के कार्य ही नहीं चलता। खेद का विषय है कि हमारे देश का पढ़ा-लिखा वर्ग भी इस प्रकार के कार्य कर रहा है। जब न्याय करने वालों के सम्मुख अन्याय हो रहा है तो देश की स्थिति क्या होगी? संतोष इस बात का है कि हमारे देश के उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने सदैव ही पक्षपात रहित व्यवहार का परिचय दिया है। उन्होंने कभी भी यह नहीं सोचा कि उनके निर्णय से सरकार को हानि होगी या लाभ, सदैव ही न्याय का पक्ष लिया। कोई भी संवैधानिक व्यवस्था उत्पन्न हो जाने पर उन्होंने निष्पक्षतापूर्वक निर्णय दिया। हमारे देश की न्याय-व्यवस्था की नौका इन्हीं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों पर चल रही है, अन्यथा वह कभी की डूब गई होती।

अध्याय | 10

केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों का शासन

(THE TERRITORIES ADMINISTERED BY THE CENTRE)

संघीय क्षेत्रों की प्रशासन-व्यवस्था

(Administration of Union Territories)

प्रश्न—संघ प्रशासित क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about the administration of Union Territories ?)

भारत में राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् ए०, बी०, सी० और डी० राज्यों के भेद को समाप्त करके समस्त भारत को एक में राज्यों और कुछ केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में बाँट दिया गया है। समस्त राज्यों की प्रशासन-व्यवस्था एक ही तरह की रखी गयी। केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के लिए एक प्रावधान किया गया कि इनका प्रशासन भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक प्रशासक करेगा, जो केन्द्रीय सरकार के अधीन होगा। दिल्ली, मनीपुर, त्रिपुरा व अण्डमान में इस प्रशासक को चीफ कमिश्नर के नाम से पुकारा गया और हिमाचल प्रदेश में उसे लेफ्टीनेन्ट गवर्नर कहा गया।

हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा, गोवा-दामन-ड्यू में सार्वजनिक मंत्रिमण्डलों के गठन का प्रावधान किया गया। इन मंत्रिमण्डलों को स्थानीय मामलों में स्वशासन का अधिकार प्राप्त हुआ और यह मंत्रिमण्डल स्थानीय परिषद् के प्रति उत्तरदायी बनाये गए। शेष पाँच क्षेत्रों का शासन अलग-अलग ढंग से होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत के 10 केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में पाँच (हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मनीपुर, गोवा-दामन-ड्यू और पाण्डिचेरी) में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। चार क्षेत्रों (अण्डमान-निकोबार, दादर नगर हवेली, तथा [illegible] द्वीप समूह और [illegible]) में अनुत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। दिल्ली के शासन-प्रबन्ध के लिए एक भिन्न प्रकार की व्यवस्था की गई।

उत्तरदायी शासन वाले क्षेत्र—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय संसद ने जुलाई, 1963 में एक ऐक्ट पारित करके हिमाचल प्रदेश, मणीपुर, त्रिपुरा, गोवा-डामन-ड्यू और पांडिचेरी में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का गठन कर दिया। उन क्षेत्रों में विधानसभाओं का प्रावधान किया गया। हिमाचल प्रदेश की विधान सभा में 60 सदस्य और शेष चार राज्यों की *विधान-सभाओं में 30, 30* सदस्य रखे गए।

मणीपुर, त्रिपुरा के अध्यक्ष चीफ-कमिश्नर और हिमाचल प्रदेश, गोवा-डामन-ड्यू और पांडिचेरी के अध्यक्ष लेफ्टीनेन्ट या चीफ गवर्नर कहलाये। इन क्षेत्रों को भारी अनुदान दिया जाता है और लेफ्टीनेन्ट या चीफ कमिश्नर भारत सरकार के गृह विभाग की सलाह से अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। इन राज्यों को विधान सभाओं की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त हैं। अन्य राज्यों में गवर्नर केवल नाम मात्र का अध्यक्ष होता है और वह विधानसभाओं द्वारा लिये गये निर्णयों पर अधिकतर अपनी सहमति प्रगट कर देता है। परन्तु इन राज्यों में लेफ्टीनेन्ट गवर्नर या चीफ कमिश्नर को वास्तविक अधिकार प्राप्त है। वह विधानसभाओं के निर्णयों पर पुनः विचार कर सकते हैं, केन्द्रीय सरकार के आदेश पर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं।

साधारणतया यह देखा जाता है कि लेफ्टीनेन्ट गवर्नर या चीफ-कमिश्नर मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते और विधान-सभाओं के निर्णयों पर अपनी सहमति प्रकट कर देते हैं। परन्तु साथ ही वे इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि केन्द्रीय सरकार के इन इलाकों के प्रति जो विशेष जिम्मेदारियां हैं उन्हें पूरी तरह निभाया जाय।

अनुत्तरदायी शासन वाले क्षेत्र—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि चार क्षेत्रों में अनुत्तरदायी शासन की स्थापना की गई है। इन क्षेत्रों में लोकप्रिय सरकारें नहीं बनाई गईं। अंडमन-निकोबार, दादर नगर-हवेली तथा लक्का द्वीप समूह इतने पिछड़े हुए क्षेत्र हैं और इनकी जनसंख्या इतनी कम है कि इनमें लोकप्रिय शासन की स्थापना करना उचित नहीं समझा गया। इन क्षेत्रों का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है और केन्द्रीय सरकार ने यहां चीफ कमिश्नरों या प्रशासकों की नियुक्ति की है। इन प्रशासकों से यह कहा गया है कि वे स्थानीय जनता को अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान करें और विभिन्न क्षेत्रों में ऐसी पंचायतों आदि का निर्माण करें जिनमें जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाय। क्षेत्रीय लोगों से सलाह मशविरा करके ही वे शासन कार्य का संचालन करें।

चंडीगढ़, जिसे पंजाब और हरियाणा दोनों ही राज्य अपने क्षेत्र में लेना चाहते हैं, में एक एडमिनिस्ट्रेटर की नियुक्ति की गई है।

(दिल्ली की शासन-व्यवस्था का वर्णन हम अगले प्रश्न में कर रहे हैं)

दिल्ली का शासन-प्रबन्ध

(The Administration of Delhi)

प्रश्न—दिल्ली महानगर परिषद् के विषय में प्रकाश डालते हुए दिल्ली के प्रशासन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(Write a short note on the a lministration of Delhi and throw light on the Metropolitan Co ncil of D lhi.)

दिल्ली अति प्राचीन काल से ही भारत की प्रसिद्ध नगरी रही है। इसने अनेक शासकों का उत्थान और पतन देखा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ब्रिटिश काल में दिल्ली का चीफ कमिश्नर का प्रान्त कहा जाता था। यहाँ का प्रशासन चीफ कमिश्नर के हाथ में था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान के लागू होने पर सन् 1952 ई० में भारत सरकार ने यहाँ सीमित उत्तरदायी शासन की स्थापना की। पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना यहाँ इसलिए नहीं की गई कि यहाँ का शासन प्रबन्ध अति उत्तम होना परम आवश्यक था, क्योंकि यह भारत की राजधानी थी और यहाँ विभिन्न देशों के राजदूत एवं प्रतिनिधि निवास करते थे। फलस्वरूप, केन्द्र सरकार ने शासन का प्रमुख सूत्र अपने हाथ में रखना ही उचित समझा। दिसम्बर, सन् 1952 ई० में दिल्ली के प्रशासन के लिए एक विधान सभा का गठन किया गया जिसमें 48 सदस्य रखे गये। एक मन्त्रिमण्डल का भी गठन किया गया। शान्ति-व्यवस्था, न्याय, पुलिस, स्वायत्त-शासन संस्थाएँ और भूमि और भवन आदि विषयों पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार रखा गया। परन्तु यातायात, जेल, [illegible], उद्योग और कृषि आदि के सम्बन्ध में विधानसभा को पूरा अधिकार दिये गये। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में चीफ कमिश्नर को सभापति का आसन ग्रहण करने का अधिकार प्रदान किया गया।

दिल्ली में आंशिक उत्तरदायी शासन की व्यवस्था अधिक सफल न रही। जिम्मेदारी के विभाजन के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती थीं। फलस्वरूप सन् 1956 ई० में राज्य की विधान सभा को समाप्त कर दिया गया और दिल्ली को पूर्णरूप से केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बना दिया गया। समस्त शासन में सार्वजनिकता लाने के लिए एक जन-सम्पर्क समिति, एक औद्योगिक परामर्श समिति और एक परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया। चीफ कमिश्नर इन समितियों की राय मानने के लिए बाध्य नहीं था।

—

उत्तरदायी शासन वाले क्षेत्र—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय संसद ने जुलाई, 1963 में एक ऐक्ट पारित करके हिमाचल प्रदेश, मणीपुर, त्रिपुरा, गोवा-डामन-ड्यू और पांडिचेरी में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का गठन कर दिया। उन क्षेत्रों में विधानसभाओं का प्रावधान किया गया। हिमाचल प्रदेश की विधान सभा में 60 सदस्य और शेष चार राज्यों की विधान-सभाओं में 30, 30 सदस्य रखे गए।

मणीपुर, त्रिपुरा के अध्यक्ष चीफ-कमिश्नर और हिमाचल प्रदेश, गोवा-डामन-ड्यू और पांडिचेरी के अध्यक्ष लेफ्टीनेन्ट या चीफ गवर्नर कहलाये। इन क्षेत्रों को भारी अनुदान दिया जाता है और लेफ्टीनेन्ट या चीफ कमिश्नर भारत सरकार के गृह विभाग की सलाह से अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। इन राज्यों को विधान सभाओं की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त हैं। अन्य राज्यों में गवर्नर केवल नाम मात्र का अध्यक्ष होता है और वह विधानसभाओं द्वारा लिये गये निर्णयों पर अधिकतर अपनी सहमति प्रगट कर देता है। परन्तु इन राज्यों में लेफ्टीनेन्ट गवर्नर या चीफ कमिश्नर को वास्तविक अधिकार प्राप्त हैं। वह विधानसभाओं के निर्णयों पर पुनः विचार कर सकते हैं, केन्द्रीय सरकार के आदेश पर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं।

साधारणतया यह देखा जाता है कि लेफ्टीनेन्ट गवर्नर या चीफ-कमिश्नर मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते और विधान-सभाओं के निर्णयों पर अपनी सहमति प्रकट कर देते हैं। परन्तु साथ ही वे इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि केन्द्रीय सरकार के इन इलाकों के प्रति जो विशेष जिम्मेदारियाँ हैं उन्हें पूरी तरह निभाया जाय।

अनुत्तरदायी शासन वाले क्षेत्र—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि चार क्षेत्रों में अनुत्तरदायी शासन की स्थापना की गई है। इन क्षेत्रों में लोकप्रिय सरकारें नहीं बनाई गईं। अंडमन-निकोबार, दादर नगर-हवेली तथा लक्क द्वीप समूह इतने पिछड़े हुए क्षेत्र हैं और इनकी जनसंख्या इतनी कम है कि इनमें लोकप्रिय शासन की स्थापना करना उचित नहीं समझा गया। इन क्षेत्रों का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है और केन्द्रीय सरकार ने यहाँ चीफ कमिश्नरों या प्रशासकों की नियुक्ति की है। इन प्रशासकों से यह कहा गया है कि वे स्थानीय जनता को अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान करें और विभिन्न क्षेत्रों में ऐसी पंचायतों आदि का निर्माण करें जिनमें जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाय। क्षेत्रीय लोगों से सलाह मशविरा करके ही वे शासन कार्य का संचालन करें।

दिल्ली महानगर परिषद् (Metropoliton Council of Delhi)

दिल्ली की जनता उपर्युक्त व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थी। उसका कहना था कि दिल्ली का समस्त प्रबन्ध सरकारी संस्थाओं के हाथ में है और जनता के प्रतिनिधियों को शासन में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है, फलस्वरूप जनता की बात सुनने वाला कोई नहीं है। यह माँग की गई कि प्रशासन के लिए एक ऐसी संस्था का गठन किया जाय जिसमें जनता के प्रतिनिधि हों। केन्द्रीय सरकार ने इस माँग को स्वीकार किया और सन् 1966 ई० के प्रारम्भ में भारतीय संसद में दिल्ली प्रशासन विधेयक प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक के पारित हो जाने के फलस्वरूप 7 सितम्बर, सन् 1966 ई० को दिल्ली में अन्तरिम रूप से एक महानगर परिषद् की स्थापना की गई जिसमें 47 सदस्य रखे गये। ये सदस्य, दिल्ली नगर निगम के सदस्यों, दिल्ली क्षेत्र से चुने गये संसद सदस्यों और दिल्ली छावनी बोर्ड के सदस्यों द्वारा चुने गये। महानगर परिषद् की एक अन्तरिम कार्यकारिणी परिषद् का भी गठन किया गया।

महानगर परिषद् का गठन—फरवरी, सन् 1967 ई० में भारत में चतुर्थ आम चुनाव हुआ। इन चुनावों के साथ ही दिल्ली महानगर परिषद् के भी चुनाव हुए। महानगर परिषद् के 56 सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार द्वारा किया गया। उपराज्यपाल को पाँच सदस्यों को नामजद करने का अधिकार दिया गया।

महानगर परिषद् के कार्यों को करने के लिए एक कार्यकारिणी समिति का गठन किया गया। इसके चार सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए जाते हैं। इनको नामजद करते समय राष्ट्रपति इस बात का ध्यान रखता है कि उन चारों सदस्यों को बहुमत दल का समर्थन प्राप्त हो। इस आम चुनाव में जनसंघ दल का बहुमत हुआ। फलस्वरूप उस दल के नेता श्री विजयकुमार मल्होत्रा मुख्य कार्यकारी पार्षद (Chief Executive Councillor) नियुक्त हुए और उनकी सलाह पर तीन अन्य पार्षद नामजद किये गए। ये कार्यकारी पार्षद मन्त्री नहीं कहलाते हैं, परन्तु व्यावहारिक रूप में वे मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का सा ही कार्य करते हैं।

महानगर परिषद् के अधिकार—महानगर परिषद् को विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, आयोजना, बिक्री कर, उद्योग, सहकारिता और सरकारी भवनों आदि की देखभाल करने एवं उनकी समुचित व्यवस्था करने का अधिकार है। महानगर परिषद् राज्य सूची एवं समवर्ती सूची के विषयों पर नियम बनाने की सलाह केन्द्रीय सरकार को दे सकती है। शान्ति-व्यवस्था, वित्त, न्याय और पुलिस आदि पर महानगर परिषद् का कोई नियन्त्रण नहीं रहता। इनके प्रबन्ध का अधिकार उप-राज्यपाल को दिया गया है।

उप-राज्यपाल के अधिकार—उप-राज्यपाल की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और उसकी कार्यावधि 5 वर्ष रखी गयी है। उप-राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तरदायी होता है। उप-राज्यपाल को नगर परिषद् का अधिवेशन बुलाने, उसकी बैठक में भाग लेने, भाषण देने और कार्यकारिणी की बैठकों में सभापतित्व का आसन ग्रहण करने का अधिकार है। उप-राज्यपाल, पुलिस, भूमि, न्याय आदि की व्यवस्था करता है।

महानगर परिषद् का मूल्यांकन—महानगर परिषद् की स्थापना एक बड़ा ही उचित कदम है। इसकी स्थापना से दिल्ली की जनता को अपने ऊपर शासन करने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया है। परन्तु जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि महानगर परिषद् पूर्ण स्वतन्त्र संस्था नहीं है। उसकी भी सीमाएँ हैं। दिल्ली की अधिकांश जनता पूर्ण उत्तरदायी शासन की माँग कर रही है। दिल्ली में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना उचित होगी या अनुचित यह एक बड़ा विवादास्पद प्रश्न है। इस पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

दिल्ली का सचिवालय—दिल्ली प्रशासन का अपना एक अलग सचिवालय है। प्रशासन का कार्य चलाने के लिए एक मुख्य सचिव है। इसके साथ ही [illegible] और जुडीशियल सचिव अलग नियुक्त किए गए हैं। इनके अतिरिक्त [illegible] उपसचिव, 27 सुपरिटेन्डेन्ट और 200 सहायक एवं क्लर्क हैं। सचिवों के अतिरिक्त अन्य विभागीय अधिकारी भी हैं। जैसे विकास आयुक्त, शिक्षा संचालक, श्रम आयुक्त, समाज कल्याण विभाग संचालक, [illegible] संचालक, [illegible], [illegible] सुधारक, नागरिक प्रतिरक्षा विभाग संचालक, [illegible] विभाग संचालक और सार्वजनिक अभियन्ता व सभी अपने अपने विभाग का संचालन करते हैं।

दिल्ली नगर निगम, नगरपालिका और छावनी-बोर्ड एवं ग्राम पंचायतें—दिल्ली महानगर परिषद् के साथ ही दिल्ली के प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए दिल्ली नगर निगम, नयी दिल्ली नगरपालिका और दिल्ली छावनी-बोर्ड का अलग से गठन किया गया है। दिल्ली नगर निगम के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। सन् 1967 ई० के आम चुनाव के साथ दिल्ली नगरपालिका के 106 सदस्यों का चुनाव हुआ। दिल्ली नगर निगम के अन्तर्गत नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी और दिल्ली छावनी बोर्ड के क्षेत्र के अतिरिक्त समस्त भाग आते हैं। नगर निगम का एक मेयर (Mayor) होता है जो दिल्ली का प्रथम नागरिक माना जाता है। विभिन्न कार्यों को [illegible] के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया जाता है। दिल्ली नगर निगम [illegible]

को सम्पन्न करता है जो अन्य नगरों के नगर निगम सम्पन्न करते हैं। इन कार्यों में प्रमुख हैं—

(1) पानी एवं बिजली का प्रबन्ध करना।

(2) सफाई, चिकित्सा एवं परिवार-नियोजन की व्यवस्था का कार्य करना।

(3) संक्रामक रोगों से सुरक्षा की व्यवस्था करना और टीके लगवाना।

(4) निगम क्षेत्र में परिवहन की व्यवस्था करना।

(5) गन्दी बस्तियों का सुधार एवं शिशु-गृहों का तथा प्रसूति गृहों का निर्माण तथा संचालन।

(6) प्राइमरी शिक्षा का प्रबन्ध।

(7) सड़कों, पुलों, बागानों और पार्कों आदि का निर्माण एवं उनकी व्यवस्था करना।

(8) भवन-निर्माण के नियम बनाना एवं उनके निर्माण के लिए आज्ञा देना।

(9) खाद्य पदार्थों की देख-रेख करना एवं उनमें मिलावट को रोकना।

(10) अग्नि से बचाव के लिए व्यवस्था करना।

(11) साइकिलों, टांगों और रहड़ों आदि के लिए लाइसेन्स देना।

(12) क्षेत्र की जन-गणना का हिसाब रखना।

नई दिल्ली के कनाटप्लेस तथा सेन्ट्रल सेक्रिटेरियट के चारों ओर के इलाकों पर दिल्ली नगर निगम का अधिकार-क्षेत्र लागू नहीं होता। इस क्षेत्र की जनसंख्या लगभग 3 लाख है और इसमें अधिकतर सरकारी कार्यालय और विदेशी दूतावासों के कार्यालय स्थित हैं। इस क्षेत्र के प्रबन्ध के लिए नई दिल्ली नगरपालिका की स्थापना की गई है, जो पूर्ण रूप से मनोनीत संस्था है। इस संस्था में 11 सदस्य हैं। इनमें से एक प्रधान, दो उप-प्रधान, दो स्त्रियां, दो हरिजन, एक वित्त मंत्रालय का प्रतिनिधि, एक गृह-विभाग का आफिसर होता है। इन सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है। इन सदस्यों का प्रधान सरकारी अधिकारी होता है। पांच सरकारी सदस्य और पांच गैर सरकारी सदस्य होते हैं।

नई दिल्ली नगरपालिका अपने क्षेत्र में वही सब कार्य करती है जो दिल्ली नगरनिगम अपने क्षेत्र में करता है। नगरपालिका की वार्षिक आय लगभग आठ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष है और इस राशि को नगरपालिका अपने क्षेत्र को अत्यन्त स्वच्छ और रमणीय बनाने के हेतु व्यय करती है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका को केन्द्रीय सरकार पर्याप्त धनराशि अनुदान में देती है जिससे कि नगरपालिका को किसी आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े।

छावनी-क्षेत्र, जिसका क्षेत्रफल 16.6 वर्ग मील है और जिसकी आबादी 36

105, (25,500 व्यक्ति असैनिक) है, के प्रबन्ध के लिए छावनी बोर्ड का निर्माण किया गया है। इस बोर्ड में सात सदस्य असैनिक नागरिक होते हैं जिनका चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता है, और सात सदस्य सैनिक एवं सरकारी अधिकारियों में से मनोनीत किये जाते हैं। स्टेशन कमाण्डर इस छावनी बोर्ड का पदेन सभापति होता है।

सभापति की सहायता के हेतु एक उप-सभापति भी निर्वाचित होता है। इस बोर्ड का कार्य असैनिक नागरिकों को नागरिक सुविधाएँ प्रदान करना, उनके हेतु जल, बिजली, सफाई, चिकित्सा, स्वास्थ्य-रक्षा और प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करना है।

निष्कर्ष—अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत की राजधानी दिल्ली के प्रशासन के लिए जिस व्यवस्था को अपनाया गया है वह निःसंदेह प्रशंसनीय है। यद्यपि दिल्ली में पूर्ण उत्तरदायित्व प्रशासन की स्थापना की माँग निरंतर हो रही है; परन्तु हमारा विचार है कि वर्तमान परिस्थिति में जैसी व्यवस्था बनी है उसे वैसी ही रहने दिया जाय। राजनीतिक उच्छृङ्खलता के इस युग में किया गया परिवर्तन दिल्ली के प्रशासन के लिए बड़ा घातक सिद्ध हो सकता है।

अध्याय | 11

केन्द्र और राज्यों का सम्बन्ध
(RELATIONS BETWEEN THE CENTRE AND THE STATES)

वैधानिक, प्रशासकीय और आर्थिक सम्बन्ध

(Legislative, Administrative and Economic Relations)

प्रश्न—केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What do you know about the relations between the Centre and the States ?)

केन्द्र और राज्य सरकारों के वैधानिक सम्बन्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(Write a short note on the Legislative relations of the Central and Provincial Governments.)

संघ और राज्यों के प्रशासन विषयक और अर्थ विषयक सम्बन्धों की विवेचना कीजिए और स्पष्ट कीजिए कि इन क्षेत्रों में केन्द्र का राज्यों पर पर्याप्त नियंत्रण होता है।

(Discuss the Administrative and economic relations between the Centre and the States and clarify that the Centre has much control over the States in these fields.)

भारत का संविधान एक संघीय संविधान है। संघात्मक शासन-व्यवस्था में संघ और उसके घटक राज्यों में समुचित विभाजन होता है। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में कार्यों को पूर्ण करते हैं और देश की उन्नति में सहायता प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में डा० के० सी० ह्वियर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "संघीय सिद्धान्त से मेरा आशय शक्तियों का इस प्रकार के विभाजन का ढंग है कि संघीय और क्षेत्रीय सरकारें दोनों ही स्वतन्त्र सीमा में रहते हुये भी एक दूसरे की सहयोगी रहें।"

"By the federal principle I mean the method of dividing powers so that the general and regional Governments are each within a sphere co-ordinate and independent."

—K. C. Wheare.

इसी कारण संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में, संघात्मक प्रणाली की व्यवस्था मान लेने के पश्चात् सरकार और राज्यों की सरकार के अधिकारक्षेत्र का स्पष्ट विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी इस प्रणाली को अपनाकर भारतीय संघ के राज्यों और केन्द्र के अधिकारों एवं कार्यों का स्पष्ट विभाजन किया है।

भारतीय संविधान में अन्य संघीय संविधानों की तरह राज्यों को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्रदान नहीं किए गये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य की सरकारों को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए हैं परन्तु भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है। यहाँ राज्यों की अपेक्षा केन्द्र की शक्ति बहुत अधिक है परन्तु आन्तरिक प्रशासन में राज्य एक प्रकार से स्वतन्त्र हैं।

केन्द्र के इतने विस्तृत अधिकारों को देखकर अनेक विद्वान तो भारतीय संविधान को संघात्मक न मान कर एकात्मक मानते हैं और अनेक उसे अर्द्ध-संघीय संविधान कहते हैं। प्रो० के० सी० व्हियर ने इस सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'यह एक ऐसी सरकार की स्थापना करता है जो कि कार्य में अर्द्ध-संघीय है, व्यवहार में पृथक्करणवादी है और एकात्मक राज्य है जिसमें बहुत से संघीय तत्त्व हैं न कि एक संघीय राज्य है जिसमें सहायक एकात्मक तत्त्व हैं।'

'It establishes, indeed a system of Govt. which is at most quasi-federal, almost devolutionary in character, a unitary state with subsidiary federal features rather than a federal state with subsidiary unitary features.'

—K. C. Wheare

परन्तु यदि विभिन्न लक्षणों पर विचार करें तो व्हियर महोदय के इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति के दर्शन होते हैं। केन्द्र को अधिक व्यापकता का उद्देश्य विघटन को दूर करने, राष्ट्र-व्यापी समस्याओं के समाधान और अखण्डता की रक्षा के हेतु कुछ विशेष अधिकार अवश्य दिए गए हैं परन्तु केन्द्र के ये अधिकार राज्यों के अधिकारों का अपहरण नहीं करते। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने केन्द्र को शक्तिशाली इसलिए बनाया है कि यदि राज्यों का आन्तरिक प्रशासन बिगड़ जाए तो केन्द्र उन्हें सहायता प्रदान करे। राज्य अपने आन्तरिक प्रशासन में पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा देश की शान्ति एवं सुरक्षा के लिए केन्द्र सुदृढ़ है।

प्रसिद्ध विद्वान् श्री जी० एन० जोशी के शब्दों में,........"यद्यपि राज्य स्वायत्त शासन के अधिकारी हैं परन्तु सम्पूर्ण भारत की शान्ति और सुरक्षा का अंतिम और अवशिष्ट दायित्व केन्द्रीय सरकार पर ही है।"

"........While the states are autonomous the ultimate and residuary responsibilty for peace and safety of the whole of India is vested in the Government of India."

—G. N. Joshi.

केन्द्र और राज्यों की विशिष्ट स्थिति के दिग्दर्शन के पश्चात् अब हम विभिन्न क्षेत्रों में इन दोनों के सम्बन्धों का विवेचन करेंगे। अध्ययन की सुविधा के लिए हम उनके सम्बन्धों को तीन रूपों में प्रस्तुत करेंगे—

(1) वैधानिक संबंध,
(2) प्रशासकीय संबंध,
(3) आर्थिक संबंध।

(1) वैधानिक सम्बन्ध (Legislative Relations)

भारतीय संविधान के अनुसार विधि-निर्माण योग्य विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया है—(क) संघ सूची, (ख) राज्य सूची, (ग) समवर्ती सूची।

(क) संघ-सूची—संघ-सूची में रक्षा, विदेश-नीति, डाक-तार, रेल, मुद्रा, युद्ध एवं शान्ति आदि 97 विषय रखे गए हैं। इन विषयों पर विधि-निर्माण का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है और किसी भी राज्य की सरकार इन विषयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इन विषयों के संबंध में समस्त देश में एक ही प्रकार की प्रणाली प्रचलित है।

(ख) राज्य-सूची—राज्य-सूची में कानून व्यवस्था, जेल, स्वास्थ्य, ग्राम सुधार, मालगुजारी और औद्योगिक उन्नति आदि 66 विषय सम्मिलित किए गए हैं। इन विषयों पर विधि-निर्माण का अधिकार राज्य सरकारों को है परन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार भी इन विषयों पर कानून बना सकती है।

यदि राज्य सभा के उपस्थित सदस्य अपने 2/3 बहुमत से यह पारित कर दें कि केन्द्र राज्य-सूची के अन्तर्गत किसी विशिष्ट विषय पर कानून बनाए तो संघ की पार्लियामेंट को उक्त विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि किसी राज्य में संविधान के अनुसार कार्य कर सकना असंभव हो जाता है तो राष्ट्रपति संकटकाल की स्थिति की घोषणा कर देता है। इस स्थिति में राष्ट्र की संसद को राज्य-सूची के किसी भी विषय में कानून बनाने का अधिकार होता है।

बाह्य आक्रमण, युद्ध व आंतरिक अशान्ति के आधार पर आपातकालीन स्थिति की घोषणा हो जाने पर भी केन्द्र को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। यदि दो या दो से अधिक राज्य राज्य-सूची के किसी विषय पर कानून बनाने की याचना करते हैं तो संसद को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह उस विषय में विधि निर्माण करे। संविधान के अनुच्छेद 253 के अनुसार भारत की संसद को किसी संधि, समझौता या अन्य देशों के साथ हुए पास किसी निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए किसी भी सूची के किसी भी विषय में कानून बनाने का अधिकार है। यद्यपि राज्यों के उच्च न्यायालयों को छोड़ कर सभी न्यायालयों के निर्माण व गठन का कार्य राज्य-सूची के अंतर्गत रखा गया है, परन्तु इस संबंध में भी यह उल्लेखनीय है कि संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह हस्तक्षेप करके कोई ऐसा कानून बनाये जो इसके लिए हितकारी हो।

(ग) समवर्ती सूची—समवर्ती सूची में फौजदारी, कानून, विवाह विच्छेद, सम्पत्ति का हस्तांतरित होना, समझौते का कानून आदि 40 विषय रखे गये हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर विधि निर्माण करने का अधिकार संघ एवं राज्य दोनों को है, परन्तु इस क्षेत्र में भी केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं।

केन्द्र अधिक शक्तिशाली है—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संविधान द्वारा राज्य और केन्द्र के विधि निर्माण के क्षेत्र को विभाजित कर दिया गया है और केन्द्र को राज्य की अपेक्षा अधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। केन्द्र साधारणतया संघ तथा समवर्ती सूची के विषयों पर विधि निर्माण करता है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में आपातकालीन स्थिति में और विदेशों से की गई संधियों के पालन में संसद राज्य सूची के विषयों के सम्बन्ध में भी विधि निर्माण कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 250 में लिखा है, "संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा करके राजकीय सूची में दिए हुए किसी विषय पर भी सम्पूर्ण भारत अथवा उसमें किसी क्षेत्र के लिए नियम बना सके।"

"Parliament shall, while a proclamation of Emergency is in operation, have power to make laws for the whole or any part of the territory of India with respect to any of the matters enumerated in the State List."

—Article 250

जिन विषयों का उल्लेख किसी भी सूची में नहीं किया गया है उन पर केन्द्र-सरकार ही विधि निर्माण कर सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 251 के अनुसार यदि राज्य का विधानमण्डल कोई ऐसा कानून पारित करता है जो संसद द्वारा 249 और 250 धारा के अनुसार बनाए गए कानून के विपरीत है तो राज्य द्वारा बनाया गया कानून प्रभावहीन माना जाएगा। समवर्ती सूची में आये हुए विषयों पर केन्द्र और राज्यों (दोनों) को ही कानून बनाने का अधिकार है, परन्तु यदि राज्य द्वारा बनाया गया कानून केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून का विरोधी है तो राज्य द्वारा बनाया गया कानून प्रभावहीन होगा और संसद द्वारा पारित कानून लागू रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विधि-निर्माण के क्षेत्र में संसद को राज्य के विधानमण्डलों की अपेक्षा अधिक विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। संविधान के संशोधन के क्षेत्र में भी संसद अधिक शक्तिशाली है; परन्तु कुछ प्रावधानों में संशोधन के हेतु कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति आवश्यक है।

(2) प्रशासकीय सम्बन्ध (Administrative Relations)

केन्द्र तथा राज्य के प्रशासकीय सम्बन्धों के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(1) संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि राज्यों की कार्यपालिका भारत सरकार के नियमों, आदेशों, विधान और-कानूनों को कार्यान्वित कराने में हर सम्भव मदद देगी। वह इस प्रकार का कोई कार्य नहीं करेगी जिससे केन्द्रीय सरकार के किसी कार्य में अवरोध उत्पन्न हो और उनका कोई भी कार्य इस प्रकार का नहीं होगा जो संसद द्वारा निर्मित विधियों का विरोध करता हो। संविधान में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "प्रत्येक राज्य की कार्यकारिणी शक्ति इस प्रकार कार्यान्वित होगी कि जिससे कि केन्द्र की कार्यकारिणी शक्ति को न तो रुकावट हो और न वह उसके सिद्धांतों के विपरीत हो।"

"The executive power of every state shall be so exercised as not to impede or prejudice the exercise of the execvtive power of the Union."

(2) राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति केन्द्रीय-सरकार की सलाह से करता है। साथ ही महान्यायवादी और महालेखा परीक्षक आदि की भी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार के परामर्श से होती है। विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्रीय सरकार राज्यों की नीति का निर्देशन करती है। राष्ट्रीय एवं सैनिक महत्व के कार्यों को पूर्ण करने और निर्माण एवं सुरक्षा पर बल देने आदि का परामर्श केन्द्रीय सरकार राज्यों की सरकारों को देती है। रेल-मार्गों की सुरक्षा और यातायात के अन्य साधनों से सम्बन्ध में भी केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार को निर्देश देती है।

और बिहार आदि राज्यों को जूट के उत्पादन तथा निर्यात कर से प्राप्त धन को वितरित करती है।

(3) केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्यों को ऋण भी देती है और उनके द्वारा लिये जाने वाले अन्य ऋणों की जमानत भी लेती है।

(4) भारतीय संविधान में एक वित्तीय आयोग की नियुक्ति का प्रावधान है। यह आयोग केन्द्र एवं राज्यों के बीच के आर्थिक सम्बन्धों के विषय में सुझाव प्रस्तुत करता है। इस आयोग की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है।

उपसंहार—अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संविधान के अनुसार केन्द्र और राज्यों के बीच अत्यन्त दृढ़ सम्बन्ध स्थापित किए गए हैं। कोई भी राज्य भारत संघ से अलग नहीं हो सकता और राज्यों की सरकारें यद्यपि विभिन्न क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र हैं; परन्तु उन पर केन्द्र का नियन्त्रण पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हो जाता है। डा० जेनिंग का मत है कि भारतीय संविधान में 253, 256, 257 और 263 आदि ऐसे अनुच्छेद हैं जिनकी तीव्र भर्त्सना की जानी चाहिए; क्योंकि उनके द्वारा राज्यों की स्थिति नगण्य हो गई है। कुन्टे और सेलिटोर (Kunte and Seletore) ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि भारत में राज्यों की कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों ही केन्द्र के अधीन हैं। एक अन्य विद्वान का मत है कि केन्द्र की अपरिमित शक्ति ने राज्यों की स्थिति को अत्यन्त दयनीय बना दिया है। उसी के शब्दों में—

"The hydra-headed Centre has reduced the State to a very pitiable position."

राजनीति शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान प्रो० बी० एम० शर्मा का मत है कि केन्द्रीय सरकार के अधिकारों का समर्थन प्रशासकीय एकरूपता की आड़ में किया जाता है, परन्तु यदि एकरूपता अधिक उपयोगी नहीं है तो इसका न होना ही अच्छा है।

यदि हम किंचित गहनता से विचार करें तो भारत जैसे देश में जहां की बहुसंख्यक जनता अशिक्षित है, केन्द्र को अधिक अधिकार शक्ति देना अच्छा ही सिद्ध हुआ है। अनेक राज्यों की विधान सभाओं में कुछ ऐसे प्रतिनिधि पहुँच जाते हैं जो केन्द्रीय सरकार का सदैव विरोध करते रहते हैं। बहुधा उनका विरोध किसी कल्याणकारी भावना से प्रभावित नहीं होता। कल्पना कीजिए कि यदि केन्द्र की सरकार को अधिक शक्ति नहीं प्रदान की गई होती तो मद्रास राज्य में जहां कुछ दिन पूर्व हिन्दी के प्रश्न को लेकर एक बवंडर खड़ा कर दिया गया, क्या स्थिति होती? अभी कुछ दिन पूर्व बंगाल में नक्सलवाड़ी क्षेत्र में जो घटनाएँ घटीं वे इस बात की स्पष्ट परिचायक हैं कि केन्द्रीय सरकार का शक्तिशाली होना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में भारतीय संविधान में एकात्मक सिद्धांतों को जिस संघात्मक ढांचे में ढाला गया वह भारत की

वर्तमान परिस्थितियों में देश के लिए सर्वथा उपयुक्त और हितकर है। प्रो० जी० एन० जोशी ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये जो कुछ कहे हैं, वे पूर्ण सत्य हैं, "हमारे संघ में राजकीय शक्तियों के विभाजन की योजना एक विशेष प्रकार की राजनैतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप बनाई गई थी।"

"The scheme of the distribution of powers in our federation was determined by the peculiar conditions under which it came into existence."

—Prof. G. N. Joshi.

अध्याय 12

सरकारी नौकरियाँ और लोक-सेवा आयोग
(GOVT. SERVICES AND THE PUBLIC SERVICE COMMISSION)

सरकारी नौकरियाँ
(Government Services)

प्रश्न—भारत की सरकारी नौकरियों के विषय में आप क्या जानते हैं ? संक्षेप में लिखिये ।

(Write in brief, what do you know about the Government Services in India ?)

राज्य की शासन-पद्धति चाहे संसदात्मक हो और चाहे अध्यक्षात्मक, शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्थायी कार्यपालिका की आवश्यकता होती है । वास्तव में मंत्रिमण्डलात्मक पद्धति में मंत्रिमण्डल और अध्यक्षात्मक पद्धति में अध्यक्ष बदला करते हैं । परन्तु राज्य कर्मचारी अविकल रूप से अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं । सरकारी कर्मचारी राजनीति से परे होते हैं अतएव उनके कार्यों पर दलगत राजनीति का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता । बहुधा यह देखा जाता है कि मंत्रि-मण्डलात्मक पद्धति में सभी मंत्री सभी विभागों के ज्ञाता नहीं होते और इसलिए उनको मत देने के लिए सरकारी कर्मचारियों की विशेष आवश्यकता होती है । भारत की संसदात्मक-व्यवस्था को चलाने में सरकारी कर्मचारियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है ।

सरकारी नौकरियों का वर्गीकरण (Classification of the Govt. Services)

भारत की सरकारी नौकरियों को स्थूल-रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(1) सैनिक नौकरियाँ और (2) असैनिक नौकरियाँ ।

(1) सैनिक नौकरियाँ—भारत की संघीय सरकार का एक रक्षा-विभाग होता है जिसका मुख्य अधिकारी रक्षा-मंत्री होता है । रक्षा-मंत्री का कार्य सेना

सम्बन्धी नीति का निर्धारण करना होता है और उनके इस कार्य में सहायता करने के लिए मन्त्रिमण्डल की एक उपसमिति होती है जिसे रक्षा-समिति के नाम से पुकारते हैं। भारतीय सेना के तीन विभाग होते हैं—जल, स्थल और वायु। जल, स्थल और वायु तीनों ही सेनाओं के अलग-अलग सेनापति होते हैं जो अपने क्षेत्र की सेनाओं के सबसे बड़े अधिकारी होते हैं। मन्त्रिमण्डल की रक्षा समिति में सेना के तीनों विभागों के प्रधान सेनापति, रक्षा विभाग के सचिव, प्रधानमन्त्री, रक्षामन्त्री, उपमन्त्री और दूसरे मन्त्री होते हैं। यह रक्षा-समिति ही सेना की सम्पूर्ण नीति का निर्धारण करती है और स्थल, जल और वायु सेना के प्रधान सेनापति इस समिति की नीति के अनुसार ही कार्य करते हैं। स्थल सेना के अधीन एक आर्मी-हैडक्वार्टर होता है जिसके अधीन भारतीय सेना को विभिन्न कमानों में बाँट दिया जाता है। इन विभिन्न कमानों के अलग-अलग अध्यक्ष होते हैं जो कि प्रधान सेनापति के निर्देशन में अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। इनके अधीन अन्य सैनिक कर्मचारी भी होते हैं। जल-सेना और वायु सेना में भी स्थल सेना की भाँति ही विभिन्न सैनिकों का संगठन किया गया है। भारत की सैनिक सेवा में जो व्यक्ति कार्य करते हैं उनकी स्थिति, पद की दृष्टि से अनेक प्रकार की है; जैसे जवान, लान्सनायक, नायक, हवलदार, हवलदार-मेजर, जमादार, सूबेदार, सूबेदार-मेजर, सैकिण्ड-लेफ्टीनेन्ट, लेफ्टीनेन्ट-कैप्टेन, मेजर, लेफ्टीनेन्ट-कर्नल, ब्रिगेडियर, मेजर-जनरल, लेफ्टीनेन्ट-जनरल और जनरल।

सभी सैनिक कर्मचारियों के वेतन भत्ते, छुट्टी और पेन्शन आदि के नियम सरकार द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। सैनिकों को उनके वीर-कृत्यों के लिए समय-समय पर भारत सरकार सम्मानित भी करती है। राष्ट्रपति उन्हें वीरचक्र, महावीरचक्र, परमवीरचक्र आदि सम्मानसूचक पदक प्रदान करता है।

(2) असैनिक नौकरियाँ—असैनिक नौकरियों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—(क) अखिल भारतीय (ख) केन्द्रीय या संघीय और (ग) राज्यों की नौकरियाँ।

(क) अखिल भारतीय नौकरियाँ—अखिल भारतीय नौकरियों में सबसे प्रमुख स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (Indian Administrative Services) का है। संघीय लोक सेवा आयोग की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले और ऊँचा स्थान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को इस प्रकार की सेवाओं में रखा जाता है। इसके साथ ही संघीय लोक-सेवा आयोग भारतीय वैदेशिक सेवाएँ (Indian Foreign Services) और भारतीय पुलिस सेवाएँ (Indian Police Services) की परीक्षाओं का भी आयोजन किया जाता है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के उत्तीर्ण व्यक्ति कलक्टर, कमिश्नर, संघ एवं राज्यों की सरकारों के सचिव और डायरेक्टर आदि पदों पर आसीन होते हैं।

अखिल भारतीय वैदेशिक सेवाओं में उत्तीर्ण हुए व्यक्तियों को भारतीय दूतावासों में नियुक्त किया जाता है और अखिल भारतीय पुलिस सेवाओं में उत्तीर्ण व्यक्तियों को राज्यों में पुलिस अधीक्षक, डी० आई० जी० (पुलिस) आदि पदों पर नियुक्त किया जाता है।

(ख) केन्द्रीय या संघीय नौकरियाँ—डाक-तार, टेलीफोन, रेलवे, रेडियो, इनकम टैक्स, सर्वे, आयात-निर्यात कर, केन्द्रीय इक्साइज आदि विषय संघीय सरकार के अधीन हैं। इन विभागों के उच्च राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती है केवल रेलवे की नियुक्तियों के लिए अलग रेलवे कमीशन है। इन विभागों में जितने भी कर्मचारी काम करते हैं वे केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी कहलाते हैं और इनके वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तों को संघीय सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है।

(ग) राज्यों की नौकरियाँ—पुलिस, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण आदि विभाग राज्य सरकार की अधीनता में होते हैं और इन विभागों में कार्य करने वाले उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति प्रान्तीय लोकसेवा आयोग द्वारा की जाती है। इन विभागों में कार्य करने वाले कर्मचारियों का वेतन, भत्ते और नौकरी की शर्तें आदि राज्य सरकार ही तय करती है।

अन्य नौकरियाँ—उपर्युक्त उच्च स्थिति की सरकारी नौकरियों के अतिरिक्त अनेक अन्य अधीनस्थ सरकारी नौकरियाँ भी होती हैं। संघीय सरकार के अधीनस्थ इन कर्मचारियों की चार श्रेणियाँ हैं। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कर्मचारियों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाता है। इनको गजटेड अफसर की स्थिति प्रदान की जाती है। आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट, सहायक-सचिव, आदि इस श्रेणी के कर्मचारी हैं। तीसरी श्रेणी में सरकारी कार्यालयों में कार्य करने वाले क्लर्क, आशुलिपिक, टंकक आदि आते हैं। चौथी श्रेणी में चपरासी, मेहतर, फर्रास आदि रखे जाते हैं।

केन्द्रीय सरकार की भाँति ही राज्य-सरकार के भी अनेक अधीनस्थ कर्मचारी होते हैं। उनको भी कई श्रेणियों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक श्रेणी के कर्मचारी अपने से ऊपर की श्रेणी के कर्मचारियों के नियन्त्रण में कार्य करते हैं।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में सरकारी नौकरियों का एक तारतम्य देखने को मिलता है। भारत की यह स्थायी कार्यपालिका केन्द्र और प्रान्तों की सरकारों के शासन-यन्त्र को चलाती रहती है। सत्य तो यह है कि यह स्थायी कार्यपालिका ही केन्द्र और प्रान्तों की मन्त्रि-परिषद् को अपने कार्य को करने में इतनी

अधिक सहायता देती है कि स्थायी कार्यपालिका के सदस्य उचित रूप में कार्य न करें तो मन्त्रि-परिषद् चाहे जो कुछ निर्णय ले ले वह व्यर्थ ही होगा।

लोक-सेवा आयोग

(Public Service Commission)

प्रश्न—संघीय लोक-सेवा आयोग और प्रान्तीय लोक सेवा आयोगों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(Write short notes on Union Public Sevice Commission and The State Public Service Commissions)

भूमिका (Introduction)

प्रत्येक सरकार की सफलता उसके कर्मचारियों पर निर्भर करती है। यदि प्रशासकीय अधिकारी अयोग्य, निकम्मे और बेईमान होंगे तो शासन में अस्थिरता आ जायगी तथा जनता को अनेक प्रकार के कष्ट होंगे। दूसरी ओर यदि प्रशासकीय कर्मचारी योग्य, कर्मठ, प्रभावशाली और ईमानदार हैं तो सम्पूर्ण समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति होगी। प्रशासन के लिए इन्हीं योग्य और कर्मठ कर्मचारियों की प्राप्ति के हेतु भारतीय संविधान के 315वें अनुच्छेद में एक संघीय लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) का प्रावधान किया गया है, साथ ही प्रत्येक राज्य में अलग-अलग लोक सेवा आयोग हैं।

संघीय लोक-सेवा-आयोग (Union Public Service Commission)

संघीय लोक-सेवा आयोग का संगठन—संविधान के 316वें अनुच्छेद में संघीय लोक-सेवा-आयोग के संगठन आदि के विषय में प्रकाश डाला गया है। उसमें लिखा है कि आयोग में एक अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य होंगे। सदस्यों की नियुक्ति का भार राष्ट्रपति पर रखा गया है।

सदस्यों की योग्यता—राष्ट्रपति किसी भी निष्पक्ष, अनुभवी और ईमानदार व्यक्ति को लोक-सेवा-आयोग का सदस्य नियुक्त करता है। इन बातों का निर्णय वह स्वयं करता है, साथ ही कुछ एक प्रतिबन्ध भी हैं जिनके द्वारा कुछ लोगों को सदस्यता से वंचित रखा गया है। 65 वर्ष की आयु या अधिक का व्यक्ति आयोग का सदस्य नहीं हो सकता। कोई भी पागल, दिवालिया या अपराधी आयोग का सदस्य नहीं बनाया जा सकता। आयोग के सदस्य को कम से कम 10 वर्ष तक किसी सरकारी पद पर कार्य कर चुका होना चाहिए।

कार्य-काल—साधारणतः प्रत्येक सदस्य को 6 वर्ष तक सेवाएँ ली जाती हैं। इस बीच में यदि उसकी आयु 65 वर्ष की हो जाती है तो उसे मुक्त कर दिया जाता है। साथ ही राष्ट्रपति को सम्बोधित करके, कोई भी सदस्य अपना त्यागपत्र

अपने पद से मुक्ति पा सकता है। यदि राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय यह सलाह दे कि किसी सदस्य विशेष को पदच्युत कर दिया जाय तो राष्ट्रपति उसे हटा देता है। उच्चतम न्यायालय यह परामर्श तभी देता है जब उसे किसी विशेष मामले की जाँच सौंपी जाती है। दिवालिया हो जाने पर या कोई अन्य वैतनिक पद स्वीकार कर लेने पर भी कोई सदस्य सदस्यता से वंचित कर दिया जाता है। यदि राष्ट्रपति यह समझता है कि कोई सदस्य शारीरिक क्षमता से अयोग्य हो गया है तो वह उसे भी पद से मुक्त कर सकता है।

राष्ट्रपति ही संघीय लोक-सेवा आयोग एवं उसके कार्य-विधान के विषय में नियम निर्धारित करता है। संघीय लोक-सेवा आयोग के समस्त सदस्य बड़ी निर्भीकता और निष्पक्षता से अपने कार्यों को पूर्ण करते हैं; क्योंकि उनको प्राप्त होने वाली सुविधाओं को कम करने का अधिकार राष्ट्रपति को भी नहीं है। आयोग के सदस्य अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् कोई वैतनिक कार्य नहीं कर सकते। सदस्यों को देश की संचित निधि से वेतन एवं भत्ते दिये जाते हैं।

संघीय लोक-सेवा-आयोग के कार्य—संघीय लोक-सेवा आयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। देश के लिए योग्य प्रशासकों का चयन एवं प्रशिक्षण संघीय लोक-सेवा आयोग का ही कार्य है। आयोग के कार्यों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

(1) अधिकारियों की नियुक्ति हेतु परीक्षा लेना—विभिन्न प्रशासकीय कर्मचारी की नियुक्ति के हेतु परीक्षा लेने का कार्य संघीय लोक-सेवा आयोग करता है। वे व्यक्ति जो आयोग की दृष्टि में योग्य एवं कार्य-कुशल होते हैं, सरकार द्वारा विभिन्न पदों पर नियुक्त किए जाते हैं।

(2) केन्द्रीय सरकार को परामर्श देना—केन्द्रीय सरकार को उसके कर्मचारियों के प्रशिक्षण, पदोन्नति, अनुशासन एवं अवनति के हेतु संघीय लोक-सेवा आयोग परामर्श देता है। वही उन छात्रों का चयन करता है, जिनको भारत सरकार द्वारा छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिये।

(3) अपील सुनना—लोक सेवकों के हितों से सम्बन्धित अपीलें सुनने का अधिकार भी लोक-सेवा आयोग को है। वह विभिन्न सरकारी कर्मचारियों की परेशानियों और दिक्कतों को दूर करने का प्रयास करता है।

(4) सरकारी कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति करना—भारत सरकार के कर्मचारियों को यदि कोई क्षति हो जाती है तो लोक-सेवा आयोग सरकार को उस की पूर्ति करने का परामर्श देता है।

अधिकतर, सरकार लोक-सेवा आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लेती

है। यदि सरकार द्वारा आयोग की सिफारिशें अस्वीकृत की जाती हैं तो राष्ट्रपति उन सिफारिशों एवं उनकी अस्वीकृति का एक विवरण तैयार करके संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है और इस सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार भारतीय संसद को होता है। संसद यदि चाहे तो वह आयोग के क्षेत्र को और अधिक विस्तृत भी कर सकती है।

संघीय लोक-सेवा-आयोग का मूल्यांकन—वास्तव में भारत में संघीय लोक-सेवा आयोग की स्थापना प्रशासकीय क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस आयोग के बिना योग्य एवं कर्मठ सदस्यों की प्राप्ति असम्भव थी और भारतीय संविधान ने इस आयोग की स्थापना का प्राविधान करके वह मार्ग दिखाना चाहा जिससे भारत की जनता का अधिक से अधिक कल्याण हो सके। परन्तु स्वतन्त्र भारत में नौकरशाही का इतना अधिक बोलबाला हुआ और भाई-भतीजावाद ने इतना जोर पकड़ा कि लोक-सेवा आयोग उतना अच्छा कार्य नहीं कर सका जितनी कि उससे आशा थी। देश का भविष्य योग्य प्रशासकीय कर्मचारियों पर निर्भर है और इस हेतु आयोग में सुधारों की अतीव आवश्यकता है।

प्रान्तीय लोक-सेवा-आयोग (State Public Service Commissions)

भारतीय संविधान में संघीय लोक-सेवा आयोग के साथ ही प्रान्तीय लोक-सेवा आयोगों के लिए भी प्राविधान है। संविधान के अनुच्छेद 315 में स्पष्ट लिखा है कि संघ एवं राज्य सरकार के अलग-अलग लोक-सेवा आयोग होंगे; परन्तु कुछ राज्य मिलकर एक संयुक्त लोक-सेवा आयोग की स्थापना कर सकते हैं।

प्रान्तीय लोक-सेवा आयोग का मुख्य कार्य प्रान्तीय अधिकारियों की नियुक्ति आदि के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार को सलाह देना है।

प्रान्तीय लोक-सेवा-आयोग का संगठन—प्रान्तीय लोक-सेवा आयोग में एक अध्यक्ष एवं कुछ अन्य सदस्य होते हैं। सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है।

सदस्यों की योग्यता—राज्यपाल किसी भी 60 वर्ष से कम आयु के योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति को आयोग का सदस्य बना सकता है, परन्तु साथ ही यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति पागल, दिवालिया या अपराधी न हो। आयोग के कुछ सदस्यों में से कम से कम आधे ऐसे सदस्य होने चाहिये जो कम से कम दस वर्ष तक सरकारी पदों पर कार्य कर चुके हों।

कार्य-काल—साधारणतः सदस्यों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए की जाती है परन्तु इस बीच में यदि कोई सदस्य 60 वर्ष की आयु पूरी कर लेता है तो वह अवकाश ग्रहण कर लेता है। कोई भी सदस्य अपना त्याग-पत्र राज्यपाल को दे सकता है। यदि कोई सदस्य कोई वैतनिक कार्य करने लग जाय अथवा शारीरिक दृष्टि से अयोग्य हो जाय तो उसे पद से मुक्त कर दिया जाता है। राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय

की सिफारिश पर किसी सदस्य को पदच्युत कर सकता है। कोई भी सदस्य प्रान्तीय लोक-सेवा आयोग से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् संघीय लोक-सेवा आयोग की सदस्यता अथवा अध्यक्षता के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की नौकरी नहीं कर सकता।

आयोग के कार्य—प्रान्तीय लोक-सेवा आयोग प्रान्त के अन्तर्गत लगभग वे समस्त कार्य सम्पन्न करता है जो संघीय लोक-सेवा आयोग सम्पन्न करता है। उसके कार्यों की संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

(1) कर्मचारियों की नियुक्ति—राज्य के विभिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु आयोग परीक्षाएँ लेता है और उनके आधार पर सरकार को विभिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति का परामर्श देता है। राज्य के उच्च असैनिक पदों पर नियुक्ति आयोग की सिफारिशों के आधार पर की जाती है।

(2) सरकार को मन्त्रणा देना—आयोग प्रान्तीय सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की मन्त्रणाएँ प्रान्तीय सरकार को देता है। सरकारी कर्मचारियों को सरकार के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार भी है और उन पर निर्णय लेकर आयोग अपनी सिफारिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करता है। आयोग ही विभिन्न कर्मचारियों की शारीरिक अथवा मानसिक क्षति होने पर सरकार द्वारा दी जाने वाली सहायता की मन्त्रणा सरकार को देता है। आयोग के समस्त कार्यों का विवरण प्रतिवर्ष राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है और राज्यपाल उसे विधान-मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रान्तीय लोक-सेवा आयोग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करते हैं। आयोग के सदस्यों की नौकरी की शर्तें इस प्रकार की हैं कि वे निर्भीक और स्वतन्त्र होकर कार्य कर सकते हैं। उन पर कार्यपालिका का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता। प्रसिद्ध विद्वान श्री एम॰ वी॰ पाइली (M. V. Pyle) ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "भारत में लोक-सेवा आयोग किन्हीं भी अर्थों में व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के अधीन नहीं है।"

"In India, the Public Service Commissions are in no way subordinate to the Legislature or the Executive."

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी भी प्रान्त के प्रशासन की सफलता उसके लोक-सेवा आयोग के सदस्यों की कर्मठता, योग्यता, निर्भीकता और कार्य-क्षमता पर निर्भर करती है।

———

अध्याय | 13

राजनीतिक दल और निर्वाचन
(POLITICAL PARTIES AND ELECTIONS)

भारतीय दलीयपद्धति की प्रमुख विशेषताएँ
(Chief Features of the Indian Party System)

प्रश्न—भारतीय राजनीतिक दल-व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

(Give a brief account of the chief features of the Indian Party System)

लोकतन्त्र की सफलता के लिए राजनीतिक दलों का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैकाइवर ने लिखा है, "बिना राजनीतिक दलों के न तो सतत नीति निर्धारित की जा सकती है, न वैधानिक आधार पर विधान मण्डलों के लिए निर्वाचनों की उचित व्यवस्था की जा सकती है, और न बिना राजनीतिक दलों के एवं मान्य राजनीतिक संस्थाओं और निकायों की स्थापना की जा सकती है जिनके द्वारा दल सत्ता और अधिकार प्राप्त करते हैं।" वास्तव में वे लोग जो कि दलों के बढ़ते हुए प्रभाव और उनकी स्थिति से चिढ़ते हैं, लोकतन्त्र के विरोधी हैं। बिना दलों के किसी बड़े देश का शासन चलाना अत्यन्त दुष्कर है। एक विद्वान के शब्दों में, 'राजनीतिक दल ही सर्व-साधारण की अव्यक्त और अस्पष्ट इच्छाओं का मूर्त-रूप प्रदान करते हैं।' लावेल का मत है, "राजनीतिक दल विचारों के आदान प्रदान करने वाले दलाल हैं।" ब्राइस का तो यह विचार भी है कि दलों से रहित शासन की कल्पना करना व्यर्थ है। उसने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "किसी बड़े देश में सर्व-साधारण के शासन की कल्पना कोरी मनगढ़न्त कल्पना मात्र है, क्योंकि जहाँ कहीं व्यापक और विस्तृत मताधिकार है, वहाँ दलों की उपस्थिति अनिवार्य है और निःसन्देह शासन का नियन्त्रण उस दल के हाथों में रहेगा जिस दल का बहुमत होगा। अर्थात् जिसके पक्ष में सर्व-साधारण का बहुमत होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी देश में दलों का होना अवश्यम्भावी है

भारत की दलीय-पद्धति की अपनी अलग विशेषताएँ हैं। यहाँ इन विशेषताओं की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) **बहुदलीय पद्धति**—भारत में दलों का बाहुल्य देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक दलों की बाढ़ सी आ गयी और आज स्थिति यह है कि भारत की लोकसभा में अनेक राजनीतिक दलों के सदस्य हैं। इनके साथ ही अनेक निर्दलीय सदस्य भी हैं। राज्यों की विधान-सभाओं में भी अनेक दलों के प्रतिनिधि विद्यमान हैं। यहाँ की स्थिति यह है कि कोई भी व्यक्ति मिलकर एक राजनीतिक दल बना लेते हैं। राजनीतिक दलों की बहुलता भारतीय लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त घातक हैं।

(2) **स्वतन्त्र सदस्यों का बाहुल्य**—लोकसभा और राज्यों के विधानसभाओं में ऐसे अनेक सदस्य पहुँच जाते हैं जिनका किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं होता। ये स्वतन्त्र रूप से चुनाव लड़कर विजयी होते हैं। स्वतन्त्र सदस्यों की बाहुल्यता भी लोकतन्त्र के लिए उचित नहीं है; क्योंकि यह स्वतन्त्र सदस्य सदैव ढुलमुल नीति का अनुसरण करते हैं।

(3) **एक दल की प्रधानता**—यद्यपि यह ठीक है कि भारत में अनेक राजनीतिक दल हैं; परन्तु यहाँ आरम्भ से ही एक दल, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रधानता रही है। चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा है और अनेक राज्यों में विरोधी दलों के मन्त्रिमण्डल बने हैं, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर आज तक केन्द्र-सरकार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ही प्रभाव रहा है।

(4) **संगठित विरोधी दल का अभाव**—भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करने के लिए किसी भी संगठित विरोधी दल का अभाव ही दृष्टिगत होता है। यद्यपि शनैः-शनैः विभिन्न विरोधी दलों की स्थिति ऊँची उठती जा रही है, परन्तु आज भी कोई ऐसा संगठित विरोधी दल नहीं है जो अकेले ही कांग्रेस को टक्कर दे सके।

(5) **साम्प्रदायिक दल**—भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है परन्तु यहाँ अनेक साम्प्रदायिक दलों का विकास हुआ है। हिन्दू महासभा यदि हिन्दुओं के उत्थान का नारा बुलन्द करती है तो मुस्लिम लीग मुसलमानों के उत्थान का। इनके अतिरिक्त अन्य साम्प्रदायिक दल भी स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं। यह साम्प्रदायिक दल देश के लिए अत्यन्त घातक हैं और इन पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

(6) **दल-बदल की प्रवृत्ति**—भारत में चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् दल-बदल की प्रवृत्ति ने बहुत अधिक जोर पकड़ा है। इसके पहले भी लोग एक दल से दूसरे दल में जाते थे; परन्तु चतुर्थ आम चुनाव के बाद तो दल-बदल की प्रवृत्ति की

बाढ़ सी आ गयी है। अनेक राज्यों की विधान सभाओं के अनेक सदस्यों ने दल-बदल कर सरकार को गिरा दिया। परिणाम यह हुआ कि अनेक राज्यों में राष्ट्रपति का शासन लागू करना पड़ा। यह 'आया राम और गया राम' भारतीय राजनीति के कोढ़ हैं और दल बदलने की यह प्रवृत्ति हमारे लोकतन्त्र की जड़ों की साधना पर दबी। इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए भी हरसम्भव प्रयास किया जाना चाहिए।

(7) दलों के विभिन्न रूप—भारतीय दलीय पद्धति की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ अनेक राजनीतिक दल तो हैं ही साथ ही उनके रूप में भी विभिन्नता है। कुछ दल अपने को दक्षिणपन्थी कहते हैं, कुछ वामपन्थी कहते हैं, और कुछ इनके बीच का मार्ग अपनाते हैं। अनेक दल दलों का विभाजन दक्षिणपन्थी और वामपन्थी के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। कौन दल दक्षिणपन्थी विचारधारा से प्रभावित है और कौन वामपन्थी विचारधारा से, इसका स्पष्ट चित्र सामने नहीं आता, क्योंकि अपने को वामपन्थी कहने वाले दल दक्षिणपन्थियों से गठबन्धन कर लेते हैं और बीच के मार्ग का अनुसरण करने वालों को उखाड़ देते हैं। कभी बीच का अनुसरण करने वाले दल वामपन्थियों से और कभी दक्षिणपन्थियों से समझौता करके राजनीतिक उथल-पुथल उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार भारतीय राजनीतिक दलों का रूप अब तक पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हो पाया है।

(8) विभिन्नता में एकता—यह ठीक है कि भारत में राजनीतिक दलों का बाहुल्य है और हर क्षेत्र में विभिन्नता के दर्शन होते हैं, परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि अनेक साम्प्रदायिक दलों के होने के बाद भी जब कभी किसी विदेशी आक्रमणकारी ने भारत की ओर नजर उठाई है सभी राजनीतिक दलों ने एक स्वर से उसका विरोध किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुछ राजनीतिक दलों को छोड़कर लगभग सभी राजनीतिक दल राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत हैं यह और बात है कि कुछ व्यक्ति अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दल के कमठ सदस्यों को भी उनके पथ से विचलित कर दिये हैं

इस प्रकार भारतीय दलीय पद्धति अपने ढंग की अनोखी है। यहाँ अमेरिका और इंगलैण्ड की भाँति दो ही प्रभावशाली दल नहीं हैं बल्कि छोटे बड़े अनेक दलों की बाढ़ है। इतना होने पर भी भारतीय लोकतन्त्र का पौधा सुचारु रूप से पल्लवित हो रहा है। हवा के ऐसे अनेक झोंके आते हैं जिनसे यह विचलित हो जाता है, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह अवश्य ही सुन्दर फलों को धारण करेगा।

विभिन्न राजनीतिक दल
(Various Political Parties)

प्रश्न—भारतीय राजनीतिक दलों के विकास की चर्चा करते हुए विभिन्न राजनीतिक दलों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(Describe the development of Political Parties in India, giving a brief account of the various Political Parties.)

भारतीय राजनीतिक दलों का विकास (Development of the Political Parties)

भारतवर्ष एक प्रजातंत्रात्मक देश है। यहाँ जनता के द्वारा, जनता के हित में जनता पर शासन होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी वात कहने की पूर्ण स्वतंत्रता है। यही कारण है कि इस देश में राजनीतिक दलों का वाहुल्य है। किसी भी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में राजनीतिक दलों का विशेप महत्व होता है। ये राजनीतिक दल ही साधारण नागरिकों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करते हैं और लोकमत का संगठन करके शासन पर अंकुश रखते हैं। भारतवर्ष में राजनीतिक दलों का विकास अन्य प्रजातंत्रात्मक देशों की भाँति ही हुआ है। भारत में राजनीतिक दलों के विकास का इतिहास ही वास्तव में भारत की राष्ट्रीय उन्नति का इतिहास है। भारत में विदेशी-शासन को कभी भी नतमस्तक होकर स्वीकार नहीं किया गया और यहाँ की जनता ने सदैव इस शासन के विरुद्ध आवाज उठाई। सन् 1857 ई० के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् देशवासियों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई और बुद्धिजीवी वर्ग ने शनै:-शनै: नेतृत्व को ग्रहण किया। पाश्चात्य शिक्षा के फलस्वरूप आन्दोलन ने और प्रवल रूप धारण किया। सन् 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। आरम्भ में कांग्रेस की स्थापना किसी राजनीतिक उद्देश्य से नहीं की गयी थी; परन्तु शनै:-शनै: उसने राजनीतिक दल का रूप धारण किया। विदेशी शासन की आलोचना कांग्रेस के मंच से ही होने लगी। फलस्वरूप सरकार का रुख कांग्रेस के प्रति विगड़ गया। आगे चलकर कांग्रेस में दो दल हो गये—नर्मदल और उग्रदल। सन् 1907 ई० के सूरत अधिवेशन में इन दलों में फूट पड़ गयी; और दोनों दल अलग-अलग हो गये। सन् 1916 ई० में दोनों दलों में एकता स्थापित की गयी परन्तु सन् 1920 ई० में यह दोनों दल पुन: सदेव के लिए अलग हो गये। दक्षिणपंथियों ने अपने दल का नाम लिवरल पार्टी रखा। सन् 1906 ई० में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और सन् 1906 ई० के वाद 30 वर्षों तक कांग्रेस नर्म दल या लिवरल पार्टी; मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा, भारतीय राजनीतिक मत के विभिन्न पक्षों के मुख्य प्रतिनिधि समझे जाते थे। शनै:-शनै: अन्य छोटे-वड़े दल वने। इन दलों में मद्रास की

अस्टिय पार्टी, बंगाल की कृषक लोक प्रजा पार्टी, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी तथा बम्बई और मध्य प्रदेश की डिमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी आदि प्रमुख हैं। यह छोटे-छोटे दल अत्यन्त अल्पजीवी सिद्ध हुए।

सन् 1935 ई० के बाद वामपंथी दलों का विकास प्रारम्भ हुआ। साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1921 ई० में ही हो चुकी थी। परन्तु सन् 1943 ई० तक यह गैरकानूनी घोषित रहा। सन् 1943 ई० में उस पर से प्रतिबंध उठा लिया गया। समाजवादी दल की स्थापना सन् 1934 ई० में हुई और स्वतन्त्रता की प्राप्ति तक यह दल काँग्रेस के अंदर ही काम करता रहा। सन् 1948 ई० में यह एक स्वतंत्र दल बन गया। सन् 1937 ई० के बाद कुछ अन्य वामपंथी दल भी हुए इनमें रिपब्लिकन सोशलिस्ट दल, फारवर्ड ब्लाक, पीजेन्ट एण्ड वर्कर्स पार्टी आदि उल्लेखनीय हैं। इन दलों के साथ ही कुछ आतंकवादी दलों का समय-समय पर गठन हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनेक राजनीतिक दलों की बाढ़ सी आ गयी और चतुर्थ निर्वाचन तक इन राजनीतिक दलों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। भारत के लिए इतने अधिक राजनीतिक दल होना हानिप्रद है और शीघ्रातिशीघ्र विभिन्न दलों का सम्मिलन हो जाना चाहिये।

प्रमुख राजनीतिक दल (Prominent Political Parties)

(1) अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस—अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस भारत का सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दल है। भारत की स्वतन्त्रता की कहानी अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की कहानी है। इस दल की स्थापना सन् 1885 ई० में हुई। आरम्भ में इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को भारतीय समस्याओं से परिचित कराकर भारतीयों के लिए सुविधाएँ प्रदान करना था। परन्तु ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति के फलस्वरूप उसके उद्देश्य में परिवर्तन हुआ और सन् 1930 ई० के लाहौर सेशन में काँग्रेस ने अपना उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति घोषित किया। तत्पश्चात् काँग्रेस स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु निरंतर लड़ती रही और अंग्रेजों के दमन-चक्र में इस दल के अनेक सदस्य पीस दिए गये। सन् 1947 ई० में इस दल को अपने उद्देश्य में सफलता मिली और दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा फहराने लगे। भारतीय संविधान के लागू होने पर जितने भी आम चुनाव हुए उनमें केन्द्र में काँग्रेस की ही सरकार बनी। चतुर्थ आमचुनाव में काँग्रेस को बड़ा धक्का लगा और अनेक राज्यों में उसकी स्थिति कमजोर हो गई, परन्तु केन्द्र में अब भी इसका शासन रहा।

काँग्रेस का उद्देश्य भारतवासियों को सुखी और समृद्ध बना कर उन्हें प्रगति की ओर अग्रसर करना और देश में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समानता

लाना है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अखिल भारतीय कांग्रेस विश्व-बन्धुत्व की भावना से प्रभावित है।

(2) प्रजा समाजवादी दल—प्रजा समाजवादी दल का जन्म अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही से हुआ है। सन् 1948 ई० में यह दल कांग्रेस से अलग हुआ। सर्वप्रथम, आचार्य कृपलानी ने मजदूर किसान प्रजा पार्टी नामक दल का संगठन किया। बाद में कुछ अन्य दल इसमें मिल गये और तब इसका नाम प्रजा समाजवादी दल पड़ा। आरम्भ में प्रजा समाजवादी दल कांग्रेस के बाद सबसे बड़ा दल था और इसे कई राज्यों की विधान सभाओं में काफी सीटें मिली थीं। कालान्तर में इस दल का विघटन प्रारम्भ हुआ और शनैः-शनैः इसकी स्थिति कमजोर होती गई। चतुर्थ आमचुनाव में इस दल को अन्य विरोधी दलों की अपेक्षा कम सफलता प्राप्त हुई। उद्देश्यों के विचार से यह दल कांग्रेस से बहुत निकट है और बहुत से राजनीतिज्ञों की यह आशा है कि कुछ समय बाद यह दल कांग्रेस में मिल जायगा, परन्तु अभी ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। इस दल का मूल उद्देश्य वर्ण तथा वर्ग-रहित समाज की स्थापना है। यह दल शासन के विकेन्द्रीयकरण एवं बड़े कल-कारखानों, बैंकों एवं उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का पक्षपाती है। यह ग्राम सभाओं, पंचायतों को अत्यधिक महत्व देता है। विदेशों के प्रति यह तटस्थता की नीति को मान्यता प्रदान करता है।

(3) संयुक्त समाजवादी दल—इस दल की स्थापना सन् 1964 ई० में समाजवादी दल एवं प्रजा समाजवादी दल के एक भाग के सम्मिलन के फलस्वरूप हुई। इस दल के संचालक स्वर्गीय डॉ० राममनोहर लोहिया थे। यह दल कांग्रेस का घोर विरोधी है और कांग्रेस को पदच्युत करने के लिए प्रत्येक दल से समझौता करने को तैयार है। चतुर्थ आमचुनाव में डॉ० राममनोहर लोहिया के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस दल को कुछ राज्यों में आशातीत सफलता मिली। कुछ राजनीतिज्ञों का विचार है कि डॉ० लोहिया की मृत्यु के बाद इस दल में विघटन प्रारम्भ हो गया है। परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रजा समाजवादी दल की भाँति इस दल का मूल उद्देश्य वर्ण तथा वर्ग रहित समाज की स्थापना है। यह दल भी बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का पक्षपाती है। किसानों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए यह दल सदैव से ही प्रयत्न करता रहा है। इसके उद्देश्यों और प्रजा समाजवादी दल के उद्देश्यों में विशेष अन्तर नहीं है। दोनों दलों में अन्तर इस बात में है कि संयुक्त समाजवादी दल पिकेटिंग और बन्द आदि में अधिक विश्वास करता है। यह दल अंग्रेजी का घोर विरोधी है और चाहता है कि अंग्रेजी भाषा भारतवर्ष से सदैव के लिए विदा हो जाय।

(4) साम्यवादी दल—भारत में साम्यवादी दल की स्थापना सन् 1924 ई० में हुई। आरम्भ में यह दल कांग्रेस के साथ रहा और गुप्त रूप से ब्रिटिश सरकार का विरोध करता रहा। सन् 1943 ई० में जब रूस ब्रिटेन के साथ मित्र राष्ट्रों से मिल गया तब भारत में यह दल वैध दल के रूप में कार्य करने लगा। द्वितीय महायुद्ध में साम्यवादियों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1951 ई० में इस दल में परिवर्तन हुआ और इसने अपनी स्थिति को दृढ़ करना आरम्भ कर दिया।

इस दल को केरल और पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में आशातीत सफलता मिली। ऐसा विश्वास था कि चीन के आक्रमण के फलस्वरूप यह दल अत्यन्त कमजोर हो जायेगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ और इस दल की स्थिति आज भी बहुत अच्छी है। साम्यवादियों को सबसे बड़ा धक्का उनकी आपसी फूट से लगा है और अब इस दल के दो दल बन गये हैं—दक्षिणपंथी साम्यवादी और वामपंथी साम्यवादी। चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् केरल में इस दल को अन्य दलों से अधिक सीटें मिलीं और वहाँ भी मिली-जुली सरकार में इस दल का नेता मुख्य मन्त्री बना। पश्चिमी बंगाल में भी जब संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी तो इस दल को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। पश्चिमी बंगाल की नक्सलवाड़ी की घटनाओं के फलस्वरूप इस दल का वामपंथी अंग काफी बदनाम हो गया। देखना है कि यह दल आगामी कुछ वर्षों में आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना की भावना द्वारा कहाँ तक भारतीय जनता को प्रभावित कर सकता है।

इस दल का उद्देश्य है उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानताओं को दूर करना, उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियन्त्रण रखना, सम्पत्ति का समान वितरण करना, भूमि का कृषकों में समुचित वितरण करना, बेरोजगारी का अन्त करना, भारत में लगी विदेशी पूँजी का अन्त करना, पुलिस का अन्त करके राष्ट्रीय सेना का संगठन करना और सभी स्त्री-पुरुषों के लिए रोटी, रोजी और कपड़े की व्यवस्था करना।

(5) भारतीय जनसंघ—इस दल का जन्म 1951 ई० में हुआ। इसके संस्थापकों में स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का नाम उल्लेखनीय है। तृतीय आम चुनाव में इस दल को कुछ सफलता मिली। चतुर्थ आमचुनाव में यह दल बहुत आगे बढ़ गया और भारतीय संसद में विरोधी दलों के मध्य इसका दूसरा स्थान रहा। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और मध्य प्रदेश आदि राज्यों में इस दल को बहुत अधिक सीटें मिलीं।

यह दल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा का समर्थक है और इसका

उद्देश्य भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों के आधार पर सुसंगठित समाज का निर्माण करना है।

यह दल आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना पर बल देता है और विद्यालयों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का पक्षपाती है। हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं के विकास पर बहुत अधिक बल देता है और अँग्रेजी का विरोधी है। इस दल को साम्प्रदायिक दल कहते हैं; क्योंकि यह दल सशक्त हिन्दू राष्ट्र के निर्माण का पक्षपाती है। यह दल दक्षिणपंथी दलों में से एक है और खुले व्यापार का समर्थन करता है।

(6) स्वतन्त्र पार्टी—इस दल की स्थापना भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालचारी ने की। इस दल को पुराने राजा-महाराजाओं एवं सेठ-साहूकारों का समर्थन प्राप्त है। चतुर्थ आमचुनाव में इस दल को लोकसभा में विरोधी दलों के मध्य सबसे अधिक सीटें प्राप्त हुईं। इस दल का नेता विरोधी दल का नेता बना।

स्वतन्त्र पार्टी, कांग्रेस के समाजवादी कार्यक्रमों की विरोधी है और प्रत्येक क्षेत्र में अधिकाधिक स्वतन्त्रता देने के पक्ष में है। यह कण्ट्रोल आदि को व्यर्थ समझती है। भाषा के सम्बन्ध में इस पार्टी का विचार है कि अँग्रेजी को पूर्णतया समाप्त नहीं करना चाहिये।

(7) भारतीय क्रान्ति दल—चतुर्थ आमचुनाव के पश्चात् असंतुष्ट कांग्रेसियों ने मिलकर इस दल का सङ्गठन किया। इस दल के निर्माताओं में श्री अजय मुखर्जी, श्री महामाया प्रसाद सिन्हा और चौधरी चरण सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। बङ्गाल, बिहार और उत्तर प्रदेश में इस दल ने अपनी शैशवावस्था में ही कुल प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। बाद में अजय मुखर्जी इस दल से अलग हो गये और बङ्गाल में इसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा।

इस दल की नीतियाँ राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों से बहुत कुछ मिलती हैं। इस दल के नेताओं का कहना है कि कांग्रेस की कथनी और करनी में बड़ा अन्तर है और वह गांधीवादी मार्ग से बिल्कुल हट गई। इसके नेता सच्चे अर्थों में गांधी के मार्ग पर चलने का दम भरते हैं।

(8) कुछ अन्य राजनीतिक दल—जिन दलों का ऊपर विवेचन किया गया है उनके अतिरिक्त कुछ अन्य राजनीतिक दल भी अपना महत्व रखते हैं। इन दलों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(अ) हिन्दू महासभा—हिन्दू महासभा का जन्म 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में हुआ था। यह दल, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के नारे पर विश्वास करता

निर्वाचन-पद्धति

(Election System)

प्रश्न—भारत की निर्वाचन पद्धति की चर्चा करते हुये चतुर्थ आम चुनाव का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

(Discussing the election system of India give a brief account of 4th General-Election.)

भारतीय संविधान लोकतंत्रात्मक संविधान है। यहाँ जनता के द्वारा, जनता के लिए जनता पर शासन होता है। भारतीय संविधान ने संघ, संसद और राज्य विधान मण्डलों के गठन की अंतिम सत्ता जनता के हाथों में सौंपी है। जनता, संघ और राज्य के प्रशासन को चलाने के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। यह चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। संविधान में इस प्रकार का प्राविधान है कि यह चुनाव निष्पक्षता और पूर्ण दक्षता से सम्पन्न किये जायँ।

चुनाव आयोग एवं मुख्य निर्वाचन आयुक्त—भारतीय संविधान में लिखा है कि देश में समस्त चुनाव एक चुनाव आयोग द्वारा सम्पन्न किये जाएंगे। फलस्वरूप चुनावों की देखभाल, नियंत्रण एवं निर्देशन के लिए भारत में एक चुनाव-आयोग का गठन किया गया है। इस आयोग का अध्यक्ष मुख्य निर्वाचक आयुक्त (Chief Election Commissioner) होता है। इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। उसको हटाने के लिए वही ढङ्ग अपनाना होता है जो किसी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए अपनाना होता है। उसकी स्थिति भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश जैसी होती है। चुनाव आयुक्त की सहायता के लिए सहायक चुनाव आयुक्त और क्षेत्रीय चुनाव आयुक्त दिये जाते हैं। चुनाव आयोग के कार्य हैं—(1) निर्वाचन सूची तैयार कराना, (2) समस्त चुनावों का निरीक्षण एवं पूर्ण व्यवस्था।

चुनाव प्रक्रिया (Election Process)

निर्वाचकों की सूची तैयार हो जाने के पश्चात् यह घोषणा की जाती है कि सूची बनकर तैयार हो गई है और जो व्यक्ति चाहें सूची में अपना नाम देख लें। यदि किसी व्यक्ति का नाम सूची से छूट जाता है तो वह प्रार्थना-पत्र देकर अपना नाम सूची में दर्ज करवा सकता है, परन्तु यह कार्य एक निश्चित तिथि के अन्दर ही होना चाहिये। चुनाव के पूर्व एक तिथि निश्चित की जाती है, जिस दिन तक खड़े होने वाले उम्मीदवारों के नामजदगी के पर्चे दाखिल किये जाते हैं।

नामजदगी के पर्चे दाखिल हो जाने के पश्चात् सात दिन के अन्दर इनकी जांच-पड़ताल की जाती है और उम्मीदवारों को तीन दिन का समय अपना नाम वापस

लेने के लिए दिया जाता है। तत्पश्चात् लगभग एक माह का समय चुनाव-प्रचार के लिए दिया जाता है। इन तीस दिनों तक उम्मीदवार धुआँधार प्रचार करते हैं, जगह-जगह भाषण होते हैं और सभाएँ की जाती हैं। मतदाताओं को अपने पक्ष में लेने के लिए प्रत्याशी और उनके समर्थक हरसम्भव प्रयत्न करते हैं। जिस दिन चुनाव सम्पन्न होता है उसके 24 घण्टे के पूर्व चुनाव-प्रचार का कार्य बन्द कर दिया जाता है।

आम चुनाव में इस बात का प्रबन्ध किया जाता है कि प्रत्येक मतदाता को मत देने के लिए अधिक कष्ट न उठाना पड़े। अधिक से अधिक 1,000 मतदाताओं के लिए एक चुनाव घर (Polling Booth) बनाया जाता है। मतदाताओं के लिए सवारी आदि की व्यवस्था करना निषिद्ध है। चूँकि भारत की अधिकांश जनता अनपढ़ है इसलिए मत-पत्र पर प्रत्याशियों के नाम के साथ ही उनके चुनाव चिन्ह भी बने होते हैं और मतदाता अपने पसन्द के उम्मीदवार के चुनाव चिन्ह के ऊपर मोहर लगा कर मत-पत्र को चुनाव पेटी में डाल देता है। चुनाव का समय समाप्त हो जाने पर सभी चुनाव पेटियाँ सील करके रख दी जाती हैं। मतगणना में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत प्राप्त होते हैं वही विजयी घोषित कर दिया जाता है।

चुनाव का मूल्यांकन—भारत में वयस्क मताधिकार की जिस प्रणाली को अपनाया गया है उसके कारण संसार के प्रजातन्त्र राष्ट्रों में भारत का स्थान बहुत ऊँचा उठ गया है। संसार के किसी भी देश में इतने अधिक व्यक्ति निर्भय होकर मतदान नहीं करते जितने कि भारत में। आज भी योरोप के कुछ प्रगतिशील देशों, जैसे स्विट्जरलैण्ड में स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त नहीं है। यह ठीक है कि चूँकि भारत की अधिकांश जनता अनपढ़ है इसलिए चुनाव में कुछ एक ढंग अपनाए जाते हैं जो उचित नहीं हैं। जाति और सम्प्रदाय के नाम पर वोट माँगा जाता है; परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत ने जो कदम उठाया है वह साहसपूर्ण कदम है और आगे आने वाली संततियाँ उससे बहुत अधिक लाभान्वित होंगी। जिन आलोचकों का यह मत था कि हमारे देश में चुनाव शान्तिपूर्वक सम्पन्न नहीं होंगे, उनको मुँह की खानी पड़ी है। भारत में चार आम-चुनाव शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं और विश्वास है कि आगे भी यही व्यवस्था बनी रहेगी जिससे हमारा नवजात लोकतन्त्र फलीभूत होता रहे।

चतुर्थ आम चुनाव की रूपरेखा—फरवरी, सन् 1967 में भारत में चतुर्थ आम चुनाव सम्पन्न हुआ। इससे पूर्व सन् 1951-52, 1957 और सन् 1962 में आम चुनाव सम्पन्न हुए। चतुर्थ आम चुनाव में लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार रही—

राज्य	कुल स्थान	कांग्रेस	स्वतंत्र दल	कम्युनिस्ट पार्टी (दक्षिण पंथी)	कम्युनिस्ट पार्टी (वामपंथी)	प्र० सो० पा०	सं० सो० पा०	जनसंघ	रिपब्लिकन	अन्य दल	निर्दलीय	कुल घोषित स्थान
आंध्र प्रदेश	41	35	3	1	—	—	—	—	—	1	2	41
आसाम	14	9	—	1	—	1	—	—	—	—	—	13
विहार	53	64	—	5	—	2	7	1	—	—	5	53
गुजरात	24	11	10	—	—	—	—	—	—	—	3	24
हरियाणा	9	7	—	—	—	—	—	1	—	—	1	9
जम्मू तथा कश्मीर	6	5	—	—	—	—	—	—	—	1	—	6
केरल	19	1	—	3	9	—	3	—	—	2	1	19
मध्य प्रदेश	37	24	1	—	—	—	—	10	—	—	2	37
मद्रास	39	3	6	—	4	—	—	—	—	25	1	39
महाराष्ट्र	46	37	—	2	—	1	2	—	—	2	1	45
मैसूर	27	18	5	—	—	2	1	—	—	—	1	27
नागालैण्ड	1	—	—	—	—	—	—	—	—	1	—	1
उड़ीसा	20	6	8	—	—	4	1	—	—	—	1	20
पंजाव	13	9	—	—	—	—	—	1	—	3	—	13
राजस्थान	23	10	8	—	—	—	—	3	—	—	2	23
उत्तर प्रदेश	85	47	1	1	1	2	8	12	1	—	8	85
पं० वंगाल	40	14	—	5	5	1	1	—	—	2	12	40
कुल जोड़	496	277	42	22	19	13	23	35	1	37	41	495

विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार रही :—

राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	स्थानों की कुल संख्या	कांग्रेस	स्वतंत्र दल	कम्युनिस्ट दल (दक्षिण पंथी)	कम्युनिस्ट दल (वाम पंथी)	जनसंघ	प्र० स० दल	सं० स० दल	रिपब्लिकन दल	अन्य दल	निर्दलीय	कुल योग
आंध्र प्रदेश	287	165	29	20	9	3	—	—	—	—	58	286
आसाम	126	73	2	7	—	—	5	4	—	9	24	124
बिहार	318	128	4	24	4	26	18	67	1	—	46	218
गुजरात	168	92	64	—	—	1	3	—	—	—	7	167
हरियाणा	85	48	3	—	—	12	—	—	2	—	16	81
जम्मू तथा कश्मीर	75	60	5	—	—	3	—	—	—	8	2	73
केरल	133	9	—	19	52	—	—	19	—	19	15	133
मध्य प्रदेश	296	167	7	1	—	7	9	10	—	—	24	296
मद्रास	234	49	20	2	11	—	4	2	—	138	6	233
महाराष्ट्र	270	202	—	10	1	4	8	4	5	19	16	262
मैसूर	216	126	16	2	—	4	20	6	2	—	40	216
उड़ीसा	140	30	49	7	1	—	21	2	—	—	29	139
पंजाब	104	48	—	5	3	9	—	1	3	26	9	104
राजस्थान	184	89	49	1	—	22	—	8	—	—	15	184
उत्तर प्रदेश	425	198	12	14	1	97	11	44	9	—	37	423
प० बंगाल	280	127	1	16	43	1	7	7	—	13	65	270
हिमाचल प्रदेश	60	33	—	2	—	—	—	7	—	—	13	55
मणिपुर	30	16	—	1	—	—	—	3	—	—	9	29
त्रिपुरा	30	23	—	1	1	—	—	—	—	—	—	25
कुल संख्या	3448	1674	256	122	126	26	106	183	24	233	436	3327

चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात् दल-बदल का जो सिलासिला चला उसने भारत के राजनीतिक जीवन को बड़ा अस्थिर बना दिया। अनेक राज्यों में कांग्रेस दल के बहुत से सदस्यों ने नया दल बना लिया और कभी कांग्रेस तथा कभी विरोधी दलों की सरकारें बनीं। दल बदल की नीति के कारण कुछ राज्यों की विधान सभाओं को विघटित करना पड़ा जैसे कि उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, बंगाल और हरियाणा। इन राज्यों में पुनः चुनाव करवाने के आदेश दिये गए। हरियाणा में चुनाव हो चुका है और वहाँ विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार रही :—

कुल सीटें	कांग्रेस	विशाल हरियाणा परिषद्	जनसंघ	स्वतन्त्र-पार्टी	भारतीय क्रान्ति-दल	रिपब्लिकन पार्टी	स्वतंत्र
81	48	13	7	2	1	1	6

निष्कर्ष—चतुर्थ आम चुनाव के फलस्वरूप जो नक्शा हमारे सम्मुख आया है वह इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि भारत की जनता अधिक समझदार होती जा रही है और वह अपने मत का महत्व समझने लगी है। विश्वास है कि अनेक कठिनाइयों के बावजूद हमारी यह लोकतंत्रीय प्रणाली चलती रहेगी और हमारी जनता सच्चे सेवकों को ही विधान सभाओं में और लोकसभा में भेजेगी।

अध्याय | 14

स्थानीय स्वशासन
(LOCAL SELF GOVERNMENT)

स्थानीय संस्थाओं से लाभ, उनका वर्गीकरण, कार्य और सुधार

(Advantages, Classification, Functions and Improvements of Local Bodies)

प्रश्न—स्थानीय संस्थाओं से क्या लाभ है ? भारत में स्थानीय संस्थाओं का वर्गीकरण करते हुए उनके कार्य बतलाइए और उनमें सुधार हेतु सुझाव दीजिए।

(What are the advantages of the Local Bodies ? Classifying the Local Bodies in India give an account of their functions and methods for improvement.)

स्थानीय स्वशासन का अर्थ उस शासन से है जिसके द्वारा नगर एवं ग्राम में रहने वाले व्यक्तियों को अपने स्थानीय मामलों में अपनी इच्छा एवं आवश्यकतानुसार प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता होती है। इस शासन में स्थानीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधि शासन प्रबन्ध में भाग लेते हैं। ब्राइस के मतानुसार, "स्वायत्त शासन प्रजातन्त्रीय शासन की आधारशिला एवं शिक्षणशाला है।"

स्थानीय संस्थाओं से लाभ (Advantages of the Local Bodies)

शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विकेन्द्रीकरण की नीति अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी देश की केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों को इतना अवकाश नहीं रहता कि वे प्रत्येक नगर और ग्राम की समस्त समस्याओं को पूरी तरह सुलझा लें। इन सरकारों से इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वे नगरों और ग्रामों की सफाई, रोशनी एवं रोगियों की चिकित्सा की पूरी व्यवस्था कर सकें। अतएव इस कार्य को करने के लिए कुछ छोटी-छोटी स्थानीय संस्थाओं की आवश्यकता होती है। प्रत्येक देश में स्थानीय मामलों के प्रबन्ध हेतु नगरपालिका, जिला परिषद् एवं ग्राम पंचायतों आदि का संगठन होता है। इन स्थानीय संस्थाओं से निम्नलिखित लाभ हैं—

(1) सुविधाजनक प्रवन्ध—प्रत्येक नगर एवं ग्राम के व्यक्ति अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए सुविधाजनक प्रवन्ध की माँग करते हैं। वे चाहते हैं कि उनके खाने, रहने, भ्रमण करने, खेलने आदि का सुविधाजनक प्रबंध हो जाय। स्थानीय संस्थाएँ इन आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

(2) शासन में कार्य-कुशलता—स्थानीय संस्थाएँ सरकार के प्रशासन में कुशलता एवं दक्षता की वृद्धि करती हैं। इन संस्थाओं में स्थानीय व्यक्ति होते हैं जो वहाँ की समस्याओं को आसानी से समझते हैं और उनका समाधान कर सकते हैं।

(3) कार्य का विभाजन—स्थानीय संस्थाएँ छोटे-छोटे स्थानीय कार्यों का दायित्व अपने ऊपर लेकर केन्द्र एवं राज्य सरकारों के भार को वहुत अधिक हल्का कर देती हैं और इन सरकारों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अधिक समय मिल जाता है।

(4) नागरिक शिक्षा—किसी भी देश की प्रगति उसके कार्य-कुशल नागरिकों पर ही निर्भर करती है। स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों को आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाती हैं। वे उनमें जन-सेवा व सहयोग और अनुशासन आदि भावनाओं का विकास करती हैं। नागरिकों में सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेने की भावना स्थानीय संस्थाएँ ही जागृत करती हैं। इस प्रकार वे लोकतंत्र शासन की इकाई का काम देती हैं। प्रसिद्ध विद्वान लास्की ने वड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"स्थानीय संस्थाएँ सरकार के दूसरे अंगों से वढ़कर जनता को लोकतंत्र की शिक्षा प्रदान करती हैं। वे जातियों को शिक्षित करती हैं, नागरिक गुणों के विकास के हेतु प्रारम्भिक पाठशालाओं का कार्य करती हैं तथा जनता को वास्तविक स्वतंत्रता का अनुभव कराती हैं।"

स्थानीय संस्थाओं का वर्गीकरण (Classification of the Local Bodies)

भारतवर्ष की स्थानीय संस्थाओं को मोटे तौर से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है :—

(1) नगरों की देखभाल करने वाली संस्थाएँ।

(2) ग्रामीण क्षेत्रों की देख-रेख करने वाली संस्थाएँ।

नगरों को देखभाल करने वाली संस्थाओं का वर्गीकरण निम्न रूप से किया जा सकता है :—

(1) नगरनिगम (Municipal Corporations),

(2) नगरपालिका (Municipal Boards),

(3) नगर-क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियाँ (Town Area and Notified Area Committees),

(4) छावनी बोर्ड (Cantonment Boards),

(5) पोर्ट-ट्रस्ट (Port Trust)।

ग्रामीण क्षेत्रों का प्रबन्ध करने वाली संस्थाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है :—

(1) जिला परिषद् या जिला बोर्ड

(2) ग्राम पंचायत।

स्थानीय संस्थाओं के कार्य (Functions of the Local Bodies)

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि स्थानीय संस्थाओं का कार्य स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करना है। मोटे तौर से स्थानीय संस्थाओं के कार्यों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है, जिनको चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(1) सार्वजनिक रक्षा—सार्वजनिक रक्षा के जितने भी कार्य हैं वे स्थानीय संस्थाएँ पूरी करती हैं। इन कार्यों में मुख्य हैं—सड़कों एवं गलियों का निर्माण एवं मरम्मत, रोशनी का प्रबन्ध, रहने की समुचित व्यवस्था का प्रबन्ध, जल का प्रबन्ध, आग से बचाव का प्रबन्ध, कारखानों एवं व्यापारों पर नियन्त्रण आदि।

(2) सार्वजनिक स्वास्थ्य—जनता के स्वास्थ्य के लिए भी सार्वजनिक संस्थाएँ उत्तरदायी होती हैं। इसलिए उनके काम हैं—संक्रामक रोगों की रोकथाम औषधालयों एवं चिकित्सालयों का प्रबन्ध, मैदान, एवं बगीचों का प्रबन्ध आदि

(3) सार्वजनिक शिक्षा—बालकों एवं बालिकाओं की प्रारम्भिक एवं टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध भी स्थानीय संस्थाएँ करती हैं। वे पुस्तकालयों, वाचनालयों अजायबघरों एवं कला केन्द्रों का प्रबन्ध करती हैं।

(4) सार्वजनिक सुविधाएँ—स्थानीय नागरिकों को उनके दैनिक [illegible] कार्यों में सुविधा पहुँचाना भी स्थानीय संस्थाओं का कर्तव्य हो [illegible] है। [illegible] निम्नलिखित कार्य करती हैं—जल, गैस, बिजली, बाजारों का प्रबन्ध [illegible] धर्मशाला, तालाब बनवाना, डिस्पेन्सर खोलना, वृक्ष लगवाना [illegible] बनवाना आदि।

छोटे-छोटे गाँवों से लेकर बड़े-से-बड़े नगरों में [illegible] है। ये संस्थाएँ क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं [illegible] अनुसार [illegible]

भारत की स्थानीय संस्थाओं में सुधार [illegible] Bo ies of India)

यह दुर्भाग्य का विषय है कि भारत में स्थानीय [illegible] उतना महत्वपूर्ण योगदान नहीं दे पा रहा है [illegible]

पाश्चात्य देशों में। इसके अनेक कारण हैं। स्थानीय संस्थाओं में सुधार के हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं—

(1) स्थानीय संस्थाओं में उन्हीं व्यक्तियों को चुना जाय जो योग्य, अनुभवी और जनता के सच्चे सेवक हों।

(2) जनता को जागरूक करने का प्रयास किया जाय जिससे कि वे सच्चे जनसेवियों का चुनाव कर सकें। इस हेतु भारत के प्रत्येक स्कूल एवं कालेज में नागरिक-शास्त्र एवं स्वायत्त शासन आदि विषयों को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाय।

(3) विश्वविद्यालय स्तर पर एम० ए० एवं पी-एच० डी० की डिग्री के हेतु स्थानीय स्वशासन की शिक्षा पर बल दिया जाय। हमारा पाठ्यक्रम व्यावहारिक हो और उसमें स्थानीय वित्त, जन-स्वास्थ्य, म्युनिसिपल व्यापार नगर योजना आदि की शिक्षा को स्थान दिया जाय।

एक विद्वान का कथन है कि किसी भी देश के योग्य नागरिकों के निर्माण के लिए शिक्षा एक प्रबल साधन है। स्थानीय संस्थाओं में सुधार तभी सम्भव है जब हम बालकों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करें कि वे आगे चलकर योग्य नागरिक बनें।

नगरनिगम एवं नगरपालिकाएँ

(Municipal Corporation and Municipal Boards)

प्रश्न—उत्तर प्रदेश में नगरनिगम और नगरपालिकाओं के सङ्गठन, कार्यों, कार्यप्रणाली एवं आय के साधनों के विषय में आप क्या जानते हैं? उन पर राज्य सरकार के नियंत्रण का उल्लेख कीजिये। क्या उनमें आपको कुछ दोष दिखलाई देते हैं? उन दोषों को आप कैसे दूर करेंगे?

(What do you know about the composition, functions, working, and sources of Income of the Municipal Corporations and Municipal Boards, in the Utter Pradesh ? Describe the control of State Government over them. Do you notice some defects in them ? How will you remove those defects ?)

नगरनिगम (Municipal Corporations)

भारत में सर्वप्रथम सन् 1687 ई० में मद्रास में कार्पोरेशन (नगरनिगम) की स्थापना की गई थी। इसके पश्चात् बम्बई और कलकत्ता के नगरनिगम संगठित किये गये। आजकल दिल्ली, कानपुर, आगरा, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, ग्वालियर, इन्दौर, जबलपुर और पटना आदि बड़े नगरों में नगरनिगमों की स्थापना हो चुकी है। दिल्ली नगरनिगम की चर्चा हमने एक अलग अध्याय में की है। यहां हम अन्य नगर

निगमों, विशेषकर उत्तर प्रदेश के नगरनिगमों के संगठन, कार्यों एवं आय के साधनों का विवरण करते।

नगरनिगमों (नगर महापालिकाओं) का संगठन—प्रत्येक महापालिका में नागरिकों के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि होते हैं। इन प्रतिनिधियों का चुनाव मताधिकार द्वारा होता है। नगरनिगमों के लिए सभासदों की संख्या सरकार द्वारा निश्चित की जाती है। कुछ स्थान परिगणित जातियों के लिए सुरक्षित रख जाते हैं। कुछ विशिष्ट सभासदों का भी चुनाव किया जाता है। इन विशिष्ट सभासदों का चुनाव जनता द्वारा चुने गये सभासद करते हैं। हर 9 सभासदों पर एक विशिष्ट सभासद होता है। विशिष्ट सभासदों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व नगर में निर्वाचक हों। सभासद होने के लिए यह आवश्यक है कि कोई व्यक्ति पागल या दिवालिया न हो और महापालिका के किसी लाभ के पद या सरकारी नौकरी में न हो।

प्रत्येक नगरनिगम में एक नगरप्रमुख और एक उप-नगरप्रमुख होता है। नगरप्रमुख के चुनाव के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह नगरनिगम का निर्वाचित सदस्य ही हो। उसमें निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिये—

(1) वह नगर में निर्वाचक हो।

(2) उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

(3) उसमें सभासद के लिए उल्लिखित योग्यताएँ हों।

(4) यदि वह सभासद अथवा विशिष्ट सभासद होने के लिए निर्वाचन में हार गया हो तो उसके बाद से 6 माह का समय बीत चुका हो।

नगरप्रमुख का चुनाव 1 वर्ष के लिए होता है। उसके अतिरिक्त एक उप-नगरप्रमुख होता है जिसका कार्यकाल महापालिका के कार्यकाल के बराबर अर्थात् 5 वर्ष होता है।

विभिन्न समितियाँ—नगरमहापालिकाओं का दिन प्रतिदिन का कार्य चलाने के लिये कुछ समितियों का गठन किया जाता है। इन समितियों में मुख्य हैं—

(1) कार्यकारिणी समिति।

(2) विकास समिति।

कार्यकारिणी समिति में 12 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन महापालिका अपने सभासदों एवं विशिष्ट सभासदों में से करती है। इस समिति का अध्यक्ष उप-नगरप्रमुख होता है। यह समिति महापालिका के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए उत्तरदायी होती है।

विकास समिति में 12 सदस्य होते हैं। इनमें 10 सदस्य सभासदों एवं विशिष्ट सभासदों में से निर्वाचित होते हैं। 2 कोआप्टेड सदस्य होते हैं।

मुख्यनगर अधिकारी—प्रत्येक महापालिका के लिए राज्य सरकार एक मुख्य प्रशासकीय अधिकारी की नियुक्ति करती है। यह एक अत्यन्त अनुभवी अधिकारी होता है। इसकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है और बाद में इसकी कालावधि को और बढ़ाया जा सकता है। महापालिका, मुख्य प्रशासकीय अधिकारी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे हटा भी सकती है। महापालिका की कार्यपालिका शक्ति इसी अधिकारी के हाथ में होती है। मुख्य लेखा परीक्षक को छोड़कर अन्य सभी अधिकारी उसके नियन्त्रण में कार्य करते हैं। मुख्य नगर अधिकारी के अतिरिक्त महापालिका में अन्य कर्मचारी होते हैं जिनमें मुख्य हैं—उपनगर अधिकारी, सहायक नगर अधिकारी, नगर अभियन्ता, नगर स्वास्थ्य अधिकारी, मुख्य नगर लेखा परीक्षक।

महापालिका के कार्य—नगर महापालिका मुख्य रूप से 4 प्रकार के कार्य करती है—

(1) सार्वजनिक रक्षा।
(2) सार्वजनिक स्वास्थ्य।
(3) सार्वजनिक शिक्षा।
(4) सार्वजनिक सुविधाएं।

इन चारों प्रकार के कार्यों की चर्चा हम इसी अध्याय के प्रथम प्रश्न में कर चुके हैं अतएव यहां इसका विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

आय के साधन—महापालिकाओं की आय के साधन हैं—सम्पत्ति कर, सवारी गाड़ियों पर कर, चुङ्गी, मकान एवं भूमि कर, पानी एवं बिजली कर, सफाई पर कर, शिक्षा शुल्क, मनोरंजन आदि पर कर, राज्य के सहायता, ऋण, व्यापार आदि।

महापालिकाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण—प्रत्येक नगर महापालिका पर राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है। राज्य सरकार महापालिका अथवा उसकी किसी भी समिति की किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में सूचना मांग सकती है। वह महापालिका अथवा उसके किसी विभाग के निरीक्षण हेतु कर्मचारियों को नियुक्त करके रिपोर्ट मांग सकती है। उसे यह भी अधिकार है कि महापालिका को किसी भी कार्य को करने का आदेश दे। महापालिका एवं उसकी समितियों के प्रस्ताव मुख्य अधिकारी द्वारा सरकार को भेजे जाते हैं। यदि सरकार किसी प्रस्ताव को जनहित की दृष्टि से उचित नहीं समझती तो वह उसे लागू होने से रोक सकती है। राज्य सरकार, यदि यह समझती है कि महापालिका अपने कार्यों को ठीक प्रकार से नहीं चला रही है अथवा वह अपने अधिकार का दुरुपयोग कर रही है तो वह महापालिका

को भंग भी कर सकती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नगर महापालिकाओं पर राज्य सरकार का काफी नियन्त्रण रहता है और महापालिकाएँ राज्य सरकार की इच्छा के विपरीत कोई भी काम नहीं कर सकता।

नगरपालिकाएँ (Municipal Boards)

नगर की देखरेख के लिए प्रत्येक नगर में एक नगरपालिका की स्थापना राज्य की ओर से की जाती है। उत्तर प्रदेश के पाँच महानगरों—लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, आगरा और वाराणसी में नगरनिगमों की व्यवस्था की गई है, इन नगरों में अभी भी नगरपालिकाएँ हैं। नगरपालिकाएँ राज्य सरकार के हाथ में रहती हैं। वही उनकी सीमा निश्चित करती है और यदि राज्य सरकार किसी नगर-पालिका के काम से असन्तुष्ट हो जाती है तो वह उसके अधिकारों को छीन भी सकती है।

नगरपालिका का संगठन—प्रत्येक नगर की नगरपालिका में उस नगर के नागरिकों के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक नगरपालिका में सदस्यों की संख्या उस नगर की जनसंख्या पर निर्भर करती है। प्रतिनिधियों का चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। नगर में प्रायः 6 महीने पूर्व से रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जो 21 वर्ष की आयु पूरी कर चुका होता है, मतदाता होता है। परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि भारत का नागरिक हो तथा पागल या दिवालिया न हो। किसी अप-राध में एक वर्ष से अधिक की सजा पाए हुए व्यक्ति को भी मतदान का अधिकार नहीं होता, परन्तु यह शर्त सरकार द्वारा हटाई भी जा सकती है।

कोई भी नागरिक, जिसका नाम निर्वाचन सूची में हो, नगरपालिका की सदस्यता के लिए प्रत्याशी बन सकता है। परन्तु साथ ही यह आवश्यक है कि वह कोढ़ी, पागल अथवा दिवालिया न हो, उस पर नगरपालिका का कर या ऋण बाकी न हो तथा वह सरकारी नौकर, न्यायाधीश अथवा मुन्सिफ न हो।

निर्वाचन की सुविधा के लिए नगर को कई वार्डों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड से सदस्यों का चुनाव किया जाता है। उम्मीदवार होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्देशन पत्र के साथ 50 रु० सरकारी कोष में जमा करना [illegible] है। मतदान गुप्त प्रणाली द्वारा होता है और साधारणतः [illegible] वर्ष का होता है।

नगरपालिका के पदाधिकारी—प्रत्येक [illegible] (Chairman) होता है। इसके अतिरिक्त दो या एक उप [illegible] भी होते हैं। नगरपालिका में अन्य कर्मचारी जैसे [illegible] आफिसर, वाटर वर्क्स सुपरिन्टेन्डेन्ट, ओवरसियर [illegible]

विभिन्न समितियाँ—नगरपालिका के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए निर्वाचित सदस्यों की विभिन्न समितियाँ बनाई जाती हैं। प्रत्येक समिति का एक सभापति होता है। समितियों में मुख्य हैं—शिक्षा समिति, स्वास्थ्य समिति, चुंगी समिति, अर्थ समिति, और वाटर वर्क्स समिति आदि।

नगरपालिका की आय तथा व्यय के साधन—नगरपालिका की आय विभिन्न साधनों से होती है। इनमें से मुख्य हैं—चुंगी, भूमि एवं भवन कर, शिक्षा एवं अन्य सवारियों पर लगाया गया कर, पानी एवं बिजली पर कर, सफाई पर कर, मनोरंजन आदि पर लगाया गया कर, शिक्षा शुल्क, राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सहायता, ऋण एवं व्यापार आदि।

उपर्युक्त साधनों द्वारा प्राप्त धन को नगरपालिका शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, औषधालय एवं सड़कों के बनवाने, रोशनी, पुस्तकालयों आदि की व्यवस्था करने एवं कर्मचारियों को वेतन देने में व्यय करती है।

नगरपालिकाओं के कार्य—जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि नगरपालिकाएँ नगर की सफाई, स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था के हेतु उत्तरदायी होती हैं। उनके अनेक कार्य होते हैं जिनमें से मुख्य कार्यों की चर्चा यहाँ की जा रही है—

(1) नगर की सड़कों एवं गलियों का प्रबन्ध, उनकी मरम्मत, सफाई और रोशनी आदि का प्रबन्ध करना।

(2) शहर की समुचित सफाई का प्रबन्ध करना।

(3) औषधालय स्थापित करवाना एवं जनता के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु सड़ी गली वस्तुओं की बिक्री को रोकना तथा टीका लगवाने आदि का प्रबन्ध करना।

(4) जनता के लिए साफ पानी का समुचित प्रबन्ध करना।

(5) प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था करना।

(6) जन्म-मरण का पूर्ण हिसाब रखना।

(7) आग बुझाने के लिए समुचित प्रबन्ध करना।

(8) मनोरंजन के लिए पार्कों, पुस्तकालयों एवं वाचनालयों त- आदि की व्यवस्था करना।

(9) नगर को सुन्दर बनाने के लिए तालावों, एवं अन्य र- व्यवस्था करना।

(10) अकाल एवं बीमारी के समय जनता को सहायता प्र-

(11) पागलखानों, कोढ़ीखानों एवं भिखमंगों के करना।

(12) बाजारों की स्वच्छता और प्रदर्शनी आदि का प्रब-

(13) जनता की सुविधा के लिए बाग और उद्यान आदि को बनवाने का प्रबन्ध करना।

नगरपालिकाओं पर सरकारी नियन्त्रण—जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है नगरपालिका सरकार की देखभाल में समस्त कार्य करती है और यदि राज्य सरकार चाहती है तो वह नगरपालिकाओं के अधिकारों को कम कर सकती है। यदि राज्य सरकार यह महसूस करती है कि किसी नगर की नगरपालिका सुचारु रूप से कार्य नहीं कर रही है तो वह उचित कदम उठा सकती है। नगरपालिका के कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य सरकार करती है। निरीक्षक एवं कमिश्नर नगरपालिका की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करते हैं। यदि वह राज्य सरकार को यह परामर्श देते हैं कि वह नगरपालिका का काम अपने हाथ में ले लें, तो राज्य सरकार नगरपालिका को भङ्ग करके उसके समस्त कार्यों को अपने हाथ में ले लेती है। प्रतिवर्ष नगरपालिका के आय-व्यय की रिपोर्ट राज्य सरकार को भेजी जाती है।

नगर महापालिका और नगरपालिकाओं के दोष और उन्हें दूर करने के उपाय (Defects of the Municipal Corporations and Municipal Boards)

अत्यन्त खेद का विषय है कि महापालिकाओं और नगरपालिकाओं की व्यवस्था जिस उद्देश्य को लेकर की गई है उन उद्देश्यों की पूर्ति उनके द्वारा नहीं हो पा रही है। विभिन्न नगरों की महापालिकाओं और नगरपालिकाओं में भ्रष्टाचार, पक्षपात, दलबन्दी तथा स्वार्थपरता का बोलबाला है। अधिकतर जनता के प्रतिनिधि जनता के हित का ध्यान न रखकर स्वहित का ध्यान रखते हैं। फलस्वरूप सार्वजनिक कार्य उचित रूप में नहीं हो पाते। इन नगर महापालिकाओं और नगरपालिकाओं की बुराइयों को दूर करने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए—

(1) नगरमहापालिकाओं और नगरपालिकाओं में योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का ही चुनाव किया जाय। ऐसे व्यक्तियों का चुनाव किया जाय जो राजनीतिक दलबन्दी से ऊपर उठकर जनता के हित का ही ध्यान रखें।

(2) जनता को इतना जागरूक कर दिया जाय कि वह सच्चे जनसेवकों का ही चुनाव करे। विद्यालयों में इस सम्बन्ध में शिक्षा देने की आवश्यकता है। नगरमहापालिकाओं को राज्य सरकार के हस्तक्षेप से दूर रखा जाय। राज्य सरकार को उनके कार्य में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए और अधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

(3) नौकरशाही की प्रवृत्ति को सुधारना अत्यन्त आवश्यक है। नगरमहापालिका और नगरपालिकाओं में कार्य करने वाले अधिकतर कर्मचारी नौकरशाही

और नौकरशाही के शिकार होते हैं। इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए हरसम्भव कदम उठाये जाने चाहिये और दोषी व्यक्तियों को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाना चाहिये।

नगर क्षेत्र सूचित क्षेत्र समितियाँ और छावनी बोर्ड
(Town and Notified Area Committees and Cantonemnt Boards)

प्रश्न—नगर क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियों एवं छावनी बोर्ड पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(Write a short note on Town and Notified Area Committees and Cantonement Boards.)

नगर क्षेत्र व सूचित समितियाँ (Town and Notified Area Committees)

उत्तरप्रदेश में उन क्षेत्रों के म्युनिसिपल प्रबन्ध के लिए, जिनकी संख्या 20,000 से कम है, नगर क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियाँ बनाई गई हैं। किसी भी क्षेत्र के नगर व क्षेत्र सूचित क्षेत्र समिति को अपने अधिकार में लेने का राज्य सरकार को पूर्ण अधिकार है।

इन समितियों को वे समस्त कार्य करने होते हैं जो नगरपालिकाएँ करती हैं। स्वास्थ्य एवं सफाई का प्रबन्ध, सड़कों का निर्माण, कुओं एवं तालाबों की देख-रेख, पानी, रोशनी और शिक्षा का प्रबन्ध तथा अन्य सार्वजनिक सुविधाओं को प्रदान करने का कार्य इन समितियों का है। राज्य सरकार इन समितियों के सदस्यों की संख्या निश्चित करती है। साधारणतः सदस्यों की संख्या 5 और 7 के मध्य होती है। अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं, परन्तु कुछ राज्य सरकार द्वारा भी मनोनीत किये जाते हैं। नगर क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियाँ नगरपालिकाओं की अपेक्षा कम स्वतन्त्र होती हैं। उनके कार्यों में जिलाधीश तथा कमिश्नर अत्यधिक हस्तक्षेप कर सकते हैं। साथ ही; उनकी आय के साधन भी कम होते हैं। जिला परिषद् और प्रान्तीय सरकार द्वारा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

नगर क्षेत्र व सूचित क्षेत्र समितियों के कानून में सन् 1953 ई० में परिवर्तन किये गये। आजकल उत्तर प्रदेश में नगर क्षेत्र समितियों की संख्या 269 और सूचित क्षेत्र समितियों की संख्या 32 है। सूचित क्षेत्र समितियाँ उन स्थानों पर स्थापित की जाती हैं जहाँ की जनसंख्या 10,000 से कम है और वे स्थान बड़े-बड़े नगरों के उपनगर बन गए हैं।

छावनी बोर्ड (Cantonement Board)

वे क्षेत्र जो छावनी के अन्तर्गत आते हैं, वहाँ के रहने वाले व्यक्तियों की सुविधाओं के लिए छावनी बोर्ड का निर्माण किया जाता है। छावनी बोर्ड छावनी क्षेत्र में

वही कार्य करती है जो प्रायः नगरपालिकाएँ नगर में करती हैं। अन्तर केवल इतना है कि छावनी बोर्ड के अधिकार कुछ कम हैं और उन पर फौजी अधिकारियों का नियन्त्रण रहता है। उनका अध्यक्ष कोई फौज का अधिकारी होता है और कोई ‹ आधे सदस्य फौज द्वारा मनोनीत होते हैं। शेष सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा किया जाता है।

जिला-परिषद्

(District Board)

प्रश्न—उत्तर प्रदेश में जिला-परिषदों के सङ्गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिए और उन पर सरकारी नियन्त्रण की विवेचना कीजिए।

(Describe the organization and functions of Zila Parishads in Uttar Pradesh. Discuss the control of Government over them.)

जिला-परिषद् का सङ्गठन (Organization of Zila Parishad)

जिला-परिषद् के सदस्यों के चुनाव का सभी वयस्क और निर्धारित योग्यतावाले व्यक्तियों को मतदान करने का अधिकार होता है। मतदान प्रायः गुप्त एकल प्रणाली से किया जाता है।

मतदाता की योग्यताएँ—(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) जिला परिषद् के किसी क्षेत्र का निवासी हो।

(3) उसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो।

अयोग्यता—दिवालिया, पागल तथा अपराध में सजा पाए हुए व्यक्तियों का नाम मतदाताओं की सूची में नहीं होता।

सदस्यता—जिला-परिषद् की सदस्यता के लिए प्रत्येक व्यक्ति [illegible] मतदाता सूची में है, सदस्य हो सकता है परन्तु सरकारी नौकर [illegible] कर्मचारियों, ठेकेदारों और वकालत का पेशा करने वाले व्यक्तियों को [illegible] अधिकार नहीं होता।

चुनाव—चुनाव के [illegible] निर्वाचन [illegible]
जाता है, और एक तिथि निर्धारित की जाती है

कार्य-काल—जिला परिषद [illegible]
होता है परन्तु सरकार इस कार्यकाल को बढ़ा [illegible]

पदाधिकारी—जिला-परिषद् का प्रमुख [illegible]
निर्वाचन जनता करती है। अध्यक्ष के पद [illegible]
की आयु का होना चाहिए। उसका कार्यकाल [illegible]

त्याग-पत्र देकर या उस पर अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर वह अपने पद से च्युत हो सकता है। अध्यक्ष के अतिरिक्त एक या दो उपाध्यक्ष, सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। ये अवैतनिक अधिकारी होते हैं। इनके अतिरिक्त सचिव, अधीक्षक, हेल्थ अफसर, इन्जीनियर, विद्यालय निरीक्षक आदि अन्य स्थायी कर्मचारी होते हैं जिनका वेतन प्रायः सरकार देती है, परन्तु उनको अध्यक्ष के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता है।

अध्यक्ष के प्रमुख कार्य—(1) जिला परिषद् की बैठकों को बुलाना, उनमें सभापति का आसन ग्रहण करना तथा प्रमुख कर्मचारियों जैसे इन्जीनियर, हेल्थ अफसर, सिविल सर्जन, विद्यालय निरीक्षक आदि को परामर्श के लिए आमन्त्रित करना।

(2) अध्यक्ष वास्तव में जिला-परिषद् के पूरे शासन-प्रबन्ध की देख-रेख का जिम्मेदार है।

(3) अध्यक्ष ही कर्मचारियों के भत्ते, वेतन और सेवाकाल आदि के प्रश्नों का निर्णय करता है।

(4) प्रतिवर्ष वह जिला परिषद् के समस्त कार्यों की रिपोर्ट और हिसाब-किताब का लेखा तैयार करके कमिश्नर और जिलाधीश के पास भेजता है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि जिला-परिषद् की सफलता का श्रेय अधिकतर अध्यक्ष को ही होता है।

समितियाँ—जिला-परिषद् के कार्य को भलीभांति चलाने के लिए अनेक समितियों का संगठन किया जाता है। इनमें कुछ स्थायी समितियाँ होती हैं और कुछ का आवश्यकतानुसार निर्माण किया जाता है। स्थायी समितियों में कार्यकारिणी, शिक्षा-समिति, अर्थ-समिति, स्वास्थ्य-समिति, भवन-निर्माण समिति, आदि प्रमुख हैं। इन समितियों को वही सब कार्य करने पड़ते हैं जो जिला-परिषद् उनको सौंपती है। कार्यकारिणी उन सब कार्यों का नियोजन तथा निरीक्षण करती है।

जिला-परिषद के कार्य (Functions of Zila Parishad)

सार्वजानिक सेवा के समस्त कार्य जिला-परिषद् के अधीन होते हैं। इन कार्यों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—(1) मुख्य कार्य, और (2) ऐच्छिक कार्य।

(1) मुख्य कार्य—(1) जिले की सड़कों, पुलों आदि की सफाई, मरम्मत और निर्माण का कार्य।

(2) सड़क के किनारे छायादार पेड़ लगवाना, उनकी रक्षा करना।

(3) छूत की बीमारियों जैसे चेचक, हैजा, प्लेग आदि के टीके लगवाना।

उपर्युक्त आमदनी को खर्च करने का दायित्व जिला-परिषद् पर होता है, परन्तु प्राथमिक शिक्षा, औषधालयों, सड़कों, पुलों, कुओं, तालाबों आदि की व्यवस्था को वृद्धि दी जाती है। इनके अतिरिक्त कृषि की उन्नति, कर्मचारियों का वेतन, मेला, नुमाइश आदि का प्रबन्ध तथा अन्य कार्यों पर भी व्यय किया जाता है।

सरकारी नियन्त्रण (Government's Control)

विधान के अनुसार जिलाधीश और कमिश्नर को जिला-परिषद् के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार है और इसलिए जिला-परिषद् अपनी वार्षिक रिपोर्ट कमिश्नर के पास भेजता है। कमिश्नर जिला-परिषद् के विवादग्रस्त प्रश्नों पर सलाह देता है तथा परिषद् के कार्यों की प्रगति की रिपोर्ट सरकार को भेजता है। इस प्रकार का नियंत्रण अत्यन्त लाभकारी हो सकता है यदि सरकारी कर्मचारियों की प्रवृत्ति केवल दोषों को निकालने की न हो बल्कि जिले की समस्याओं को सुलझाने और उन पर सहृदयता-पूर्वक विचार करने तथा सद्भावना से सुलझाने की हो।

ग्राम सभाएँ, ग्राम पंचायतें और न्याय पचायतें

(Gram Shabhas, Gram Panchayats, and Nyaya Panchayats)

प्रश्न—ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों और न्याय पंचायतों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(What Do you know about Gram Sabhas, Gram Panchayats and Nyaya Panchayats ?)

भूमिका (Introduction)

भारत में अति प्राचीन काल से ही ग्राम पंचायतों का विशेष महत्व रहा है। ग्राम पंचायतें ग्राम की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान देती थीं। मध्य युग में भी ये पंचायतें अत्यधिक बलशाली थीं। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही इन पंचायतों का महत्व कम होने लगा और वे लुप्त हो गईं। ब्रिटिश काल में स्वशासन की स्थापना के लिए प्रयास किया गया; परन्तु वह केवल दिखावा मात्र था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी सरकार ने इस ओर ध्यान दिया। भारतीय संविधान की 40वीं धारा में स्पष्ट लिखा है कि प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में ग्राम पंचायतों के संगठन का प्रयत्न करेगा। फलस्वरूप; अनेक राज्यों में ग्राम पंचायतों के अधिनियम पारित किए गए और इन पंचायतों का संगठन किया गया। उत्तर प्रदेश में इस समय 36139 ग्राम पंचायतें हैं और इस प्रदेश को ध्यान में रखकर ही हम ग्राम पंचायतों के संगठन आदि पर प्रकाश डाल रहे हैं।

ग्राम सभा (Gram Sabha)

सङ्गठन—उत्तर प्रदेश में 27 दिसम्बर, सन् 1947 ई० को पंचायतराज

अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार 1,000 की जनसंख्या वाले प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा की स्थापना की गई है। बाद में इस अधिनियम में एक संशोधन किया गया जिसके अनुसार 250 तक की आबादी वाले ग्राम में एक ग्राम सभा की स्थापना की गई। 250 से कम संख्या वाले गाँव को दूसरे गाँव में मिला दिया गया।

ग्राम का प्रत्येक निवासी जिसकी आयु 21 वर्ष से अधिक है, ग्राम सभा का सदस्य होता है। पागल, कोढ़ी, दिवालिया, सरकारी कर्मचारी, चुनाव सम्बन्धी अपराध में दण्डित, नैतिक अपराध के दोषी ग्राम सभा के सदस्य नहीं होते।

ग्राम सभा का सर्वोच्च अधिकारी प्रधान होता है, जिसका कार्यकाल 5 वर्ष होता है। आवश्यकता पड़ने पर उसके कार्यकाल को एक वर्ष बढ़ाया जा सकता है। इसके प्रधान की अवस्था 30 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। यह गाँव सभा के विशेष अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से हटाया जा सकता है। प्रधान की सहायता के लिए एक उप-प्रधान होता है। यह प्रधान की अनुपस्थिति में उसके कार्यों को देखता है।

ग्राम सभा की वर्ष में दो बैठकें होती हैं—(1) खरीफ की बैठक और (2) रबी की बैठक।

ग्राम सभा का प्रधान कुल सदस्या के 1/5 हिस्से के निवेदन पर 30 दिन के अन्दर अतिरिक्त बैठक भी बुला सकता है। बैठक का कोरम कुल सदस्या का 1/5 हिस्सा होता है।

ग्राम सभा के कार्य—ग्राम सभा के कार्यों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

(1) गाँव के विकास हेतु योजनाएँ बनाना, उनको मञ्जूरी देना, और यह देखना कि उन योजनाओं के अनुसार सुचारु रूप से कार्य हो रहा है या नहीं।

(2) साल में कम से कम दो बार सभा की बैठक बुलाना। रबी की बैठक में पिछले वर्ष के आय-व्यय पर विचार करना तथा खरीफ की बैठक में आगामी वर्ष का बजट प्रस्तुत करना।

(3) प्रधान, उप-प्रधान, गाँव पंचायत, एवं न्याय पंचायत के सदस्यों का चुनाव करना।

(4) गाँव निधि की स्थापना करना और उसकी भली-भाँति देख-रेख करना।

(5) पंचायत की आमदनी के लिए नियमानुसार अपने क्षेत्र में कर, शुल्क आदि लगाना।

ग्राम पंचायत (Gram Panchayat)

संगठन—प्रत्येक ग्राम सभा अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का

निर्माण करती है जिसे ग्राम पंचायत के नाम से पुकारा जाता है। ग्राम सभा के समस्त कार्यों को पूरा करने का दायित्व ग्राम पंचायत को होता है। पंचायत के सदस्यों की संख्या जनसंख्या के आधार पर निश्चित होती है। 1000 से कम की जनसंख्या पर 30 सदस्य, 1000 से अधिक और 2000 से कम पर 36 सदस्य, 2000 से अधिक और 3000 से कम पर 39 सदस्य, 3000 से अधिक और 4000 से कम पर 45 सदस्य और इससे अधिक की जनसंख्या पर 51 सदस्य होते हैं।

निर्वाचन—ग्राम पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन के हेतु एक निर्वाचन अध्यक्ष और अन्य सहायक निर्वाचन अध्यक्ष नियुक्त किये जाते हैं। यह अधिकारी चुनाव को सम्पन्न करते हैं। चुनाव वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। जाति, धर्म, लिंग, स्थान एवं सम्पत्ति सम्बन्धी कोई विभेद नहीं बरता जाता है। सभी नागरिकों को स्वतंत्रता-पूर्वक मतदान में भाग लेने का अधिकार होता है। प्रत्याशियों के लिए यह आवश्यक है कि वे भारत के नागरिक हों, पागल या दिवालिए न हों, संगीन अपराधों में दण्डित न हों, सरकारी पदों पर आसीन न हों, और ग्राम के स्थायी निवासी हों।

ग्राम पंचायत के अधिकारी—ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या निश्चित की गई है। इन सदस्यों के अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक सभापति और एक उपसभापति होता है। सभापति ग्राम पंचायत का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है। उसकी अनुपस्थिति में उसका कार्यभार उप-सभापति सम्भालता है। सभापति एवं उपसभापति का कार्यकाल 5 वर्ष होता है; परन्तु इसके पूर्व भी वे अपने पद से त्यागपत्र दे सकते हैं। यदि ग्राम सभा के सदस्यों का दो तिहाई बहुमत उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देता है तो उन्हें त्यागपत्र देना होता है। सभापति की सहायता पहुँचाने के लिए एक सचिव भी होता है।

ग्राम पंचायत के अधिकार और कार्य—ग्राम पंचायत के कार्यों का अध्ययन दो रूपों में किया जा सकता है—(अ) अनिवार्य कार्य, और (ब) ऐच्छिक कार्य।

(अ) अनिवार्य कार्य—अनिवार्य कार्यों को हम पुनः तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(1) जनमार्ग-सम्बन्धी कार्य—उन सार्वजनिक मार्गों की, जो पंचायत के कार्य क्षेत्र में होते हैं, देखभाल कार्य ग्राम पंचायत का होता है। ग्राम पंचायत उन मार्गों की मरम्मत करवाती है, उन पर पुल या पुलिया बनवाती है और उन पर पेड़ लगवाती है। ग्राम पंचायत किसी कुएं या घाट को केवल पानी पीने के लिए या खाना बनाने के लिए सुरक्षित रखने के लिए आदेश भी जारी कर सकती है।

(2) सफाई-सम्बन्धी कार्य—ग्राम की स्वच्छता एवं सफाई की जिम्मेदारी भी ग्राम पंचायत की है। ग्राम पंचायत ग्राम के किसी भी व्यक्ति को जो अपने घर या

जमीन और गलियों, पेशाबखानों, पाखानों आदि का ठीक दशा में नहीं रखता है, नोटिस दे सकती है और उसे उनकी सफाई करने के लिए बाध्य कर सकती है। पंचायत किसी सार्वजनिक कुएँ, तालाब या नाले आदि की सफाई करवा सकती है। गाँव के मार्गों को स्वच्छ रखने कार्य ग्राम पंचायत का ही है।

(3) शिकायत-सम्बन्धी कार्य—पंचायतों को इस बात का भी अधिकार है कि यदि कोई अमीन, लेखपाल, सिपाही या चौकीदार उचित कार्य नहीं कर रहा है, तो उसकी रिपोर्ट सम्बन्धित अधिकारियों का दे। अधिकारी उस पर कार्यवाही करके अपनी रिपोर्ट ग्राम पंचायत को देंगे।

(ब) ऐच्छिक कार्य—उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत कुछ अन्य कार्य भी करती है। इन कार्यों में मुख्य हैं—पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलना, चिकित्सालय एवं औषधालयों का प्रबन्ध, मेलों का प्रबन्ध, बाजारों का प्रबन्ध, पशुओं की चिकित्सा एवं नस्ल सुधार का प्रबन्ध, स्वास्थ्य की उन्नति के लिए खेल-कूद एवं अखाड़ों का प्रबन्ध, स्वयं-सेवक दलों का संगठन, रेडियो का प्रबन्ध एवं ग्राम निवासियों में प्रेम-भाव को बढ़ाना आदि।

(स) नवीन अधिकार—आजकल पंचायतों को कुछ और अधिकार दे दिए गए हैं। उन्हें आयुर्वेदिक औषधालयों के अतिरिक्त होम्योपैथिक अस्पताल खोलने का अधिकार भी दिया गया है। उन्हें चौकीदारों को नौकरी पर रखने और उनकी बदली की सिफारिश का भी अधिकार है। पंचायतें नगरपालिका तथा जिला परिषदों से कमीशन लेकर उनका टैक्स वसूल कर सकती हैं, कुर्क अमीन की नियुक्ति कर सकती हैं, ग्राम-कृषि-योजना बना सकती हैं, तथा उद्योग-धन्धों के विकास के हेतु सुझाव दे सकती हैं।

ग्राम पंचायतों की आय के स्रोत—ग्राम पंचायतों की आय के स्रोत हैं—(1) सरकारी सहायता, (2) मेलों तथा बाजारों से प्राप्त होने वाला धन, (3) कृषि, व्यापार एवं उद्योग धंधों पर लगाया गया कर, (4) नागरिकों से प्राप्त अनुदान, (5) ग्रामीणों पर लगाया गया कर, (6) निजी पाखानों या नाबदानों की सफाई की फीस, (7) प्रवेश-शुल्क एवं अर्थ-दण्ड।

पंचायत का अधिवेशन एवं कार्य-प्रणाली—ग्राम पंचायत अपने कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए अधिवेशन करती है। ग्राम सभा का अधिवेशन वर्ष में प्रायः दो बार ही होता है, परन्तु पंचायतों के अधिवेशन जल्दी-जल्दी हुआ करते हैं। उसकी कार्यवाही के लिए एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। अधि[illegible] की अध्यक्षता सभापति करता है। उसकी अनुपस्थिति में उप-सभापति अध्यक्ष[illegible]

है। इन अधिवेशनों में विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव पारित किये जाते हैं और जो प्रस्ताव बहुमत से पारित होते हैं, उन्हीं पर अमल किया जाता है।

(4) ग्राम पञ्चायतों का महत्व—ग्राम पंचायतों पर ही हमारे गांवों का भविष्य निर्भर करता है। ये ग्राम पंचायतें राज्य सरकार की बहुत अधिक सहायता कर सकती हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश की पंचायतों में कुछ ऐसे दोष आ गये हैं जिनके फलस्वरूप हम पंचायत व्यवस्था का पूर्ण लाभ नहीं उठा सके हैं। हमारे गांवों में आज भी मारपीट हत्याओं और कुनबापरस्ती का बोलबाला है। यदि ग्राम पंचायतों का सङ्गठन सुचारु रूप से किया जाय और पंचायतों में ऐसे व्यक्ति चुने जायें जो जनता के सच्चे सेवक हों तो निश्चय ही हम अपने गांवों में रामराज्य स्थापित कर सकते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्राम पंचायतें ही वह आधार हैं जिन पर गांवों की प्रगति निर्भर करती है।

न्याय पंचायत (Nyaya Panchayat)

संगठन—प्रायः 3 से 5 ग्राम सभाओं के क्षेत्र को मिलाकर एक न्याय पंचायत का संगठन होता है। सन् 1947 ई० के एक्ट के अनुसार पंचायती अदालत के सस्दय सीधे ग्राम सभाओं द्वारा चुने जाते थे। इस एक्ट का संशोधन सन् 1954 ई० में किया गया। इस संशोधन के अनुसार पंचायती अदालत का नाम बदलकर न्याय पंचायत कर दिया गया। न्याय पंचायत के सङ्गठन में आमूल परिवर्तन कर दिया गया। उसके चुनाव के हेतु नवीन तरीका अपनाया गया। ग्राम सभाओं द्वारा जो पंच चुने जाते थे वे पक्षपात से ऊपर नहीं उठ पाते थे। नवीन संशोधनों में इस बात का प्रयास किया गया कि निष्पक्ष, योग्य कर्मठ व्यक्ति ही पंच चुने जायें। पंचों के चुनाव की नवीन पद्धति के अनुसार ग्राम सभा, ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव करने में पाँच व्यक्ति और अधिक चुनती हैं। सरकार द्वारा निर्धारित अधिकारी ग्राम पंचायत के सदस्यों में से किन्हीं 6 को न्याय पंचायत का पंच नामजद कर देता है। इस प्रकार तीन-चार ग्राम सभाओं के नामजद पंच मिलकर अपने में से एक को सर-पंच और किसी दूसरे को सहायक सरपंच चुनते हैं।

सरपंच की कालावधि 5 वर्ष निश्चित की गई है। 5 वर्ष के बाद भी जब तक किसी दूसरे सरपंच या सहायक सरपंच का चुनाव नहीं हो जाता वह अपने पद पर बना रहता है। उसकी अनुपस्थिति में सहायक सरपंच उसका कार्य करता है। न्याय पंचायत के पंच या सरपंच ग्राम पंचायत के सदस्य नहीं रह सकते।

अधिकार—न्याय पंचायतों को दीवानी, फौजदारी और माल-सम्बन्धी तीनों प्रकार के मामलों पर निर्णय करने का अधिकार है। फौजदारी के मुकदमों में न्याय पंचायत 50 रु० तक की चोरी, मारपीट, गालीगलौज, बेगार, स्त्री लज्जा, अपहरण,

गाँव की सार्वजनिक इमारतों, जलाशयों, तालाबों, मार्गों आदि को नुकसान पहुँचाने की वारदातों आदि की सुनवाई करती है। फौजदारी के मुकदमों में न्याय पंचायत को 100 रु० तक का जुर्माना करने का अधिकार है। वह कैद की सजा नहीं दे सकती। वह पहली बार जुर्म करने वाले अभियुक्त को माफ भी कर सकती है। न्याय पंचायत यदि यह महसूस करती है कि किसी व्यक्ति से गाँव की शांति भङ्ग होने की आशङ्का है तो वह उस व्यक्ति से 100 रु० तक का जमानत मुचलका 15 दिन के लिए ले सकती है।

दीवानी मामलों में न्याय पंचायत 100 रु० तक की चल सम्पत्ति के मुकदमों का फैसला कर सकती है। परन्तु वह साझेदारी, वसीयत या गैरवसीयत जायदाद, सरकारी कर्मचारियों और नाबालिगों से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई नहीं कर सकती। यदि कोई न्याय पंचायत अच्छा कार्य करती है तो राज्य सरकार उसे 500 रु० तक की मालियत के मुकदमों का फैसला करने का अधिकार दे सकती है। पंचायतें अपने विरुद्ध मानहानि के मुकदमों को भी सुन सकती है और इस सम्बन्ध में अपराधों पर 5 रु० तक जुर्माना कर सकती है। माल के साधारण मुकदमों की सुनवाई भी न्याय पंचायत कर सकती है।

कार्य-प्रणाली—प्रत्येक मुकदमे में नालिश या जांच के लिए सरपंच द्वारा पाँच पंचों की एक बेंच की नियुक्ति की जाती है। इन पंचों में से कम से कम एक पंच अवश्य पढ़ा-लिखा होना चाहिये। पाँच पंचों में एक-एक पंच उन दोनों ग्राम सभाओं के क्षेत्र से अवश्य लिया जाता है जिनमें वादी और प्रतिवादी रहते हैं। मुकदमों का निर्णय पंचों की सहमति या उनके बहुमत से किया जाता है। यदि किसी पंच या सरपंच के सम्बन्धी, नौकर या मालिक से सम्बन्धित मुकदमे का फैसला होना है तो वह व्यक्ति उस मुकदमे में पंच या सरपंच नहीं बन सकता। पंचायतों के सम्मुख कोई वकील भी पेश नहीं किया जा सकता। पंचायतों के निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं हो सकती। केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में उनके फैसलों की निगरानी मुन्सिफ या क्षेत्रीय *मजिस्ट्रेट की अदालत में हो सकती है।*

न्याय पंचायतें अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। यदि कोई न्याय पंचायत उचित कार्य नहीं कर रही है तो राज्य सरकार उसे तोड़ भी सकती है। न्याय पंचायत के किसी पंच, सरपंच या सहायक सरपंच के बुरे आचरण का दोषी सिद्ध होने पर उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। इस समय उत्तर प्रदेश में न्याय पंचायतों की संख्या 8594 है और विश्वास है कि ये न्याय पंचायतें न्याय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देंगी।

अध्याय | 15

कुछ अन्य प्रमुख विषय
(SOME OTHER IMPORTANT TOPICS)

प्रश्न—निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—

(1) भारतीय संविधान के संशोधन की प्रक्रिया।

(2) भारत का महान्यायवादी।

(3) भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक।

(4) भारत में राज्यों का पुनर्गठन।

(5) भारत में निर्वाचन-आयोग।

(6) भारतीय संविधान में आपात् उपबन्ध।

(Write brief notes on the following—)

(1) The method of the amendment of the Indian Constitution.

(2) Attorney General of India.

(3) Comptroller and Auditor General of India.

(4) Re-organization of States in India.

(5) Election Commission in India.

(6) The emergency provisions of the Indian Constitution.

भारतीय संविधान के संशोधन की प्रक्रिया

(The Method of the Amendment of Indian Constitution)

भारतीय संविधान सङ्घात्मक भी है और एकात्मक भी। संविधान के संघात्मक होने के फलस्वरूप उसमें संशोधन के हेतु एक विशिष्ट प्रक्रिया को अपनाया जाता है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया के दृष्टिकोण से समस्त संविधान के विषयों को 3 कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) ऐसे विषय जिनमें संसद सामान्य विधि द्वारा संशोधन कर सकती है।

(2) वे विषय जिनमें संशोधन के लिए प्रत्येक सदन के विशिष्ट बहुमत की आवश्यकता होती है।

(3) वे विषय जिनमें संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों एवं राज्य के कुल विधानमण्डलों में से कम से कम आधे विधानमण्डलों की स्वीकृति आवश्यक होती है।

डा० अम्बेदकर ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये कहा था—

हम संविधान के अनुच्छेदों को तीन वर्गों में विभाजित करने का विचार रखते हैं। पहले वर्ग में वे अनुच्छेद होंगे जो संसद द्वारा साधारण बहुमत से संशोधित किये जा सकेंगे। उदाहरण के लिए वे उपबन्ध लीजिये जिनका संबंध राज्यों में विधान परिषदों की स्थापना व उन्मूलन से है। दूसरे वर्ग में वे अनुच्छेद होंगे जिनके संशोधन के लिए संसद में दो तिहाई मत की आवश्यकता होगी। मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक-तत्व इसी वर्ग के उदाहरण हैं। तीसरे वर्ग के अनुच्छेदों का संशोधन करने के लिए संसद के दो तिहाई बहुमत के साथ राज्यों की स्वीकृति भी आवश्यक होगी। इसमें संविधान के वे अनुच्छेद हैं। जिनका संशोधन यदि केवल संसद द्वारा हो तो संविधान द्वारा निश्चित शासन-पद्धति पर भारी प्रभाव पड़ेगा, राज्यों तथा संघ के मध्य शक्ति-वितरण सम्बन्धी उपबंध इस श्रेणी में आ सकते हैं।

(1) पहली कोटि के विषय—इस कोटि में वे विषय आते हैं जिनमें संसद अपने साधारण बहुमत के द्वारा ही संशोधन कर सकती है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 2, 3 और 4 के द्वारा संसद को संघ में राज्यों को प्रविष्ट करने, किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाना तथा घटाना और नये राज्यों को बनाने आदि का अधिकार है। संसद अपने साधारण बहुमत से किसी राज्य की सीमा को घटा या बढ़ा सकती है। अनुच्छेद 106 के अन्तर्गत संसद साधारण विधि की प्रक्रिया द्वारा किसी राज्य में विधान परिषद् का अन्त या उसकी योजना कर सकती है। साधारण बहुमत के द्वारा ही संसद अनुच्छेद 75, 97, 125, 148, 164 (5) और 221 (2) के अन्तर्गत राष्ट्रपति, राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, महालेखा परीक्षक, लोकसभा के अध्यक्ष उपाध्यक्ष, राज्यसभा के अध्यक्ष उपाध्यक्ष तथा कुछ अन्य पदाधिकारियों के वेतन और भत्तों में घटाव-बढ़ाव कर सकती है।

(2) दूसरी कोटि के विषय—इस कोटि के विषयों में संसद के साधारण बहुमत द्वारा ही संशोधन नहीं हो सकता है, वरन् उनमें संशोधन के हेतु यदि एक सदन अपने कुल सदस्यों के बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से संविधान

में संशोधन का प्रस्ताव पारित कर देता है और उसे दूसरे सदन में भेज देता है तथा दूसरा सदन भी उसे इसी प्रकार पारित कर देता है तभी संशोधन सम्भव है।

(3) तीसरी कोटि के विषय—राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित अनुच्छेद 54 और 55, सङ्घ की कार्यपालिका संबंधी शक्तियों से संबंधित अनुच्छेद 162, सङ्घीय क्षेत्रों के उच्च न्यायालयों से संबंधित अनुच्छेद 124, संसद में राज्य के प्रतिनिधित्व संबंधित अनुच्छेद और संवैधानिक संशोधन का प्रक्रिया से संबंधित अनुच्छेद 368 के विषय इस कोटि मे आते हैं। इस कोटि के विषय मे संशोधन के हेतु कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत के साथ ही कम से कम आधे राज्यों के अनुसमर्थन की भी आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबन्धित प्रक्रिया को तभी बदला जा सकेगा जबकि लोक सभा और राज्यसभा के कुल सदस्यों का बहुमत और उपस्थित सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत उसमें संशोधन करने के प्रस्ताव का पारित कर दे और उस पर कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों का अनुसमर्थन प्राप्त हो जाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान में संसद की प्रक्रिया अपने ढङ्ग की निराली है। संविधान में संशोधन की विधि सङ्घात्मक संविधानों जैसी प्रतीत होती है; परन्तु आपात-कालीन स्थिति में बिना संशोधन किये ही संविधान का स्वरूप एकात्मक हो जाता है। यही कारण है कि डॉ० एम० पी० शर्मा ने लिखा है, "संवैधानिक संशोधन की भारतीय प्रक्रिया एकात्मक (Unitary) और सङ्घीय राज्य (Federal States) की शासन-प्रक्रिया का सम्मिश्रण है।"

भारतीय संविधान के विभिन्न संशोधन—इस संबन्ध में अध्याय एक का प्रश्न देखें।

भारत का महान्यायवादी

(Attorney General of India)

भारतीय संविधान के अनुसार भारत के राष्ट्रपति को भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है। संविधान में लिखा है कि महान्यायवादी राष्ट्रपति के प्रसाद-काल तक ही अपने पद पर रहेगा और उसे वही वेतन प्राप्त होगा जो राष्ट्रपति उसके लिए निर्धारित करे। व्यावहारिक स्थिति यह है कि महान्यायवादी मंत्रि-परिषद् की सलाह से ही राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। महान्यायवादी में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की समस्त योग्यताएँ होनी चाहिये।

महान्यायवादी का कार्य सङ्घीय सरकार को विधि-संबन्धी विषयों में परामर्श देना है। वह राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त विधि-संबन्धी कर्त्तव्यों की पूर्ति करता है।

ब्रिटेन में महान्यायवादी मन्त्रि-परिषद् का सदस्य होता है परन्तु भारत महान्यायवादी मन्त्रि-परिषद् का सदस्य नहीं होता। हाँ, उसे संसद के दोनों सदनों के समक्ष अपने विचार प्रगट करने का अवश्य ही अधिकार होता है। यह आवश्यक नहीं है कि महान्यायवादी संसद का सदस्य हो। वह संसद का सदस्य न होते हुए भी संसद के समक्ष भाषण दे सकता है। संसद के अन्य सदस्यों के समान उसे भी विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। भारतीय संविधान में यह भी स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के हेतु भारत का महान्यायवादी देश के किसी भी न्यायालय में उपस्थित हो सकता है तथा वहाँ भी अपने विचार प्रगट करने का अधिकार प्राप्त है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महान्यायवादी प्रत्यक्ष रूप से भारत सरकार का सलाहकार होता है।

भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक
(Comptroller and Auditor General of India)

सरकारी कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त राजकीय आय-व्यय का हिसाब सही-सही रखा जाय और उसकी निष्पक्ष रूप से जाँच हो। यही कारण है कि भारत में सरकारी आय-व्यय की सही-सही जाँच के लिए एक अलग से जाँच विभाग (Audit Department) संगठित किया गया है। इसके प्रधान अधिकारी को नियन्त्रण एवं महालेखा परीक्षक के नाम से पुकारा जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 के अनुसार भारत का राष्ट्रपति ही महालेखा परीक्षक की नियुक्ति करता है। राष्ट्रपति जिसको इस पद पर नियुक्त करता है उसको अपना पद ग्रहण करने से पूर्व शपथ लेनी होती है। भारतीय संसद उसके वेतन एवं सेवा की शर्तों को निर्धारित करती है। परन्तु एक बार नियुक्ति हो जाने पर उसके वेतन, भत्ते एवं सेवा की शर्तों में इस प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे कि उसको कोई हानि हो। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को भारत की संचित निधि से वेतन दिया जाता है।

नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों का वर्णन संविधान के अनुच्छेद 149 और 150 में हुआ है। मुख्य रूप से उसके तीन काम हैं—(1) सरकारी व्यय के हिसाब किताब की जाँच करना और उसकी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देना (2) यह देखना कि सरकारी व्यय से सम्बद्ध वित्तीय नियमों एवं आदेशों का पालन किया गया है या नहीं, (3) यह देखना कि व्यय की स्वीकृति जिस अधिकारी द्वारा की गई है वह ऐसा करने में सक्षम है अथवा नहीं। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की आज्ञा के बिना भारत की संचित निधि से कोई भी राशि निकाली नहीं जा सकती। महान्यायवादी

परीक्षक सार्वजनिक समिति का ध्यान फिजूलखर्च और अपव्यय की ओर भी दिलाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महालेखा परीक्षक वित्त पर इस प्रकार से नियंत्रण रखता है कि सभी व्यय उचित रूप में किये जाएँ। महालेखा परीक्षक निर्भय होकर काम करता है क्योंकि उसको उसके पद से हटाने के लिए उसी प्रकार की प्रक्रिया को अपनाया जाता है जिस प्रकार की प्रक्रिया को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए अपनाना होता है। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के विषय में एम० वी० पायली ने लिखा है—

"कर-दाता के हितों की सुरक्षा की दृष्टि से नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक का कार्य अत्यन्त महत्व का है। लेखा परीक्षा विभाग राष्ट्रीय वित्त का पहरेदार है। नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक सरकार को वित्तीय गतिविधियों का संसद की ओर से सर्वोच्च सर्वेक्षक है। नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के कार्य-क्षेत्र का विस्तार कर उसे सुदृढ़ बनाने से संविधान में अङ्कित लोकतंत्रीय आदर्शों की पूर्ति और भी उत्तम रूप से होगी; क्योंकि भारत जैसे देश में लोक-व्यय (Public expenditure) बढ़ता ही जा रहा है। स्पष्ट है कि नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के कार्य-क्षेत्र में विस्तार करने की पर्याप्त आवश्यकता है।"

भारत में राज्यों का पुनर्गठन
(Re-organisation of States in India)

भारत अनेक राज्यों का एक सङ्घ है। किसी भी राज्य को सङ्घ से अलग होने का अधिकार नहीं है। भारतीय सङ्घ के संविधान के लागू होने के समय भारत के राज्यों को 4 कोटियों में विभाजित किया गया था। प्रथम कोटि में ब्रिटिश काल के वे प्रांत रखे गये थे जिनमें शासन का अध्यक्ष गवर्नर होता था और जिनमें राज्य का प्रमुख गवर्नर ही रहा। इस प्रकार के राज्यों में उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, पश्चिमी बङ्गाल, असम, उड़ीसा, मद्रास, बम्बई और मध्य प्रांत थे।

दूसरी कोटि में पुरानी बड़ी रियासतें, और रियासतों के सङ्घों को रखा गया था। हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर, मध्य-भारत, मैसूर, पटियाला एवं पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ, राजस्थान, सौराष्ट्र और ट्रावनकोर, कोचीन इस कोटि में रखे गये।

तीसरी कोटि में कुछ पुराने चीफ कमिश्नरों के प्रान्त और कुछ देशी रियासतें एवं कुछ संघों को लिया गया। उनका प्रमुख चीफ कमिश्नर अथवा लेफ्टीनेन्ट जनरल कहलाता था। अजमेर, बिलासपुर (जिसको आगे चलकर हिमाचल प्रदेश में मिला दिया गया) भोपाल, कच्छ, त्रिपुरा, कुर्ग, हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, मनिपुर

आदि इस कोटि में आते थे। अन्डमान और निकोबार द्वीप समूह को चतुर्थ कोटि में रखा गया। भारतीय संसद को किसी नये राज्य की रचना करने, किन्हीं राज्यों को आपस में मिलाने अथवा उनके क्षेत्र को घटाने-बढ़ाने अथवा किसी राज्य के नाम को बदल सकने का अधिकार दिया गया है।

संविधान के लागू होने के बाद अनेक राज्यों ने राज्यों के पुनर्गठन के हेतु आवाज उठाई। सन् 1953 ई० में आन्ध्रवासियों ने आन्दोलन किया और फलस्वरूप आन्ध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। इसी प्रकार केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पंजाबी सूबे की भी माँग की गई। फलस्वरूप भारत सरकार ने एक राज्य-पुनर्गठन आयोग (States' Re-organisation Commission) की नियुक्ति की और उसस राज्यों के पुनर्गठन के विषय में सुझाव देने को कहा। आयोग ने यह सिफारिश की कि राज्यों का गठन भाषा के आधार पर किया जाये परन्तु इसके साथ ही प्रशासनिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी बातों का ध्यान रखा जाये। उसने एक भाषा और एक राज्य का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया। केन्द्र और राज्य की सरकारों ने आयोग की रिपोर्ट पर विधिवत् विचार किया। आयोग की सिफारिश के आधार पर 16 मार्च, 1956 को भारत के गृह मन्त्री ने संसद के दोनों सदनों में राज्य पुनर्गठन विधेयक को रखा। तत्पश्चात् 11 जनवरी, 1956 को राज्यों का पुनर्गठन हुआ। इस पुनर्गठन के फलस्वरूप राज्यों की चार कोटियाँ अ, ब, स, द को समाप्त कर दिया गया और केवल दो ही प्रकार के राज्य रहे। भारतीय संघ में 14 राज्य और 6 संघीय क्षेत्र (Union Territories) रखे गये। सन् 1960 ई० में बम्बई, और गुजरात दो राज्यों में विभाजित कर दिये गये। सन् 1961 ई० में नागालैंड का पृथक राज्य बना और सन् 1966 ई० में पंजाब का विभाजन हरियाना और पंजाब दो राज्यों में कर दिया गया। इस प्रकार इस समय भारतीय संघ में 17 राज्य आन्ध्र प्रदेश, बिहार, असम, महाराष्ट्र, गुजरात, जम्मू कश्मीर, केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, हरियाना, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, और नागालैण्ड हैं। इसके साथ ही दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मनिपुर, त्रिपुरा, गोआ-डामन-ड्यू, पांडिचेरी, अन्डमन-निकोबार, लकादीव-मिनिकोय और चंडीगढ़ संघीय क्षेत्र हैं।

भारत में निर्वाचन-आयोग
(Election Commission in India)

भारत एक प्रजातन्त्रात्मक देश है। यहाँ प्रत्यक्ष मतदान द्वारा व्यवस्थापिका का संगठन किया जाता है। आम चुनाव के निष्पक्षतापूर्वक सम्पादन के हेतु एक चुनाव आयोग की स्थापना संविधान के अनुच्छेद 324 के अनुसार की गई है। इस चुनाव-आयोग पर कार्यपालिका अथवा न्यायपालिका किसी का भी नियन्त्रण नहीं होता है

और यह आयोग निष्पक्षतापूर्वक अपने कार्य को सम्पन्न करता है। चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त (Chief Election Commissioner) होता है। इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसको सहायता पहुँचाने के लिए राष्ट्रपति अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति भी करता है। चुनाव आयुक्तों की संख्या कितनी हो यह निर्धारित करना राष्ट्रपति का ही कार्य है। मुख्य चुनाव आयुक्त को पदच्युत करने के लिए उस प्रणाली को अपनाना होता है जिस प्रणाली को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को पदच्युत करने के लिए अपनाना होता है। चुनाव आयोग के अन्य सदस्यों को राष्ट्रपति तभी पदच्युत करता है जब मुख्य चुनाव आयुक्त उससे इस प्रकार की सिफारिश करता है। चुनाव-आयोग मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है :—

(1) भारत के राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव कराना,

(2) लोकसभा और विधान मण्डलों के मतदाताओं की सूची तैयार करवाना और उनका निरीक्षण करना।

(3) लोकसभा, राज्यसभाओं और विधानमण्डलों के निर्वाचन की व्यवस्था, नियंत्रण एवं निरीक्षण करना।

(4) चुनाव के सम्बन्ध में जो वाद-विवाद अथवा संदेह उत्पन्न हों उनके निर्णय के हेतु चुनाव न्यायालयों (Election Tribunals) की नियुक्ति करना।

चुनाव आयुक्त को अपने कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादन के हेतु बहुत से अन्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। आयोग के आवेदन पर इन कर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों द्वारा की जाती है। भारत में अब तक चुनाव-आयोग ने 4 आमचुनावों को सफलतापूर्वक सम्पादित करवाया है। इन आमचुनावों के सम्पादन में आयोग के सदस्यों ने जिस कर्मठता का परिचय दिया है उसके फलस्वरूप आयोग का महत्व भारतीय जनता के मध्य बहुत अधिक बढ़ गया है।

भारतीय संविधान में आपात उपबन्ध

(The Emergeney Provisions in Indian Constitution)

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 352 से 360 तक आपात-कालीन स्थिति का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 352, 354, 356, 358, 359 और 360 मुख्य रूप में आपात-कालीन स्थिति से सम्बन्धित हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 352 (1) में यह व्यवस्था की गई है कि यदि भारत के राष्ट्रपति को इस बात का विश्वास हो जाता है कि ऐसा गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे युद्ध या बाह्य आक्रमण या आंतरिक अशांति से भारत अथवा उसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा खतरे में

घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के लिए भी अन्य दो प्रकार की घोषणाओं की तरह संसद का अनुमोदन होना आवश्यक है।

वित्तीय आपात-काल में राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह राजस्व वितरण एवं केन्द्र प्रांतों के बीच वित्त-सम्बन्धी विषयों की संवैधानिक व्यवस्था में संशोधन कर दे। इस स्थिति में वह राज-कर्मचारियों के वेतन एवं भत्तों में कमी की आज्ञा भी दे सकता है। यहाँ तक कि वह उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में भी कमी कर सकता है। राष्ट्रपति राज्य के विधान-मण्डल द्वारा पारित धन विधेयकों को रोकने का अधिकार भी रखता है।

आपातकालीन उपबन्धों की विभिन्न विद्वानों ने बड़ी तीखी आलोचना की है। के० टी० शाह, प्रो० एच० वी० कामथ आदि जैसे विद्वान इन आपात-कालीन उपबंधों के प्रबल विरोधी रहे हैं। इन वित्तीय उपबंधों के विषय में के० टी० शाह ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था, "इस प्रतिक्रियात्मक एवं पश्चात्गामी अध्याय के अन्त में पहुँचकर मुझे इस अध्याय के समस्त उपबंधों की तह में दो विचारधाराएं दिखाई पड़ रही हैं जिन्होंने इस पर पर्याप्त प्रभाव डाला है—(1) केन्द्र के हाथों में एक को दूसरे के विरुद्ध विशेष सत्ता प्रदान करना तथा (2) जनता के विरुद्ध सरकार को शक्तिशाली बनाना। इस अध्याय के उपबंधों का भली-भांति अध्ययन करने के बाद तथा इसके प्रत्येक अनुच्छेद में दी गई सत्ता की समीक्षा करने के बाद मुझे ऐसा लगता है कि लोकतंत्र तथा स्वतंत्रता का केवल नाम ही बाकी बचेगा।"

प्रो० एच० वी० कामथ ने आपात-सम्बन्धी उपबंधों के अध्याय के सम्बन्ध में यह मत व्यक्त किया था, "पिछली शताब्दियों में जिन आदर्शों एवं सिद्धान्तों को हम लोगों ने मान्यता प्रदान की थी उन सबका हनन कर इस एक अध्याय के द्वारा मेरे विचार में हम एक तानाशाही पुलिस-राज्य की आधारशिला रख रहे हैं, यह एक ऐसा राज्य होगा जिसमें कोटि-कोटि निर्दोष स्त्री व पुरुषों के अधिकार हर समय खतरे में होंगे, यदि यहाँ शांति होगी तो श्मशान घाट की सी शांति, जिसमें मरुस्थल की सी शून्यता होगी।"

हृदयनाथ कुन्जरू भी वित्त आपात-सम्बन्धी उपबंधों के विरोधी थे। उन्होंने कहा था "राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता को वित्तीय आपात-सम्बन्धी उपबंधों से बड़ा धक्का पहुँचेगा।"

आज भी अनेक विद्वान इन आपात उपबंधों की तीखी आलोचना करते हैं। उनका मत है कि इनके फलस्वरूप केन्द्र अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है और राज्यों की शक्ति समाप्त हो जाती है। साथ ही आपात-कालीन स्थिति में राष्ट्रपति तानाशाह

बन सकता है। आपात-कालीन स्थिति में मौलिक अधिकारों के निलम्बन के भी अनेक विद्वान घोर विरोधी हैं।

यह ठीक है कि इन उपबधो के फलस्वरूप नागरिकों के मौलिक अधिकार निलम्बित हो जाते हैं, राज्यों की सत्ता को बहुत बड़ा धक्का लगता है और केन्द्र सरकार अत्यधिक शक्तिशाली हो जाती है। कुछ हद तक यह कहना ठीक है कि आपात-कालीन स्थिति में राष्ट्रपति की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह स्वेच्छाचारी बन सकता है। परन्तु यदि हम किंचित गहनता से विचार करें तो आपात-कालीन उपबंध भारत जैसे नवजात प्रजातन्त्र के लिए, जहाँ की बहुतांश जनता अशिक्षित है और राजनीतिक चेतना बहुत कम है, वरदान ही सिद्ध हुए हैं। चीनी आक्रमण के समय यदि आपातकालीन स्थिति की घोषणा करके नागरिकों के मौलिक अधिकारों का निलम्बन न कर दिया गया होता तो कदाचित् देश-विरोधी तत्व अत्यन्त सक्रिय हो गये होते। चतुर्थ आमचुनाव के पश्चात् आपात-कालीन उपबंधो का उपभोग करके यदि राष्ट्रपति हरियाना, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल का शासन अपने हाथ में लेकर वहाँ पुनः निर्वाचन का आदेश न देता तो वहाँ के "आया राम और गया राम" भारतीय लोकतन्त्र की जड़ें हिलाकर रख देते।

अध्याय | 16

भारतीय संविधान की अन्य देशों के संविधानों से तुलना

COMPARISON OF THE INDIAN CONSTITUTION WITH THE CONSTITUTION OF OTHER COUNTRIES

ब्रिटिश, अमेरिकन, फ्रेंच, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विटजरलैण्ड के संविधानों की तुलना

(Comparision with the British, American, French, Canadian, Australia and Swiss Constitutions.)

प्रश्नः—'भारत का संविधान विभिन्न देशों के संविधानों की अच्छी बातों का सम्मिश्रण है, इस कथन की विवेचना कीजिए और इस संविधान और उसकी व्यवस्था की अन्य देशों के संविधानों की व्यवस्था से तुलना कीजिए।

The Indian Constitution is the mixture of the good features of the constitutions of the different countries ? Discuss this statement and compare the Indian Constitution and its system with the constitutions and systems of the other countries.

भारत का संविधान एक अनोखा संविधान है। इस संविधान में विभिन्न देशों के संविधानों की अच्छी बातों को ग्रहण करने का प्रयास किया गया है। संविधान निर्माताओं ने संसदात्मक व्यवस्था को यदि ब्रिटिश संविधान की भांति अपनाया है तो न्यायपालिका की स्थिति को अमेरिका के संविधान की भांति अपनाया है। जहाँ एक ओर यहाँ यह संविधान अमेरिका और स्विटजरलैण्ड की भांति संघात्मक संविधान है, वहीं दूसरी ओर उसमें ब्रिटेन, और सोवियत संघ की सी एकात्मकता के भी दर्शन होते हैं। इसी के फलस्वरूप भारतीय संविधान को विभिन्न संविधानों की खिचड़ी कहा जाता है। यहाँ हम संविधान के विभिन्न व्यवस्थाओं की तुलना अन्य देशों के संविधानों से करेंगे।

संविधान के स्वरूप की तुलना

भारत का संविधान एक लिखित, निर्मित संविधान है। यह संसार का सबसे बड़ा संविधान है। जहाँ एक ओर यह संविधान अत्यन्त कठोर है वहीं दूसरी ओर परिवर्तनशील भी है। संविधान द्वारा संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है परन्तु साथ ही यहाँ एकात्मकता के भी दर्शन होते हैं। संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों का उल्लेख है जिनका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। जब हम भारतीय संविधान की संसार के अन्य देशों के संविधानों से तुलना करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि इंगलैण्ड का संविधान एक अलिखित और विकसित संविधान है। वह एक पूर्णतया लचीला और परिवर्तनशील संविधान है। इंगलैण्ड में एकात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है और यद्यपि संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों का उल्लेख नहीं है परन्तु वहाँ के नागरिक अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं।

जहाँ तक अमेरिका के संविधान का प्रश्न है, यह एक निर्मित, और कठोर संविधान है। संविधान द्वारा वहाँ संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। संविधान में संशोधन का उल्लंघन अत्यन्त जटिल है और संविधान में नागरिकों के मूलाधिकारों की व्यवस्था की गई है। सोवियत संघ का संविधान भी एक लिखित और निर्मित संविधान है। वहाँ भी संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। यह एक परिवर्तनशील संविधान है और फ्रान्स के पंचम गणतन्त्र का संविधान एक लिखित और निर्मित एवं संक्षिप्त संविधान है। यह एक कठोर संविधान है और इसमें सुगमता से परिवर्तन नहीं किया जा सकता। संविधान द्वारा एकात्मक और केन्द्रीयकृत पद्धति को अपनाया गया है। कनाडा का संविधान भी बहुभाग में लिखित है। यह भी एक संघात्मक और परिवर्तनशील और कठोर संविधान है।

आस्ट्रेलिया का संविधान एक लिखित और संक्षिप्त संविधान है। यह संविधान ब्रिटिश संविधान पर आधारित है। परन्तु उससे काफी मात्रा में भिन्न है। यह एक संघात्मक संविधान है परन्तु शक्ति-विभाजन के सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रखा गया है कि केन्द्रीय सरकार अत्यधिक शक्तिशाली रहे। संविधान में संशोधन की प्रणाली जटिल है अतएव यह एक कठोर संविधान है। स्विटजरलैण्ड तो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र का घर है। वहाँ का संविधान एक लिखित, जटिल एवं कठोर संविधान है। यह संविधान अत्यन्त विस्तृत है और इसके द्वारा संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। लिखित संविधानों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लेख होता है परन्तु स्विटजरलैण्ड के संविधान में मौलिक अधिकारों का कोई भी उल्लेख नहीं हुआ है।

कार्यपालिका की तुलना

जहाँ तक कार्यपालिका की व्यवस्था का प्रश्न है, भारतीय संविधान ने केन्द्र

की सी व्यवस्था को अपनाया गया है परन्तु उसमें कुछ अन्तर के भी दर्शन होते हैं। यहाँ सिद्धान्त रूप में समस्त कार्यपालिकीय शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होती है परन्तु इन शक्तियां का उपभोग केन्द्रीय मंत्रिपरिषद ही करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्य करने का अधिकार मंत्रिगणों को प्राप्त होता है। ब्रिटेन में भी कार्यपालिका की यही स्थिति है। वहां सभी कार्य राजा के नाम से किये जाते हैं परन्तु राजा स्वयं कुछ नहीं करता। दोनों देशों में मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था को अपनाया गया है और भारत का राष्ट्रपति एवं ब्रिटेन का सम्राट नाम मात्र के कार्यपालिकीय अध्यक्ष हैं परन्तु फिर भी भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। अवसर पड़ने पर वह वास्तविक रूप में अपने कार्यपालिकीय कार्यों को सम्पन्न कर सकता है, अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। अमेरिका में भारत से भिन्न कार्यपालिकी का स्वरूप अध्यक्षात्मक है। वहां का राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालिका का अध्यक्ष है और वही समस्त कार्यों को सम्पन्न करता है। उसके मंत्री उसके इशारो के चारों ओर नाचते हैं। सोवियत संघ में मंत्रिमण्डलात्मक प्रणाली को अपनाने का दावा किया गया है। परन्तु वास्तविक स्थिति पूर्णतया भिन्न है। वहाँ का मन्त्रिमण्डल भारतीय मन्त्रिमण्डल की भाँति शक्तिशाली नहीं है। वहाँ मन्त्रिमण्डल प्रशासन का सर्वोच्च अंग नहीं है, कानूनी तौर पर नहीं परन्तु व्यावहारिक रूप में साम्यवादी दल का प्रेसीडियम मंत्रिमण्डलकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है।

आंग और जिक ने लिखा है, "औपचारिक रूप से अतिरिक्त मन्त्रिमण्डल सर्वोच्च कार्यपालिकीय शक्ति नहीं है चूंकि पोलिटिकल ब्यूरो उसके लिए कोई ऐसा कार्य नहीं छोड़ती।" आस्ट्रेलिया के संविधान में भी भारत की सी व्यवस्था को अपनाया गया है। आस्ट्रेलिया में औपचारिक कार्यकारिणी की शक्ति इंगलैण्ड के राजा या रानी में निहित होती है और इस शक्ति का उपभोग उसके प्रतिनिधि के रूप में आस्ट्रेलिया का गवर्नर जनरल करता है। परन्तु व्यवहार में कार्यकारिणी की समस्त शक्तियां आस्ट्रेलिया के मन्त्रिपरिषद में निहित हैं। वहाँ संसदात्मक और उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी है एवं मन्त्रिपरिषद की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ है।

फ्रान्स की व्यवस्था भारत से पूर्णतया भिन्न है। वहाँ के पंचम गणतन्त्र में राष्ट्रपति ही कार्यपालिका का अध्यक्ष है और वह अपनी शक्तियों का वास्तविक उपभोग करता है। चतुर्थ गणतन्त्र के संविधान में मन्त्रिमण्डलात्मक व्यवस्था को अपनाया गया था परन्तु पंचम गणतन्त्र के संविधान में अध्यक्षात्मक कार्यपालिका को मान्यता प्रदान की गई है और शक्तियों का वास्तविक स्रोत राष्ट्रपति ही है। कनाडा में भी मन्त्रिपरिषदात्मक कार्यपालिका के दर्शन होते हैं। इंगलैण्ड के शासन की भाँति कनाडा

का शासन भी क्रमउन से आरम्भ होता है और गवर्नर जनरल उसके प्रतिनिधि के रूप में वहाँ शासन करता है। परन्तु जहाँ तक वास्तविक कार्यपालिकीय शक्ति का प्रश्न है, कनाडा का मन्त्रिपरिषद अत्यधिक शक्तिशाली है। वह व्यवस्थापिका का पथप्रदर्शन भी करता है और उसकी स्थिति भारतीय मन्त्रिपरिषद से किन्हीं भी मानों में कम महत्व की नहीं है।

स्विटजरलैण्ड में बहुल कार्यपालिका के दर्शन होते हैं। यहाँ भी शासन की वास्तविक बागडोर मन्त्रिपरिषद में ही निहित होती है। स्विटजरलैण्ड की कार्यपालिका बहुत हद तक एक स्थायी कार्यपालिका है। यहाँ सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव है। कार्यपालिका को अत्यन्त विस्तृत अधिकार प्राप्त हैं। वह विधायन सम्बन्धी और न्याय सम्बन्धी अधिकारों का भी उपभोग करता है। कुछ हद तक स्विटजरलैण्ड की मन्त्रिपरिषद संघीय परिषद है और भारत की मन्त्रिपरिषद की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है।

व्यवस्थापिका की तुलना

भारत में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है और केन्द्रीय व्यवस्था के साथ ही राज्यों की अपनी अलग व्यवस्थापिकाएँ हैं। केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन संविधान के द्वारा किया गया है। संघात्मक व्यवस्थापिका के 2 सदन हैं, (1) एक सदन राज्य सभा और (2) लोक-सभा कहलाता है। राज्य-सभा में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कि राज्य की व्यवस्थापिकाओं द्वारा चुने जाते हैं। लोकसभा एक प्रतिनिधि सदन है जिसका संगठन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। भारत की संसद काफी शक्तिशाली है और वह मन्त्रिपरिषद पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखती है। यदि लोकसभा मन्त्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करती है तो मन्त्रिपरिषद को त्याग-पत्र देना होता है। इंगलैण्ड में भारत की सी ही व्यवस्थापिका के दर्शन होते हैं।

वास्तव में भारत ने इंगलैण्ड से ही संसदात्मक व्यवस्था को ग्रहण किया है। इंगलैण्ड में पालियामेन्ट के दो सदन होते हैं—(1) लार्ड्स सभा और (2) कामन्स सभा। कामन्स सभा ही पालियामेण्ट के वास्तविक अधिकारों का उपभोग करती है। इंगलैण्ड की पालियामेण्ट संसार के सभी देशों की पालियामेण्टों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और यह कहा जाता है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के अतिरिक्त सभी कुछ कर सकती है।

भारत में इंगलैण्ड की सी संसदात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है परन्तु भारत की संसद उतने विस्तृत अधिकारों का उपभोग नहीं करती जितने विस्तृत अधिकारों का उपभोग इंगलैण्ड की पालियामेण्ट करती है अमेरिका में अध्यक्षात्मक व्यवस्था

के दर्शन होते हैं। वहाँ की व्यवस्था- पिका को कांग्रेस के नाम से पुकारा जाता है जिसके दो सदन होते हैं—उच्च सदन को सीनेट और निम्न सदन को प्रतिनिधि सभा कहा जाता है। व्यवस्थापिका को कानून बनाने के पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं परन्तु राष्ट्रपति की शक्तियाँ इतनी अधिक हैं कि उनके सम्मुख व्यवस्थापिका का महत्व बहुत कम हो जाता है। अमेरिका में भारत से भिन्न एक अन्य व्यवस्था के भी दर्शन होते हैं। जहाँ भारत में उच्च सदन की अपेक्षा निम्न सदन को अत्यधिक अधिकार प्राप्त हैं, अमेरिका में सीनेट और प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ लगभग बराबर सी हैं और कहीं-कहीं पर तो सीनेट अधिक शक्तिशाली प्रतीत होती है।

रूस की संघीय व्यवस्थापिका को सर्वोच्च सोवियत के नाम से पुकारा जाता है। और वह समस्त व्यवस्थापिकीय कार्यों को सम्पन्न करती है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि वहाँ की सर्वोच्च सोवियत की प्रेसीडियम अधिक शक्तिशाली है और साम्यवादी दल की प्रेसीडियम जो भी कानून चाहती है पारित करवा लेती है। इस प्रकार वहाँ व्यवस्थापिका भी साम्यवादी दल के हाथ की कठपुतली सी बनकर रह गयी है। यह व्यवस्था भारत से पूर्णतया भिन्न है क्योंकि भारत में किसी दल विशेष का व्यवस्थापिका पर नियन्त्रण नहीं है। जो भी दल बहुमत में होता है वही शासन का कार्य चलाता है।

फ्रान्स के पंचम गणतन्त्र के संविधान में द्विसदनात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। प्रथम सदन को 'नेशनल एसेम्बली' और दूसरे सदन को 'सीनेट' कहा जाता है। विधायी क्षेत्र में सीनेट की शक्तियाँ नेशनल एसम्बली से कम हैं। फ्रान्स में व्यवस्थापिका काफी शक्तिशाली है परन्तु फिर भी अध्यक्षात्मक व्यवस्था होने के कारण वहाँ की व्यवस्थापिका को वह गौरव नहीं है जो कि भारत की संसद को प्राप्त है। वास्तव में मन्त्रिपरिषदात्मक व्यवस्था में व्यवस्थापिका का जो स्थान होता है, वह अध्यक्षात्मक व्यवस्थापिक में नहीं रहने पाता और इस कारण भारत की व्यवस्थापिका फ्रान्स की व्यवस्थापिका की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिशाली है।

आस्ट्रेलिया में भी 2 सदनात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। जहाँ तक अधिकारों का सम्बन्ध है; आस्ट्रेलिया की व्यवस्थापिका भारत की व्यवस्थापिका को तुल्य अधिकारों का ही उपभोग करती है। यहाँ की प्रतिनिधि सभा विधि-निर्माण, वित्त आदि सभी क्षेत्रों में सीनेट की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। यही स्थिति भारत में भी है। कनाडा की व्यवस्थापिका भी द्विसदनात्मक है। उच्च सदन को सीनेट और निम्न सदन को कामन्स सभा कहा जाता है।

कामन्स सभा को सीनेट की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। जहाँ तक संघीय

व्यवस्थापिका के महत्व का प्रश्न है कनाडा में व्यवस्थापिका का महत्व बहुत अधिक रखा गया है। मन्त्रिपरिषद पर वहाँ की कामन्स सभा का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। कनाडा की व्यवस्था विधि निर्माण के क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है।

स्विटजरलैण्ड में भी दो सदनात्मक व्यवस्थापिका है। एक सदन को राष्ट्रीय परिषद (नेशनल काउन्सिल) और दूसरे को राज्य परिषद (काउन्सिल आफ स्टेट) कहा जाता है। दोनों सदनों के बराबर अधिकार हैं। जहाँ तक महत्व का प्रश्न है, स्विटजरलैण्ड की व्यवस्थापिका का वह महत्व नहीं है जो भारत में व्यवस्थापिका का है। स्विटजरलैण्ड में संघीय परिषद का महत्व व्यवस्थापिका (कार्यपालिका) की अपेक्षा अधिक है परन्तु भारत में व्यवस्थापिका (संसद) का महत्व कार्यपालिका (मन्त्रिपरिषद) की अपेक्षा अधिक है।

न्यायपालिकीय तुलना

भारत में कुछ हद तक शक्ति प्रथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है और एक स्वतन्त्र न्यायपालिका का संगठन किया गया है। न्यायपालिका का संगठन एक पिरामिडाकार रूप में हुआ है। सबसे ऊपर संघीय सर्वोच्च न्यायालय है। उसके आधीन राज्यों के उच्च न्यायालय हैं। वहाँ की न्यायपालिका, कार्यपालिका के नियन्त्रण से पूर्ण तथा मुक्त रही है। यह ठीक है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, परन्तु न्यायपालिका कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त है। अनेक अवसरों पर यहाँ की सर्वोच्च न्यायालय ने मन्त्रिपरिषद और संसद के लिए या के विरुद्ध अपने निर्णय दिए हैं। न्यायपालिका को व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी भी कानून को संविधान विरोधी कहकर उसे अवैध घोषित करने का अधिकार है।

इगलैण्ड में न्यायपालिका की स्थिति व्यवस्थापिका से स्वतन्त्र नहीं है। यह ठीक है कि वहाँ के न्यायाधीश अत्यन्त ईमानदार और कर्मठ रहे हैं परन्तु न्यायपालिका को पार्लियामेण्ट द्वारा पारित किसी भी कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इगलैण्ड में शक्तियों के प्रथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता न देकर उनके केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है। वहाँ की पार्लियामेण्ट अधिक शक्तिशाली है। वह जो भी कानून चाहती है, बना देती है, उस पर किसी भी प्रकार का न्यायपालिका का कोई भी नियन्त्रण नहीं है। कदाचित यदि कल इगलैण्ड की पार्लियामेण्ट यह कानून पारित कर दे कि सम्राट पद समाप्त किया गया और न्यायपालिका का रूप पूरी तरह बदल दिया गया तो वह भी मान्य हो जायगा। इस प्रकार ब्रिटेन की न्यायपालिका भारत की न्यायपालिका से भिन्न है। भारत की न्यायपालिका को किसी भी कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार है जो कि इगलैण्ड की न्यायपालिका को नहीं है।

अमेरिका में शक्तियों के प्रथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है और न्यायपालिका की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ रखी गई है। वास्तव में अमेरिका की न्याय-पालिका सबसे अधिक शक्तिशाली न्यायपालिका है। भारत की भांति वहां की न्याय-पालिका भी व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी कानून को संविधान विरोधी घोषित कर सकती है जहां तक सोवियत संघ की न्यायपालिका का प्रश्न है सोवियत संघ की न्यायपालिका वहां की प्रेसीडियम के हाथ की कठपुतली बनकर रह गई है। वहां की न्यायपालिका कार्यपालिका के अधीन है। वास्तव में न्यायपालिका का कार्य जनता से कानूनों का उचित रूप से पालन करवाना ही है। फ्रान्स में न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र नहीं है और उसके ऊपर कार्यपालिका का पर्याप्त नियंत्रण रहा है। न्यायाधीशों की नियुक्ति, आदि कार्यपालिका पर भी निर्भर करती है। वहां 2 प्रकार के न्यायालयों और कानूनों की व्यवस्था है। प्रशासकीय न्यायालय और कानून साधारण न्यायालयों और कानूनों से भिन्न हैं। इस प्रकार सोवियत रूस और फ्रांस की न्यायपालिका की स्थिति भारतीय न्यायपालिका से पूर्णतया भिन्न है।

आस्ट्रेलिया की न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है। वह विधि-निर्माण में भी सहायक होती है। व्यवहार में वहां का उच्च न्यायालय एक प्रकार की सरकार है। यदि वह किसी संघीय कानून या अधिकारी के विरुद्ध कोई निर्णय देती है तो वह मान्य होती है। कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया का संविधान एक ढांचा मात्र है और उस ढांचे में जीवन डालने का कार्य वहां की उच्चतम न्यायालय का है। कनाडा की न्याय-पालिका आस्ट्रेलिया और भारत की न्यायपालिकाओं की अपेक्षा कम महत्व रखती है। यद्यपि कनाडा की न्यायपालिका पर्याप्त रूप से स्वतंत्र और निष्पक्ष है परन्तु उसको वह गौरव प्राप्त नहीं है जो भारत की न्यायपालिका को है। भारत में प्रान्तों की सरकारों को न्यायपालिका के संगठन आदि में अधिकार नहीं है और यह कार्य संघीय संसद का ही है परन्तु कनाडा में प्रान्त स्तर के न्यायालयों के सम्बन्ध में प्रान्त की सरकार को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं और इस कारण हम कह सकते हैं कि भारत की न्यायपालिका कनाडा, की न्यायपालिका की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है।

स्विटजरलैण्ड की न्यायपालिका की स्थिति भी भारतीय न्यायपालिका से निम्न-कोटि की है। वहां सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनिरीक्षण का अधिकार प्राप्त नहीं है व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी भी कानून को वह अवैध घोषित नहीं कर सकती। स्विटजरलैण्ड में शक्तियों के प्रथक्करण के सिद्धान्त को उचित मान्यता न मिलने के कारण न्यायपालिका की स्थिति सुदृढ़ नहीं है। वहां की संघीय न्यायालय ने उस स्व-तंत्रता का अनुभव नहीं किया है जिस स्वतंत्रता का अनुभव अमेरिकी और भारत के संघीय न्यायालय करते हैं।

संघ और राज्यों के मध्य सम्बन्धों की तुलना

भारत में संघीय व्यवस्था को अपनाया गया है और संघ एवं राज्यों के कार्यों का उल्लेख संविधान में ही कर दिया गया है। संविधान में 3 सूचियाँ हैं। प्रथम सूची के कार्य केन्द्रीय सरकार के हैं। दूसरी सूची के कार्य प्रान्तीय सरकार के हैं और तीसरी एक समवर्ती सूची है जिसके कार्यों को करने का अधिकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का है परन्तु यदि उक्त विषयों में केन्द्रीय सरकार कोई कानून बना देती है तो उसके सम्मुख प्रान्तीय सरकार द्वारा बनाया गया कानून लागू नहीं किया जा सकता।

इंगलैण्ड में संघात्मक शासन के स्थान पर एकात्मक शासन की व्यवस्था की गई है और इसीलिए केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सोवियत संघ में भी समस्त शक्तियाँ सङ्घीय सरकार में केन्द्रीयभूत हैं जो वहाँ की साम्यवादी दल के नियन्त्रण में समस्त कार्यों को सम्पन्न करती है। फ्रांस के पंचम गणतन्त्र के संविधान में एकात्मक केन्द्रीभूत शासन-पद्धति को मान्यता प्रदान की गई है। समस्त देशों का शासन एक केन्द्र से होता है और विभागों एवं अन्य स्थानीय क्षेत्रों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जिस प्रकार की भारत में है।

आस्ट्रेलिया में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। सम्पूर्ण देश के लिए एक सङ्घीय सरकार की स्थापना हुई है जो सङ्घीय क्षेत्र में अत्यधिक शक्तियाँ रखती है। वहाँ राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु वे अपनी इच्छा से एक दूसरे से बँधे हुए हैं। यद्यपि आस्ट्रेलिया के संविधान द्वारा राज्यों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है परन्तु शक्ति-विभाजन के सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रखा गया है कि केन्द्रीय सरकार अत्यधिक शक्तिशाली है, यदि कभी सङ्घ और राज्यों के मध्य कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो सङ्घ सरकार को प्रधानता दी जाती है। सङ्घीय सरकार की शक्तियाँ निर्धारित कर दी गई हैं और अवशिष्ट शक्तियों को राज्यों को दे दिया गया है। कनाडा में सङ्घात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। वहाँ राज्यों की सरकारों को निश्चित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अवशिष्ट शक्तियाँ सङ्घ सरकार को दे दी गई हैं। आस्ट्रेलिया की भाँति वहाँ सङ्घ सरकार की सरकार का उल्लेख नहीं हुआ है। *भारत की भाँति सङ्घ, राज्य और समवर्ती शक्तियों का उल्लेख नहीं हुआ है।* स्विटजरलैंड का संविधान भी एक तरह से सङ्घात्मक संविधान है। सङ्घीय सरकार को कई विषयों में एकाधिपत्य प्रदान किया गया है। परन्तु अनेक ऐसे विषय भी हैं जिनमें कैण्टनों की सरकारें स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकती हैं। स्विटजरलैंड प्रत्यक्ष जनतंत्र का घर है और इस कारण कैण्टनों को पर्याप्त स्वतन्त्रता देना वहाँ स्वाभाविक ही है। परन्तु इतना होने पर भी सङ्घीय सरकार की शक्तियाँ काफी अधिक हैं और संविधान में

शक्तियों का विभाजन इतना स्पष्ट रूप से नहीं हुआ है जैसा कि भारत में देखने को मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ तक शक्तियों के विभाजन का सम्बन्ध है भारत के संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन अलग-अलग स्पष्ट रूप में किया गया है जैसा कि संसार के किसी भी संविधान में देखने को नहीं मिलता। कुछ संविधानों जैसे कि आस्ट्रेलिया में सङ्घीय सरकार की शक्तियों को गिना दिया गया है और इससे बची हुई शक्तियाँ राज्यों की सरकारों को दे दी गई हैं। कुछ देशों के संविधान जैसे कनाडा में राज्यों की शक्तियों को गिना दिया गया है और शेष शक्तियां सङ्घीय सरकार को दे दी गई हैं। भारतीय संविधान में सङ्घीय सरकार और राज्यों की सरकारों को अलग-अलग गिनाया गया है। साथ ही एक समवर्ती सूची भी है जो सङ्घीय सरकारों और राज्यों की सरकारों दोनों से सम्बन्धित है। परन्तु इस सूची के विषयों में भी सङ्घीय सरकार को प्रमुखता दी गई है साथ ही संविधान में यह भी उल्लेख किया गया है कि यदि कोई विषय रह गया हो तो उस पर भी सङ्घीय सरकार की प्रमुखता रहेगी।

दलीय व्यवस्था की तुलना

भारत में बहुदलीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं। यहाँ का सबसे बड़ा राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है और केन्द्र में अभी तक हमेशा उसी की सत्ता रही है। यहां संगठित विरोधी दल के दर्शन हो रहे हैं और यह भारतीय लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त घातक है। इंगलैंड में भारत से भिन्न द्विदलीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं। यद्यपि समय-समय पर अन्य छुटपुट दल भी बनते बिगड़ते रहते हैं परन्तु शासन की बागडोर या तो अनुदार दल के हाथ में रहती है या मजदूर दल के हाथ में। अमेरिका में भी दो दलों की प्रमुखता दिखलाई देती है। एक दल डेमोक्रेट्स हैं और दूसरा रिपब्लिकन। यद्यपि समय-समय पर अन्य छोटे-छोटे दल बनते रहते हैं परन्तु सदैव यही दो दल हैप्रमुख रहे हैं। सोवियत संघ में केवल एक ही राजनीतिक दल है और वह है साम्यवादी दल। शासन पर सदैव यह साम्यवादी दल ही अधिकार रखता है। वहां किसी अन्य दल के निर्माण की मनाही है।

आस्ट्रेलिया में 3 प्रमुख राजनीतिक दल हैं (1) श्रमिक दल, (2) उदार दल और (3) कन्ट्री दल। इन दलों में श्रमिकदल और उदारदल ही शासन पर हावी रहता है। साथ ही छोटे-छोटे अन्य दल भी आस्ट्रेलिया में अपनी जड़ें जमाने लगे हैं। कनाडा में प्रगतिशील अनुदारदल, उदारदल, कोआपरेटिव, कामनवेल्थ फैडरेशन प्रमुख राजनीतिक दल हैं। इनमें शासन की बागडोर कभी प्रगतिशील अनुदारदल के हाथ में रहती है और कभी उदारदल के हाथ में। कनाडा की दलीय पद्धति की एक विशेषता

संघ और राज्यों के मध्य सम्बन्धों की तुलना

भारत में संघीय व्यवस्था को अपनाया गया है और संघ एवं राज्यों के कार्यों का उल्लेख संविधान में ही कर दिया गया है। संविधान में 3 सूचियाँ हैं। प्रथम सूची के कार्य केन्द्रीय सरकार के हैं। दूसरी सूची के कार्य प्रान्तीय सरकार के हैं और तीसरी एक समवर्ती सूची है जिसके कार्यों को करने का अधिकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का है परन्तु यदि उक्त विषयों में केन्द्रीय सरकार कोई कानून बना देती है तो उसके सम्मुख प्रान्तीय सरकार द्वारा बनाया गया कानून लागू नहीं किया जा सकता।

इंगलैण्ड में संघात्मक शासन के स्थान पर एकात्मक शासन की व्यवस्था की गई है और इसलिए केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सोवियत संघ में भी समस्त शक्तियाँ सङ्घीय सरकार में केन्द्रीभूत हैं जो वहाँ की साम्यवादी दल के नियन्त्रण में समस्त कार्यों को सम्पन्न करती है। फ्रांस के पंचम गणतन्त्र के संविधान में एकात्मक केन्द्रीयकृत शासन पद्धति को मान्यता प्रदान की गई है। समस्त देशों का शासन एक केन्द्र से होता है और विभागों एवं अन्य स्थानीय क्षेत्रों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जिस प्रकार की भारत में है।

आस्ट्रेलिया में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। सम्पूर्ण देश के लिए एक सङ्घीय सरकार की स्थापना हुई है जो सङ्घीय क्षेत्र में अत्यधिक शक्तियाँ रखती है। वहाँ राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु वे अपनी इच्छा से एक दूसरे से बंध हुए हैं। यद्यपि आस्ट्रेलिया के संविधान द्वारा राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई है परन्तु शक्ति विभाजन के सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रखा गया है कि केन्द्रीय सरकार अत्यधिक शक्तिशाली है यदि कभी सङ्घ और राज्यों के मध्य कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो सङ्घ सरकार को प्रधानता दी जाती है। सङ्घीय सरकार की शक्तियाँ निर्धारित कर दी गई हैं और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दे दिया गया है। कनाडा में सङ्घात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। वहाँ राज्य की सरकार को निश्चित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। अवशिष्ट शक्तियाँ सङ्घ सरकार को [illegible] हैं। आस्ट्रेलिया की भाँति वहाँ सङ्घ सरकार की सरकार का उल्लेख नहीं है [illegible] भारत की भाँति सङ्घ राज्य और समवर्ती शक्तियों का उल्लेख नहीं है [illegible] अमरीका का संविधान भी एक तरह से सङ्घात्मक संविधान है। [illegible] विषयों में एकाधिपत्य प्रदान किया गया है। परन्तु अनेक ऐसे विषय [illegible] की सरकारें स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकती हैं। स्विटजरलैण्ड [illegible] है और इस कारण कैन्टनों को पर्याप्त स्वतन्त्रता देना [illegible] इतना होने पर भी सङ्घीय सरकार की शक्तियाँ [illegible]

शक्तियों का विभाजन इतना स्पष्ट रूप से नहीं हुआ है जैसा कि भारत में देखने को मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ तक शक्तियों के विभाजन का सम्बन्ध है भारत के संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन अलग-अलग स्पष्ट रूप में किया गया है जैसा कि संसार के किसी भी संविधान में देखने को नहीं मिलता। कुछ संविधानों जैसे कि आस्ट्रेलिया में सङ्घीय सरकार की शक्तियों को गिना दिया गया है और इससे बची हुई शक्तियाँ राज्यों की सरकारों को दे दी गई हैं। कुछ देशों के संविधान जैसे कनाडा में राज्यों की शक्तियों को गिना दिया गया है और शेष शक्तियाँ सङ्घीय सरकार को दे दी गई हैं। भारतीय संविधान में सङ्घीय सरकार और राज्यों की सरकारों को अलग-अलग गिनाया गया है। साथ ही एक समवर्ती सूची भी है जो सङ्घीय सरकारों और राज्यों की सरकारों दोनों से सम्बन्धित है। परन्तु इस सूची के विषयों में भी सङ्घीय सरकार को प्रमुखता दी गई है साथ ही संविधान में यह भी उल्लेख किया गया है कि यदि कोई विषय रह गया हो तो उस पर भी सङ्घीय सरकार की प्रमुखता रहेगी।

दलीय व्यवस्था की तुलना

भारत में बहुदलीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं। यहाँ का सबसे बड़ा राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है और केन्द्र में अभी तक हमेशा उसी की सत्ता रही है। यहाँ संगठित विरोधी दल के दर्शन हो रहे हैं और यह भारतीय लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त घातक है। इंगलैंड में भारत से भिन्न द्विदलीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं। यद्यपि समय-समय पर अन्य छुटपुट दल भी बनते बिगड़ते रहते हैं परन्तु शासन की बागडोर या तो अनुदार दल के हाथ में रहती है या मजदूर दल के हाथ में। अमेरिका में भी दो दलों की प्रमुखता दिखलाई देती है। एक दल डेमोक्रेट्स हैं और दूसरा रिपब्लिकन। यद्यपि समय-समय पर अन्य छोटे-छोटे दल बनते रहते हैं परन्तु सदैव यही दो दल हैप्रमुख रहे हैं। सोवियत संघ में केवल एक ही राजनीतिक दल है और वह है साम्यवादी दल। शासन पर सदैव यह साम्यवादी दल ही अधिकार रखता है। वहां किसी अन्य दल के निर्माण की मनाही है।

आस्ट्रेलिया में 3 प्रमुख राजनीतिक दल हैं (1) श्रमिक दल, (2) उदार दल और (3) कन्ट्री दल। इन दलों में श्रमिकदल और उदारदल ही शासन पर हावी रहता है। साथ ही छोटे-छोटे अन्य दल भी आस्ट्रेलिया में अपनी जड़ें जमाने लगे हैं। कनाडा में प्रगतिशील अनुदारदल, उदारदल, कोआपरेटिव, कामनवेल्थ फैडरेशन प्रमुख राजनीतिक दल हैं। इनमें शासन की बागडोर कभी प्रगतिशील अनुदारदल के हाथ में रहती है और कभी उदारदल के हाथ में। कनाडा की दलीय पद्धति की एक विशेषता

यह है कि यहाँ दलों का संगठन किसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं हुआ है साथ ही उनके संगठन में भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। स्विटजरलैण्ड में भी उदारवादी उग्रलोकतन्त्रवादी, लोकतन्त्रवादी, कैथोलिक अनुदार आदि अनेक दल हैं परन्तु वहाँ के संविधान में दलों का वर्णन नहीं हुआ है। बहुदलीय प्रणाली होने पर भी इन दलों का आधार कैण्टनवाद ही है। दलों को वह महत्व नहीं प्राप्त है जो कि भारत में प्राप्त है साथ ही वहाँ दलीय अनुशासन के अभाव के भी दर्शन होते हैं। दलों का महत्व न होने के कारण दलीय गन्दगी भी उस व्यापक रूप में नहीं दिखाई पड़ती जो भारत में दिखलाई पड़ती है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने विभिन्न संविधानों की अच्छी बातों को ग्रहण करके संसार के सबसे बड़े संविधान का निर्माण किया है। अनेक देशों के संविधानों की अच्छी बातों का ग्रहण करने के कारण कहीं कहीं पर भारतीय संविधान में कुछ ऐसे तथ्य भी आ गये हैं जिनके कारण संविधान में संशोधन की भी आवश्यकता का अनुभव किया गया है। भारतीय संविधान में इसी कारण 23 संशोधन हो चुके हैं और 24वाँ संशोधन होने वाला है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत का संविधान संसार का एक अनोखा संविधान है और इस संविधान के द्वारा जिस शासन की व्यवस्था को अपनाया गया है वह व्यवस्था भी अनोखी है। यहाँ लोकतन्त्रात्मक समाजवादी समाज की स्थापना करने का प्रयास किया गया है।
